देवताओं के पुरखे

एवं

देवताओं की ममियाँ

• लेखक •

ज्योतिराव लढके

हिंदी मराठी प्रकाशन

धनवटे चेम्बर्स, सीताबर्डी, नागपुर-12

देवताओं के पुरखे
एवं
देवताओं की ममियाँ

लेखक–
ज्योतिराव लढके

संस्करण : 2019

किंमत : 160 = 00

अक्षर जुळवणी :
मीरा कंप्यूटर्स, नागपुर.

मुद्रण :
स्वामी आर्ट, नागपुर

प्रकाशक :
हिंदी मराठी प्रकाशन,
धनवटे चेम्बर्स, सीताबर्डी,
नागपुर-12
Ph. No. 0712-2526442

भूमिका

पृथ्वी पर मनुष्य के अवतरण से लेकर तो आजतक का सफ़र, उसने तय किया है| इस यात्रा के दरम्यान कई पहलुओं का उससे जुडना हुआ| इनमें से ही है 'अलौकिक शक्ति की संकल्पनाएं'| ऐसी शक्ति जो मनुष्य की समझ से बाहर है| ऐसी शक्ति जो इस प्रकृति के किसी भी नियम से परे है| हां, कुछ इने-गिने लोग उसकी अनुभूति का दावा जरूर करते हैं| लेकिन अगर यह शक्ति प्रकृति के नियमों से परे है, मनुष्य की समझ से परे है, तो उपरोक्त महामानव उसकी अनुभूति कैसे करते हैं, यह वे ही जानें| उसकी सामान्य मानव को अनुभूति करवा देने का तो प्रश्न ही नहीं उठता और ऐसी शक्ति ही अधिकांश धार्मिक पंथों का आधार है| धर्म अपने-आपको या फिर धर्म को माननेवाले उसे शाश्वत बताते हैं| उनके अनुसार धर्म का अस्तित्व, मनुष्य के प्रादुर्भाव से ही है|

जहां तक मनुष्य के प्रादुर्भाव का संबंध है, कोई भी धर्म, मनुष्य को अनादि नहीं मानता| हां, मनुष्य के उत्पत्ति का काल तथा उसकी उत्पत्ति का ढंग, इन विषयों में भिन्न-भिन्न धर्मों में भारी मतांतर है| मनुष्य की उत्पत्ति के संबंध में विज्ञान के अपने सिद्धांत हैं| डार्विन का विकासवाद उनमें सबसे प्रमुख है|

अगर मनुष्य की धार्मिक सोच की शाश्वतता के विषय में जानना है तो साफ है कि ये शाश्वत तत्व, हमेशा एक जैसे ही होने चाहिए| उनमें कोई बदलाव (या विकास) देखने को नहीं मिलना चाहिए| कमसे कम उनके मूलभूत तत्वों में तो नहीं ही|

हमें मनुष्य जाति के इतिहास के समांतर इन धार्मिक संकल्पनाओं के इतिहास को भी देखना होगा| भूतकालीन बातों को जानने का माध्यम इतिहास होता है या फिर साहित्य से हम तात्कालिक स्थिति को कुछ हद तक जान सकते हैं| लेकिन वैज्ञानिक इतिहास तो काफी बाद की बात है| दुनिया का सबसे पुरातन साहित्य वेदों को माना जाता है| लेकिन उनको भी कुछ हजार वर्षों से पुरातन नहीं माना जाता|

तो फिर जानकारी का अन्य स्त्रोत क्या है? पृथ्वी के आवरण में ऊपरी मिट्टी की परत और नीचे पथरीली परतें हैं| उनमें दबी हुई पथरीली हड्डियां और अन्य सामग्री मिलती है| वह इस धरती पर लाखों सालों के अन्तराल में फैले जीवन के विषय में जानने का दस्तावेज़ है|

हमारे अपने पूर्वजों (सेपियन मानव) का काल ५ लाख वर्षों से पुरातन होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता| १८६३ में 'पर्थेस' नाम के वैज्ञानिक का ' मानव के प्राचीनत्व का भूगर्भशास्त्रीय प्रमाण ' यह ग्रंथ प्रकाशित हुआ और मानव इतिहास से संबंधित एक नए शास्त्र का उदय हुआ| इस आधुनिक मानव के इतिहास में पाषाण युग, कांस्य युग, लौह युग जैसे कई युग बित गये हैं|

जहां तक धार्मिक संकल्पनाओं की बात है, उनका संबंध मानसिक अनुभवों से है| ये व्यक्तिगत होते हैं और वे अपने पीछे कोई जीवाश्म जैसी वास्तविकता नहीं छोड़ जाते, जिससे उनकी सत्यता को परखा जाए| लेकिन मनुष्य ने अपनी शुरुआती भावनाओं को भी लाल-काले रंगों, बहुत ही अपरिष्कृत रूप में क्यों न हो, चित्रों में उत्कीर्ण किया है| ये 'गुहाचित्रों' के तौर पर जाने जाते हैं| ये चित्र दुनिया के कई भागों में मिले हैं| उनमें शिकार के कुछ दृश्य तथा जानवर मिलते हैं| इन चित्रों में देव, भूत तथा दूसरे, धर्म संबंधित अलौकिक शक्ति बिंबों का नामोनिशान नहीं मिलता| समय के साथ इन अनुभूतियों को व्यक्त करने का माध्यम और रूप परिष्कृत होते गये|

समय के साथ मनुष्यों के एकत्र रहने के या समाज-व्यवस्था के रूप बदलते गये| लोग पहले छोटे-छोटे समूहों, कुलों या गोत्रों अथवा जनों, कबीलों में रहा करते थे| यह 'आदिम समाज' का युग कहलाता है| सामुदायिक स्वामित्ववाले आदिम साम्यवाद का युग भी हो चुका है|

इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि उत्तर पुरापाषाण काल में केवल निम्न ढंग की मान्यताओं का उदय हो चुका था-

१) मरनेवाला, मौत के बाद भी किसी रूप में जिन्दा रहता है| ये 'प्रेतात्माएं' कहलायीं| यही विचार आगे अविनाशी 'आत्मा' की ओर ले गया|
इस काल के शवागार बड़े पैमाने पर प्राप्त हुए हैं| इनमें कुछ तो एकदम साधारण स्वरूप के थे| इसके विपरीत कुछ में शवों के साथ, प्रत्यक्ष जीवन में उपयोग में लायी जानेवाली वस्तुएं, इतना ही नहीं तो प्रत्यक्ष दास-दासियाँ दफन की हुई मिली हैं| अर्थात ये शवगृह किसी प्रभावशाली व्यक्तियों के होने चाहिए|

२) मनुष्य दूसरे को नाराज करने के स्थान पर, उसे प्रसन्न करके भी अपनी सुरक्षा निश्चित करना चाहता है| वैसे ही उन अदृश्य शक्तियों को खुश करने के लिए, किसी ढंग के अनुष्ठान का उदय हुआ| यह 'उपासना' की ओर ले गया| अर्थात् अतिमानवी अस्तित्व की कल्पना की ओर|
शुरू में मृतकों के शवों को दफन करने की प्रथा मिलती है| आगे धीरे-धीरे मृतकों का दाहसंस्कार करने की पद्धति शुरू हुई| लेकिन इस प्रथा की ओर अंतरण का, पूर्ण वैज्ञानिक या भौतिकवादी स्पष्टीकरण ज्ञात नहीं हो सका है|

आगे पुरातन विश्वासों में एक ऐसी धारणा पायी जाती है कि मनुष्यों के समुहों और भौतिक वस्तुओं, खास करके किसी विशेष जाति के जीवों के बीच अलौकिक संबंध है| इसे 'टोटमवाद' कहा जाता है| लेकिन टोटमवाद में प्रायः यह सामान्य कल्पना पायी जाती थी कि टोटेम पुरखों को अलौकिक शक्तियां प्राप्त थीं| टोटमों को खुश करने के लिए अनुष्ठान किये

जाते थे| इसे ही आदिम समुदाय में, धर्म का रूप माना जाता है| टोटमवाद के अवशेष आज भी लोकगाथाओं में सुरक्षित हैं|

इसके बाद हमें मिलता है धर्म का ' शामानी रूप '| इसकी भी सबसे महत्वपूर्ण बात है ' प्रेतात्माओं में विश्वास '| (इसका उद्‌गम स्थान सायबेरिया है)

अब तक तो प्रकृति विषयक अज्ञान, प्रकृति की अनुकंपा की आकांक्षा और उसके प्रति मजबूरी, इनके कारण ही, प्रकृति में, मनुष्य की समझ से परे किसी 'अलौकिक शक्ति' की कल्पना कर, उससे याचना और इस याचना को व्यावहारिक रूप देने के लिए भिन्न-भिन्न ढंग के अनुष्ठान, यही आदिम मनुष्य के धार्मिक कल्पनाओं का रूप था| यह रूप कुछ हद तक क्रूर स्वरूप का ही था| उसमें हमें सात्विकता का कोई अंश नहीं मिलता| बलि देने की प्रथा का ही बोलबाला मिलता है| दूसरों की कीमत पर अपना भला|

शुरू में सभी मानव जिजिविषा के लिए प्रकृति के साथ समान रूप से संघर्षरत थे| वह उनकी मजबूरी थी| अन्य किसी बात के लिए उनके पास समय ही नहीं था| लेकिन समाज-व्यवस्था में बदलाव के साथ ऐसी स्थितियां पैदा होने लगीं कि कोई व्यक्ति किसी आधार पर अपने आपको अन्यों से अधिक श्रेष्ठ स्थापित करने लगा| उन्हें अपने अर्थात् दूसरों के शोषण का आधार बनाने लगा| फिर जो अलौकिक शक्तियां बाह्य समझी जाती थीं, उन्हें अपने में पुनर्स्थापित करने का दावा करने लगा| अपने आपको शामान के रूप में पेश करने लगा| इसके लिए अपने-आपको एक तरह की उन्मादावस्था में प्रस्तुत करने लगा|

इससे अगले काल में जादू-टोने के दर्शन होते हैं| चाहे जादू-टोना कहों या अलौकिक शक्तियों के प्रति विश्वास तभी उत्पन्न होता है, जब मनुष्य या तो अनिश्चितता का शिकार होता है या फिर अपनी क्षमता के प्रति आश्वस्त नहीं होता| थॉमसन ने अपने ग्रंथ 'रिलीजन' में यह निष्कर्ष निकाला है कि वास्तव में उत्पादन के साधन जितने कम विकसित होगे, उतनी ही जादुई कर्मकांडों पर निर्भरता अधिक होगी| आगे उन्हींके अनुसार विकास के निम्न स्तर पर जीवनयापन करने वाले कबिलाई व्यक्ति, जिन्हें कि हम जानते हैं, उनके यहाँ कोई देवता नहीं है| वे किसी उपासना को नहीं जानते, न वहाँ कोई बलि देने की प्रथा है| इसी प्रकार जहां कहीं भी हम सभ्यजनों के प्रागैतिहासिक स्थिति को ज्ञात करने का प्रयत्न करते हैं, तो एक ऐसे स्तर पर जा पहुँचते है, जहाँ न देवता हैं, न प्रार्थनाएं, न बलियां| इस स्तर पर हमें टोने-टोटके दिखाई देते हैं| फिर सवाल सामने आता है कि उत्पादन के उन्नत स्तर पर भी ये कर्मकांड अपना अस्तित्व कैसे बनाए रखते हैं? इसपर थॉमसन ने ही कहा है कि कर्मकांड नए प्रयोजन के लिए, नए रूप के साथ, शेष बचे रह जाते हैं| उत्पादनों के साधनों का विकास अन्ततोगत्वा समाज को वर्गों में विभाजित कर देता है| प्रभुसत्ता सम्पन्न वर्ग

अपने विशेषाधिकारों में, अतिप्राकृतिक तत्त्वों को सम्मिलित करते हुए, जादुई प्राविधियों का विकास, अपने अधिकारों को संग्रहित करने के साधन के रूप में करने लगता है|

फ्रेजर के अनुसार, धर्म का उदय होने के पूर्व, मानव जाति की उत्क्रांति में, उसने जादू विद्या का निर्माण कर लिया था| देवताओं का अनुनय करने से पूर्व उसने मंत्र-तंत्रों की शक्ति से प्रकृति को वश में करने की चेष्टा की| फ्रेजर के अनुसार, विज्ञान की तरह ही जादू में भी यह गृहीत है कि प्रकृति की घटनाएँ अपरिवर्तनीय ऐसे नियमों के कारण, एक के पीछे एक घटित होती रहती हैं| वे मानवीय अथवा अमानुष शक्तियों के हस्तक्षेप के बिना ही होती रहती हैं| इसी कारण जादू के पीछे जो प्रेरणा है वह प्रकृति में अंतर्भूत सुव्यवस्था के कारण है| इसी कारण विशिष्ट परिणाम के लिए विशिष्ट क्रिया की जाती है|

कॉ.एम्.एन्.रॉय भी आदि मानव के गूढ़ विश्वासों का उद्गम भी उसके सहज प्रवृत्त बुद्धिवादित्व में ही देखते है| अभाव से कुछ उत्पन्न नहीं होता| हर घटना के पीछे कारण होता है यह मानना, यही वह बुद्धिवाद है| आदिम मानव के चित्त में यह विचार इतना स्पष्ट नहीं होता, इस कारण उसे सहज-प्रवृत्त कहना मजबूरी है|

लेकिन इसी लकीर को आगे खींचते हुए कुछ लोग आग्रह करते हैं कि प्राथमिक मानव को निसर्गातीत शक्तियों पर जो विश्वास था उसे सहजप्रवृत्त क्यों न मान लिया जाए? इसीसे आगे धर्म का उद्भव हुआ|

लेकिन बाद में ये सारी बातें मनुष्य के व्यवसाय के साथ जुडने लगीं| वह भी उसी अनुपात में जितनी उस व्यवसाय में जोखिम अधिक होती थी|

देवताओं की ममियॉ (i + ii)

अब आदिम समाज से आगे बढ़ते हुए, नागरी सभ्यता की ओर चलें| मनुष्य ने व्यवस्थित ढंग की बस्तियां बनाना शुरू किया या नगर निर्माण शुरू हुआ| वह समय कुछ १०००० वर्ष पूर्व का आंका जाता है| 'टैल एस्. सुल्तान' नामक पहाड़ी पर मिले अवशेषों को ही दुनिया के सबसे पुराने नगर के अवशेष माना गया है| इसके बाद मनुष्य जाति के इतिहास में कई नगर बसे और उजड गये| कई सभ्यताएं उभरीं और लुप्त हुईं|

जैसा कि हमने पीछे देखा आदिम समाज की धार्मिक संकल्पनाएं, अज्ञान और जीवन के लिए प्रकृति से संघर्ष करने की सीमित शक्ति के रहते, सहज प्रवृत्ति से उपजी थीं| लेकिन जैसा-जैसा मानव समाज आगे बढता गया, सभ्यताओं का उदय होता गया, ऐसा कहा जाता है| इन सभ्यताओं में मनुष्य जीवन सुविधाजनक बनाने के प्रयास तो काफी हुए| लेकिन साथ ही, अलग-अलग क्षेत्रों में बाहुबलियों के द्वारा कमजोर बहुजनों का क्रूर शोषण करने के लिए

हतकंडे बड़े पैमाने पर अपनाये जाते रहे और इसमें शायद सबसे अधिक योगदान 'अलौकिक संकल्पनाओं' का ही रहा है, यह इतिहास से स्पष्ट है|

आजतक चली आयीं सभ्यताओं में विद्यमान धार्मिक कल्पनाओं को तो हम काफी हद तक प्रत्यक्ष में देख सकते हैं| लेकिन लुप्त हुई सभ्यताओं के विषय में विशेष रूप से अध्ययन की आवश्यकता होती है| इस कारण ऐसी सभ्यताओं के धार्मिक रिवाजों पर विशेष विचार किया गया है|

सर्वाधिक प्रभावशाली प्रथम सभ्यता ' सुमेरियन सभ्यता' मानी जाती है| इस सभ्यता में देवताओं का मानवीकरण देखा जाता है| ये देवता मानवी गुणों से ही नहीं तो मानवी वासनाओं से युक्त भी समझे जाते थे| केवल उन्हें अमर माना जाता था| मनुष्य को जीवन में सुख-दुख झेलना पड़ता है| इसे देवताओं की इच्छा समझना चाहिए| मनुष्य जीवन की सफलता, देवताओं की दया पर निर्भर समझी जाती थी| यहाँ की अधिकतर मूर्तियां मानव आकृति की ही हैं| यहाँ मिश्र की सभ्यता की तरह पशु आकृति की मूर्तियां नहीं मिलतीं| यहाँ के पवित्र वृषभ मानव शीर्ष सहित हैं, जबकि प्राचीन इजिप्त में देवतारूपी मानवेतर जीव को उसके सिर और मानव के धड के रूप में बनाया जाता था|

देवता की आराधना करनी चाहिए| सदाचारमय जीवन जीना चाहिए| सुमेरियनों का दानवों की कल्पना पर भी विश्वास था| सुमेरियनों के विश्वास के अनुसार हमारी आत्मा मृत्यु के उपरांत 'शियोल' नामक स्थान में जाती है| यहाँ सर्वत्र अंधकार है| सुख नाम की कोई चीज नहीं है| सुखदायक स्थान केवल देवताओं के लिए ही है| बील ड्यूरांट के अनुसार- " लेकिन सुमेरियनों ने अभी तक स्वर्ग-नर्क की कल्पना, ईश्वरीय पारितोषिक एवं दण्ड के रूप में नहीं की थी| अर्थात् उनका विश्वास पारलौकिक जीवन में तो था लेकिन इस अलौकिक जीवन को वे दुखमय मानते थे| अर्थात् धर्म का स्वरूप निराशावादी था| धर्म का उद्देश्य मात्र, पारलौकिक जीवन की चिंता के स्थान पर सांसारिक सुखों की प्राप्ति था|

यह ध्यान देने की बात है कि वर्गपूर्व समाज या वर्गीय समाजों के आरंभिक चरणों में मरणोपरान्त पुरस्कार संबंधित मान्यताएं आमतौर पर नहीं मिलतीं| जब समाज में वर्गीय विरोध उग्र हो गये तब जाकर वे प्रकट हुईं, विरोध की उग्रता को कम करने|

ऐसा माना जाता है कि हजरत ईसा की दस आज्ञाओं की जड, सुमेरी आज्ञाएं ही हैं|

बाद की बेबिलोनियन सभ्यता में तो यौन संबंधों को धार्मिक रूप दिया गया था| राजा की निरंकुशता को दैवीय समर्थन का आधार दिया गया| समाज के सुविधाभोगी लोगों ने अपने अनाचारों को धार्मिक लबादे से ढंक दिया था और इन प्रयत्नों में ई.पूर्व नवीं शती में यहाँ के देवताओं की संख्या ६५ हज़ार तक पहुँच गयी थी|

मेसोपोटामिया की तीन प्रमुख सभ्यताओं में तीसरी सभ्यता असिरीयनों की मानी जाती है| उसके बाद आता है बेबिलोनिया का कॅल्डियन युग| इस युग में कला तथा विज्ञान के क्षेत्रों में भारी उन्नति हुई| सप्ताह का सात दिनों में विभाजन, नक्षत्रों का बारह राशियों में विभाजन, इसी सभ्यता की देनें हैं| लेकिन सभ्यता का व्यावहारिक जीवन, बहुत ही दूषित हो गया था| इस काल का बेबिलोन, वेश्यालयों के लिए सारे संसार में बदनाम था| प्रत्येक स्त्री को जीवन में कम से कम एक बार, ईश्वर के मंदिर में, पर-पुरुष के साथ सम्भोग करना होता था| ऐसी सामाजिक अव्यवस्था में रहनेवाले ये लोग धार्मिक दृष्टि से बड़े भाग्यवादी और निराशावादी बन गये|

यहूदी धर्म एक तरफ तो ईश्वर की सृष्टि का उपभोग करने की बात करता है तो दूसरी ओर कहता है कि मनुष्य को सुख-दुख की प्राप्ति होना संयोग की बात है| ये दो बातें विरोधाभासी हैं| जहाँ तर्क नहीं होगा, वहाँ ऐसा विरोधाभास, अचरज की बात नहीं है| ज्ञान, अज्ञान से श्रेष्ठ तो है, लेकिन मनुष्य उससे त्राण नहीं पा सकता| इस धर्म की दृष्टि से दुष्टात्माएं भी ईश्वर से ही उत्पन्न होती हैं| यह धर्म शुरू में परलोक में अधिक विश्वास नहीं करता था| लेकिन समय के साथ यहाँ धरती पर तो पुजारी वर्ग अधिक प्रबल और विलासी होता गया| अन्यों के लिए धर्म और कर्मकांडों का केन्द्रीयकरण बहुत बढ गया| सामान्य जनों के लिए धर्म परलोक वादी रूप लेता गया| साधारण आस्थावानों का सारा जीवन कर्मकांड विषयक निर्देशों तथा वर्जनाओं में जकडता चला गया|

एक अन्य सभ्यता, फिनीशियाई नगरों में देवताओं की पूजा में जितनी नृशंसता देखने मिलती है, उतनी शायद दुनिया के किसी अन्य सभ्यता में नहीं|

लुप्त संस्कृतियों में जब हम सिंधु संस्कृति की बात करते हैं तो देखते हैं कि इस सभ्यता में धर्म का वह प्रारंभिक रूप विकसित हो चुका था जिसमें मातृसत्ता को एक सार्वभौम शक्ति के रूप में पूजा जाता था| मातृ देवी की उपासना आदिम सभ्यता का एक प्रमुख लक्षण है| तो दूसरी ओर शिवलिंग पूजा का प्रारंभिक चरण भी वहाँ मिलता है| ऐसा विश्वास किया जाता है कि सिंधु उपत्यका वासी लिंग और भग की पूजा को अपने धर्म का अंग मानते थे|

आर्य जाति तो शुरू से ही प्रकृति पूजक थी| लेकिन ईरान के जरथुष्ट्र धर्म में प्राकृतिक देवता के कोई लक्षण नहीं मिलते| वहाँ एक नयी चीज मिलती है| दुनिया में अच्छाई और बुराई, दो विरोधी तत्व हैं| उनमें लगातार संघर्ष होता रहता है| लेकिन अंतिम विजय अच्छाई की ही होगी, दैवीय और दानवीय शक्तियां| इस दृष्टि से यह आशावादी धर्म है| यहाँ नैतिक स्वरूप के बिंब भी हैं और सुकर्म के बाद स्वर्ग सुख प्राप्ति का प्रलोभन भी|

अर्थात् यह संसार से पलायन नहीं सिखाता| लेकिन अन्य धर्मों में हुआ, वही बात यहाँ भी हुई, अर्थात् कर्मकांडों का प्रभुत्व बढ़ा|

बाद में ईरान में एक मानवतावादी 'मज्दक' धर्म भी अस्तित्व में आया|

अब बात यूनान की| यूनानियों के सभी देव-देवताओं की प्रकृति, मनुष्य समान ही है| जो विशेष गुण उनमें हैं वे हैं सौंदर्य और अमरता| वे एक तरह से उदात्तीकृत मनुष्य ही हैं| इसी दृष्टि के कारण वहाँ के मूर्तिशिल्प और चित्रकला में भी केवल मानवीय रूप दिखते हैं| इसे 'मानवाकृतिवाद' कहा जाता है| लेकिन इसका परिणाम यह भी हुआ कि यूनान में मानो देवी-देवताओं की बाढ़ सी आ गयी| यूनानी पुराणकथाओं में देवता न तो निर्माता हैं विश्व के, न मनुष्य के| उलट उनके उत्पत्ति का मूल भी प्रकृति ही है| यूनान में शुरू के कुछ स्थानीय देवताओं को ऐतिहासिक कारणों से आगे राष्ट्रीय दर्जा मिल गया| कई समाज एक-दूसरे के संपर्क में आने के बाद वे एकदूसरे में विलीन हो गये| साथ में उनके अपने-अपने देवताओं के बिंबों का भी संगलन होकर नए देवता उभर आयें| आगे यूनान के हेलिनिस्टिक युग में देवताओं को मुक्तिदाता माना जाने लगा| अनेक देवी-देवताओं की पूजा के स्थान पर एकेश्वरवाद को बढ़ावा मिला| इसी दरम्यान राजाओं का दैवीयकरण करने की प्रवृत्ति ने जोर पकड़ा| क्या इन सारी बातों का आपसी संबंध नहीं है? सिकंदर के पश्चात, सेल्यूकस ने तो अपने को पूर्ण रूप से दैवी शासक घोषित कर दिया|

यूनानी की दर्शन पद्धतियां सारतः धर्म का निषेध ही करती हैं| सर्वप्रथम सोफिस्ट 'गोरास' के सिद्धांत को 'शंकावाद' भी कहा जाता है| इस तरह यूनान में ही अलौकिकता की दहशत से मानव की मानसिक मुक्ति का प्रयत्न भी हुआ| एपिक्युरस ने सभी धर्मों और अंधविश्वासों को त्याज्य घोषित किया क्योंकि कि ये मानवता को डराते-धमकाते हैं|

इधर रोमनों का धर्म, प्रारंभ में देवताओं की अपेक्षा आत्मा पूजक था| ज्यों-ज्यों प्राचीन गोत्र संगठन का स्थान, राज्य संगठन लेता गया वैसा-वैसा धर्म संकल्पनाओं के गोत्रीय रूपों का, अधिक व्यापक रूपों में रूपांतरण होने की प्रक्रिया बढती गयी| रोम के लोग शुरू में मूर्तिपूजक नहीं थे| लेकिन रोमनों ने देवताओं की मूर्तियाँ बनाने की प्रेरणा यूनानियों से ली| साम्राज्यकाल में सम्राटों में देवत्वारोपण, ज्यूलियस सीझर के साथ ही शुरू हुआ| शुरू में मरणोपरान्त और बाद में तो सम्राटों के जीवनकाल में ही|

लेकिन इसके साथ-साथ ही स्टोईक जैसे मत के कारण, रोम के समाज में, तर्क को प्रधानता मिलने लगी| इस मत के अनुसार, संसार प्राकृतिक नियमों से चलता है| इसके साथ ही आचरण की पवित्रता, मन-वचन की शुद्धता, भक्ति, सच्चाई और सच्चरित्रता आदि को भी महत्व मिलने लगा|

धीरे-धीरे रोमन सम्राटों के ध्यान में आने लगा कि उभरते ईसाई धर्म की बातें, जैसे इस संसार की असार वस्तुओं की ओर ध्यान न देने की बात, आम जनों के सारे कष्टों के लिए स्वर्ग में आनंद का प्रलोभन, उनकी अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए औजार का काम दे सकती हैं, तो ईसाई धर्म रोम का राजधर्म बन गया| ईसा को स्वर्ग का सम्राट, तो रोमन सम्राट को इहलोक के साम्राज्य का सम्राट माना गया|

कुछ और महत्वपूर्ण बातों को हम ध्यान में ले सकते हैं-

१) प्रसिद्ध रूसी लेखक पोक्रवस्की, मृत्यु के भय को ही धर्म का उत्पत्ति स्थल मानते है|

२) ग्रेट ऐलन आदि कुछ विद्वानों के मतानुसार धर्म की उत्पत्ति मृत पूजा से हुई| उनके अनुसार जो-जो पेड, पत्थर, नदी आदि, मृतकों से सम्बद्ध होते गये, वे पूजा स्थान बनते गये|

३) देवता या तो मनुष्य के क्रियाकलापों से या फिर प्राकृतिक घटनाओं से जुड़े हुए मिलते हैं|

कृषि संबंधित जो अनुष्ठान थे उनमें स्त्रियों की विशेष भूमिका पायी जाती थी| ऐसा माना जाता था कि विशेष अनुष्ठान द्वारा स्त्री की कामशक्ति भूमि को अंतरित हो जाती है| इसका उद्देश्य होता था, भूमि की उर्वरता बढ़ाना|
कृषि तथा पशुपालन संबंधित विश्वासों का नाता नगरों के स्थान पर गाँवों से था||
अर्थात् अलौकिक शक्तियों से संबंधित कल्पनाएँ या धार्मिक मान्यताएं और भौतिक उत्पादन की तथा सामाजिक जीवन की परिस्थितियां एक-दूसरे में प्रतिबिंबित होती हुई साफ-साफ दिखाई देती हैं|

अलौकिक शक्तियों की कल्पना पर विज्ञान ने चिंतन नहीं किया, ऐसा नहीं| इसके परिणाम स्वरूप कुछ परिभाषाएं सामने आयीं| वे भी पुस्तक की सामग्री में अंतर्भूत हैं|

लेकिन अलौकिक शक्तियों को मानने के आग्रह का अर्थ होगा प्रकृति के व्यापार में हस्तक्षेप| प्रकृति बिना किसी विचलन के, अपने नियमों के अनुसार चलती है| उसकी अपनी एक व्यवस्था है| उस व्यवस्था में व्यवधान उत्पन्न करना या उसे अव्यवस्था में रूपान्तरित करने का आग्रह करना यानी धर्म|

धर्म ने मनुष्य को आत्म-सांत्वना देने का काम किया है| उसके इस सकारात्मक पक्ष को भी मानना होगा-

लेकिन अंततः यह मानना होगा कि आगे की आध्यात्मिकता, आदिम 'पिशाच पूजा' का ही परिष्कृत रूप है|

अस्तु-

लेखक

अनुक्रमणिका

भाग-एक

देवताओं के पुरखे

प्रकरण : एक

मानव जाति

१.मर्कट शाखा, प्रथम पृच्छहीन बंदर, मानव पूर्व बंदर(ऑस्ट्रेलोपिथेकस), जावा का आदि मानव(पिथेकैथ्रापस),बीजिंग का आदि मानव(सिनॅथ्रॉपस). २ पुरातात्विक सामग्री. ३ पाषाण युग, कांस्य युग, लौह युग. ४ नेअंडरथल मानव. ५ आदमी के रंग और रूप: चार. ६ मिथकीय युग.

प्रकरण : दो

समाज विकास

१. गोत्र समुदाय . २ आदिम साम्यवाद . ३ जनयुग (७००० ई.पू.तक)

प्रकरण : तीन

अलौकिक शक्तिविषयक या धार्मिक संकल्पनाएं .

आदिमकाल : विभिन्न देशों में .

प्रकरण : चार

टोटेमवाद

प्रकरण : पांच

शामानी अनुष्ठान

जादू-टोना पर चिंतकों के विचार .

प्रकरण : छह

अलौकिक शक्ति विषयक विश्वास (जनजातियाँ)

शिकारी जनजाति, युद्धरत जनजाति, कृषि से जुड़ी, अन्य व्यवसायों से जुड़ी .

प्रकरण : सात

प्रेतात्माएं

१. प्रकृति की, मरे हुए लोगों की, मृत शरीरों का निर्वतन, २ प्रेतात्माओं से अतिरिक्त अन्य देवता. ३ प्रकृति की शक्तियां, परिघटनाएं .

प्रकरण : आठ

अलौकिक शक्तियां : मध्यस्थ , विज्ञान .

१.पुरोहिती . २ मिथके .३ अलौकिक शक्तियां और विज्ञान . ४ रहस्यमय आधुनिक चिकित्सा विधियाँ, सायकिक हीलिंग, स्पर्श चिकित्सा, बायोफिडबॅक प्रणाली, टेलिपैथी, सायकोकाइनेसीस .

प्रकरण : नऊ

सारांश

१. कुछ परिभाषाएं: जादू विद्या, मूर्त जीववाद, निसर्ग धर्म .

भाग-दो

देवताओं की ममियॉ (I)

प्रकरण : एक

शहरी सभ्यता : शहरी सभ्यता का पुरातनतम अगुआ.

प्रकरण : दो

मेसोपोटामिया
सुमेरियन सभ्यता, सुमेरियन देवता, मूर्तिकरण, दानव की कल्पना, धर्म में राजाओं का स्थान, सुमेरियन मंदिर, पुरोहित, कर्मकांड, बलि प्रथा, पाप-पुण्य विषयक कल्पनाएँ, मृतक संस्कार, सुमेरियनों की देन(दस आज्ञाएं).

प्रकरण : तीन

बेबिलोनिया

बेबिलोनियन धर्म, बेबिलोनियन देवता, मंदिर, पुजारी, राजा और धर्म, ऐहिक जीवन विषयक दृष्टिकोण, शकुन विचार, सृष्टि रचना विषयक मिथक, प्रलय की कल्पना .

प्रकरण : चार

असीरियन सभ्यता(उत्तरी मेसोपोटामिया)

प्रमुख देवता, कैल्डियन युग .

प्रकरण : पांच

हिब्रू सभ्यता

हिब्रू सभ्यता, मूसा युग, एकदेव पूजा का युग, धर्म सुधार, यहूदी संप्रदाय,

यहूदियों के पर्व .

प्रकरण : छह

फिनीशिया

प्रकरण : सात

मिस्त्र

मिस्र, तूतनख़ामेन की कब्र और ममी, मिस्र में वर्ग-विभाजन, मिस्री समाज, मिस्र के सम्राट, मिस्र की राजनीति : धर्म का प्रभाव और पुजारियों का हस्तक्षेप, सूर्यपूजा, अख्नाटन की धार्मिक क्रान्ति .

भाग-तीन

देवताओं की ममियाँ (II)

प्रकरण : एक

सिंधु घाटी की सभ्यता,

सिंधु सभ्यता में धर्म, लिंग और भग पूजा .

प्रकरण : दो

ईरानी सभ्यता
जरथुस्त्र, पारसी धर्म, जरथुष्ट्र धर्म की विशेषताएं, ईरानी इतिहास के विभिन्न काल .

प्रकरण : तीन

हित्ती सभ्यता

प्रकरण : चार

ईजियन सभ्यता

प्रकरण : पांच

यूनानी सभ्यता
होमर कालीन धर्म, यूनानियों की पुराण कथाएँ, यूनान का क्लासिकल युग, क्लासिकल युग का धर्म, ऑर्फियसवाद, सिकंदर और हेलेनेस्टिक सभ्यता, दर्शन .

प्रकरण : छह

रोमन सभ्यता
रोम का इतिहास, रोमन सभ्यता: आराध्य, एट्रस्कनों के देवता, : राजतन्त्र काल, साम्राज्यकाल, रोमन देवताओं का वर्गीकरण, रोम के दर्शन, ईसाई धर्म

प्रकरण : सात

प्राचीन इंग्लैंड का धर्म
स्टोनहेंज

प्रकरण : आठ

क्रूर सिथियंस (Scythians)

प्रकरण : नौ

अमेरिकी सभ्यताएं

माया सभ्यता(ग्वाटेमाला), आल्मेक सभ्यता(मेक्सिकन) अझटेक सभ्यता, चिब्जा सभ्यता(कोलंबिया), इन्का सभ्यता(पेरू), नाज्का सभ्यता .

<u>प्रकरण : दस</u>

ईस्टर द्वीप

<u>प्रकरण : ग्यारह</u>

दक्षिण-पूर्वी एशिया
अंकोरवाट .

भाग-एक

देवताओं के पुरखे

प्रकरण-एक

मानव जाति

आदिम मानव के इतिहास को हम जानना चाहते हैं। इतिहास को जानने की स्रोत सामग्री क्या है? सबसे विश्वसनीय सामग्री हो सकती है साहित्य। **विश्व में सबसे पुरातन उपलब्ध साहित्य, वेद माना जाता है। लेकिन इसका समय कुछ हजार साल से अधिक नहीं।** तो हम यह जानकारी किस आधार पर प्राप्त करें? पृथ्वी के कवच में जो मिट्टी की और उसके नीचे पथरीली परतें हैं, उनमें दबी हुई पथराई हड्डियां और जो कुछ अन्य सामग्री मिलती है वह इस धरती पर लाखों सालों के अंतराल में फैलें जीवन के विषय में जानने के दस्तावेज हैं।

मनुष्य जाति के इतिहास में पृथ्वी पर उसकी उत्पत्ति के बाद का सारा काल आ गया है। यह काल लगभग 10 लाख वर्ष समझा जाता है। पुरातत्व सामग्री से मनुष्य के इससे पुरातन होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता। अगर मनुष्य जाति इतनी ही पुरानी हैं तो उस समय उसका आविर्भाव कहां से हुआ? इस विषय में उपलब्ध पुरातन प्रमाणों के आधार पर मनुष्य ने इस बात को जानने की चेष्टा की। **लॉर्ड मनबड्डो (Monboddo 1714-1799) इस दिशा में बढ़ने वाले सबसे पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने मनुष्यों और बन्दरों के बीच में विशिष्ट संबंध होने की बात की थी। आगे डारविन ने इस संबंध में विकासवाद का अपना वैज्ञानिक सिद्धांत रखा**| लेकिन इस सिद्धांत की गहराई में जाने का यहां कोई प्रयोजन नहीं है । ऐसा समझा जाता है कि जीव विकास क्रम में मानव की उत्पत्ति वानर से या उसके किसी पूर्वज जाति से हुई है।

वानर-वनमानुष-आधा वनमानुष-आधा मानव इस विकास क्रम में एक बिंदु पर जाति परिवर्तन के परिणामस्वरूप मानववंश के आदिम पूर्वज का आविर्भाव हुआ। वनमानुष और मनुष्य की शरीर की रचनाओं की तुलना करने पर उनके हाथ की हड्डियों, जोड़ों, नसों में कोई विशेष अंतर नहीं है। फिर भी विकास की दृष्टि से पिछड़े से पिछड़ा जंगली मनुष्य भी हाथ से जो काम ले सकता है वह वनमानुष के लिए संभव नहीं। किसी वनमानुष के पुरातन अवशेषों के साथ कोई कृत्रिम या जिसे मनुष्य ने कुछ रूप दिया है ऐसी कोई वस्तु या संक्षेप में कोई पत्थर का भद्दे से भद्दा हथियार भी नहीं पाया गया। इसका अर्थ हुआ कि आज तक किसी वनमानुष ने पत्थर का भद्दे से भद्दा हथियार भी तैयार नहीं किया।

(मानव समाज : राहुल सांस्कृत्यायन पृष्ठ१,२,३)

मनुष्य के हाथ की इस क्रियाशक्ति का अवतरण, धीमे परिवर्तन का और हजारों लाखों वर्षों की चेष्टाओं का परिणाम है। चेष्टाएं-जीने के लिए चेष्टाएं । इन चेष्टाओं को ही हम आगे चलकर श्रम के तौर पर संबोधित करते हैं। मानव के विकास में इस श्रम का महत्वपूर्ण योगदान है।

मानव प्रगति का कालक्रम महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन ने इस प्रकार दिया है-

(अ) वानर से नर 20 लाख वर्ष पूर्व

(ब) हथियार फेंकने वाले नर का आविर्भाव - 10 लाख वर्ष पूर्व

(स) हमारे अपने पूर्वजों (सपियन मानव) का काल - 5 लाख वर्ष पूर्व

हेकेल नाम के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक ने पुरातन मानव के अवशेषों के इण्डोनेशिया में मिलने की संभावना व्यक्त की थी। इस आधार पर आदिम मनुष्य के अवशेष खोजने का प्रयत्न हॉलैण्ड के आमस्टर्डम विद्यापीठ के एक विद्यार्थी डा. ड्यूवॉय ने सुमात्रा द्वीप में किया। लेकिन तीन साल के प्रयत्न के बाद भी कोई यश नहीं मिला तो उन्होंने अपना कार्य जावा द्वीप में शुरू किया। वहां उन्हें, बेंगयाना नदी के किनारे उत्खनन करते समय, अपेक्षित अवशेषों की प्राप्ति हुई। आधी खोपड़ी, दो दांत और जांघ की हड्डी, इतने ही अवशेष थे। लेकिन खोपड़ी की हड्डी और दांत तज्ञों की दृष्टि से उपर्युक्त सामग्री है। जांघ की हड्डी यह अनुमान लगाने के लिए महत्वूपर्ण सामग्री है कि क्या वह दो पांवों पर चलता था। डयूवॉय ने उसे नाम दिया पिथेकँथ्रॉपस इरेक्टस (खड़ा रहने वाला मर्कट मानव)| आगे इसी जाति के और छह मानवों के अवशेष वहीं मिले। आधुनिक मानव से तुलना करने पर जावा का यह मानव सदृश्य प्राणी दिखने में कुछ बन्दर जैसा होने पर भी पूर्ण अर्थ से मानव ही था। उसे जावा का आदि मानव कहा जाने लगा। **यह जावा के द्वीपाद का अवशेष कुछ 5 लाख साल पुराना है। अवशेष से ऐसा लगता है कि उसकी गर्दन बिल्कुल सीधी नहीं हो पायी थी। सबसे पुराना (मनुष्य का) अवशेष जो प्राप्त हुआ है वह यही है।** उस समय के या उसके बाद के मनुष्यों की पथराई हड्डियां (फोसाईल) जगह-जगह प्राप्त हुईं हैं।

इसके बाद बीजिंग (चायना) के पास एक टीले की खुदाई में आदि मानव के अवशेष मिले। उसका समय 3.5 से 5 लाख साल पूर्व का निश्चित किया गया। जावा आदिमानव की खोपड़ी के स्वरूप से, उसके मस्तिष्क का आकार बंदर के भेजे से डेढ गुना, तो बीजिंग मानव का डेढ से दो गुना और आधुनिक मानव का दो से ढाई गुना बड़ा पाया जाता है| इससे 4-5 लाख साल पुरातन आदि मानव के स्वरूप का अंदाजा लगाया जा सकता है। इस मानव का चेहरा और शरीरयष्टि आज के मानव से मामूली रूप से भिन्न थी| उसका मस्तिष्क छोटा था। इससे यह कहा जा सकता है कि विकास के दौरान अभी उस पर बन्दर के वंश की छाप

थी और आज के मानव की तुलना में उसका विकास कुछ अधूरा था। लेकिन यह मनुष्य सीधे खड़े होते थे। दो पांवों पर चलते थे। सबसे महत्वूपर्ण बात यह है कि वे जीवनयापन के लिए आजुबाजू के माहौल से अपनी आवश्यकता के अनुकूल चीजें प्राप्त करने और अपनी परेशानी कम करने की दृष्टि से पत्थरों के हथियार बनाने लगे थे। अग्नि का उपयोग करते थे। बीजिंग के पास चौ-कौ-तिएन की गुफा में उनकी हड्डियों के साथ राख का ढेर और पत्थर के अपरिष्कृत हथियार प्राप्त हुए थे।

चार - साढ़े चार लाख वर्ष पहले के मानव के अवशेष जर्मनी में हायडेलबर्ग के पास मिले। 3 लाख साल पूर्व के मानव के अवशेष लंदन से कुछ 30 कि.मी. दूरी पर स्वान्सकोर में भी प्राप्त हुए हैं।

जावा के आदिमानव के पूर्व काल के जो अवशेष प्राप्त हुए हैं, वे उनके मानव से अधिक पृच्छहीन बन्दर की जाति की ओर होने के संकेत देते हैं।

मानव विकास के क्रम का उल्लेख एक अन्य प्रकार से भी किया जाता है।

	विकास का स्तर	**खोज का वर्ष**	**काल**
(अ)	मर्कट शाखा के प्रथम प्राणी	.....	7 करोड़ साल पहले
(ब)	पहला पृच्छहीन बंदर	.....	4 करोड़ साल पहले
(स)	मानव पूर्व बन्दर(आस्ट्रेसोपिथेकस)	1925	10-15 लाख साल पूर्व
	(दक्षिणात्य बंदर शाखा)	(लेकिन विश्वासार्ह प्रमाण 1940 के बाद ही मिला)	
(द)	जावा का आदिमानव (पिथेकैन्थ्रॉपस)	1899 (लेकिन अधिक खोज 1930 के बाद हुई)	5 लाख वर्ष पूर्व
(य)	बीजिंग का आदिमानव (सिनथ्रापस)	(1930 के बाद)	3.5 से 5 लाख वर्ष पूर्व

अगला कालखंड

फ्रांस से लेकर तो मध्य एशिया तक एक विशिष्ट मानव शाखा के अवशेष प्राप्त हुए है| जर्मनी के निअँडरथल गांव के पास वे सर्वप्रथम प्राप्त हुए इस कारण यह मानव निअॅडर थल मानव के नाम से पहचाना जाता है। आधुनिक मानव के मस्तिष्क इतने बड़े मस्तिष्क वाला यह पहला ही मानव है। लेकिन उसके अवशेष 1.5 लाख साल से पुराने नहीं है। यह मानव कम ऊँचा लेकिन शरीर से मजबूत था। छोटी ठुड्डी, चपटी नाक, आंखों की ऊपर की हड्डियां सामने निकली हुई और कम चौड़ा माथा, यह उसके हुलियॉ की विशेषताएं थीं।
(मानवाची कहानी : प्रभाकर संझगिरी पृष्ठ ७७)

पुरातात्विक सामग्री

पुरातात्विक सामग्री में पथराई हड्डियों के साथ-साथ जो अन्य सामग्री मिली है, वह है मानव निर्मित उपकरण या हथियार। अर्थात् शुरू में पत्थरों के हथियार।

अंदाजन 150 साल पहले फ्रांस में सोम नदी के किनारे अॅबेव्हिल गांव में नहर खुदाई का काम चल रहा था| खुदाई के दौरान मिट्टी के साथ-साथ कई प्रकार के पत्थर और हड्डियां बाहर आ रही थीं। अॅबेव्हिल के चुंगी खाते का अफसर 'बाउसर द पर्थेस' उत्सुकता से उन्हें निहार रहा था। कुछ हड्डियां दरियाई घोडे की थीं तो कुछ रेनडियर की और कुछ बालों वाले हाथियों की| प्राप्त हुए पत्थर भी अजीब थे| कुछ कुदाल के फाल जैसे, कुछ पत्थर के फाल जैसे, तो बालों वाले हाथी के साथ-साथ अस्तित्व में होने वाले किसी प्राणी का यह कर्म होना चाहिए। यह प्राणी, आदमी से भिन्न कोई और नहीं हो सकता, इस बात पर आज विवाद का प्रश्न ही नहीं उठता। अपना अस्तित्व इतिहास में दर्ज करने के लिए, प्राणी अपनी हड्डियों के ढांचे पीछे छोड़ गए, तो मनुष्य अपने गढ़े हुए औजार। पर्थेस ने अपना निष्कर्ष प्रतिपादित करने वाली पुस्तक १८४६ में प्रकाशित की। शुरू में उस पर किसी ने विश्वास नहीं किया। लेकिन पर्थेस अधिक से अधिक साहित्य इकट्ठा करता रहा। उस समय के प्रसिद्ध भूगर्भशास्त्री लायेल (डार्विन के मित्र) ने स्वयं अॅबेव्हिल पहुँच कर जब छानबीन की और पर्थेस के प्रतिपादन की पुष्टि की, तब जाकर कहीं इन बातों पर लोगों का विश्वास हुआ। **"मानव के प्राचीनत्व का भूगर्भशास्त्रीय प्रमाण" यह पर्थेस की पुस्तक १८६३ में प्रकाशित हुई। इस तरह मानव इतिहास से संबंधित एक नए शास्त्र की नींव रखने का श्रेय पर्थेस को प्राप्त हुआ।** अन्य उत्सुक वैज्ञानिक भी इस काम में जुट गए। इंग्लैंड में थेम्स नदी के किनारे ऐसे ही अवशेष मिले। अन्य जगह भी वे प्राप्त होने लगे। इससे यह सत्य स्थापित हुआ कि सभी जगह लम्बे समय तक मानव समूह अपने हथियार, पत्थर से बनाता था। मानव संस्कृति के इस लाखों साल के लम्बे कालखंड को पाषाणयुग कहते हैं।

मनुष्य द्वारा निर्मित सबसे आदिम प्रस्तर औजार बटिकाश्म उपकरण (पेबल टूल)

कहलाता है। यह आम तौर पर अनघड तरीके से तराशा और तेज किनारों वाला, कोई दो-सवा दो किलोग्राम भार का पत्थर का टुकड़ा हुआ करता **था। यह आदिम उपकरण प्रतिरक्षा का साधन भी था और काम का औजार भी था।**

(संक्षिप्त विश्व इतिहास : भाग १ पृष्ठ11.१२ प्रगति प्रकाशन मास्को)

पुरातत्वज्ञ, मानव जाति के इतिहास को, मानव द्वारा बनाए गए उपकरणों की, बनाए जाने की सामग्री के अनुसार, तीन युगों में विभाजित करते हैं।

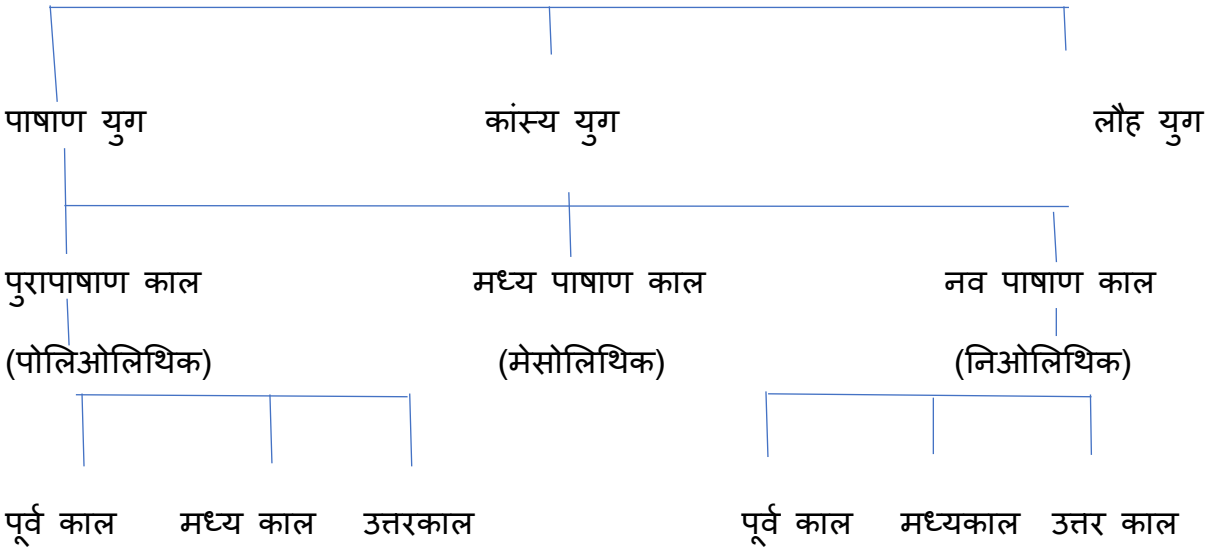

<u>पर्यावरण में परिवर्तन और हिमयुग</u>

सोमनदी के उत्खनन में पर्थेस को दरियाई घोड़े, रेनडिअर, बालों वाले हाथियों की हड्डियां आदि मिलीं। बाद में ऐसे अवशेष यूरोप में कई जगह मिले। बालों वाले हाथी जैसे प्राणियों का अस्तित्व आज दुनियां में कहीं नहीं है। दरियाई घोड़े, गैंडा ये उष्ण कटिबंधीय प्रदेश के प्राणी हैं। वे ठंडे प्रदेश में नहीं जी सकते। यूरोप की आज की आबोहवा उनके अनुकूल नहीं है। उल्टा रेनडिअर और बालों वाले हाथी अतिशीत प्रदेश के प्राणी हैं। आज रेनडियर केवल उत्तर के बर्फीले प्रदेश में ही है। बालों बाले हाथियों का भी अंतिम रिहायशी क्षेत्र यहीं प्रदेश था ऐसा अनुमान है।

इन दो ढंग के प्राणियों का अस्तित्व, एक ही प्रदेश में एक ही समय असंभव है। भूगर्भीय प्रमाण भी उनका अस्तित्व समकालीन होने की बात नहीं कहते। उनके अवशेष भूगर्भ के भिन्न-भिन्न स्तरों में प्राप्त हुए है| इससे हम अनुमान कर सकते हैं कि कभी यूरोप की आबोहवा आज से अधिक उष्ण थी और जिनके लिए उष्ण आबोहवा अनुकूल है ऐसे प्राणी वहाँ वास करते थे| तो किसी अन्य समय, वहाँ की आबोहवा आज की तुलना में अति ठंडी

थी। ये सारे स्तर पिछले 10 लाख साल के कालखंड के हैं। यानी मानवी विकास के कालखंड के। भूगर्भ शास्त्र में इस दस लाख साल के कालखंड को प्लेस्टॉसीन (नवतम) युग कहते हैं। (मानवाची कहानी: पृष्ठ 81)

ऐसे परिवर्तन उत्तर अमेरिका और उत्तरी एशिया में भी देखने को मिलते हैं। जमीन के विभिन्न स्तर और उनसे प्राप्त प्राणियों के अवशेषों से ऐसा सिद्ध होता है कि यूरोप आदि प्रदेशों में चार अतिशीत कालखण्ड या हिमयुग हो गए हैं| ये बदल क्यों हुए यह चर्चा यहां अप्रस्तुत है। अब यह स्थापित हो चुका है कि अन्तिम हिमयुग समाप्त होकर अब 20000 साल बीत चुके हैं। ऐसी संभावना भी व्यक्त की गयी है कि 30000 साल बाद फिर हिमयुग जैसे स्थिति आ सकती है ।

समय-समय पर, हिमयुग के पूरे जोर के दरम्यान, यूरोप छोड़कर अफ्रीका और एशिया में स्थलांतर और वापस यूरापे में पहुँचना, मानव के लिए आवश्यक होना चाहिए। प्रत्यक्ष में यह स्थलांतर हजारों सालों तक चलता था। अपना मूल प्रदेश छोड़कर हम दूर निकल आए हैं, ऐसा किसी एक पुश्त को लगना संभव नहीं था। इस तरह मानव समाज अफ्रीका, एशिया, यूरोप खंडों में फैला।1

<u>नेअंडरथल मानव</u>

जहां तक नेअंडरथल मानव-काल का प्रश्न है, तब पाषाण अस्त्र अधिक शक्तिशाली बनने लगे थे। लेकिन मानसिक विकास की दशा की ओर देखने पर ऐसा नहीं लगता कि कला की दिशा में इस मानव के संदर्भ में कुछ विकास हुआ हो। हमारे विषय की ओर बढ़ने के लिए जिसका उपयोग हो सकता है ऐसी इनकी एक बात का पता चलता है। यह मानव, मुर्दों के बड़ी तैयारी के साथ दफनाता था। यह बात बताती है कि मृत्यु भी उसके मन में एक खास तरह का भाव पैदा करती थी।2

1(मानव समाज : राहुल सांस्कृत्यायन, पृष्ठ83)
2(मानव समाज : राहुल सांस्कृत्यायन, पृष्ठ 39)

पूर्व पुरापाषाण काल के अन्त में तीसरा हिमार्वतन हुआ। एशिया और यूरोप के विस्तृत इलाकों में जलवायु अतिशीत बन गयी। बहुत से पशु, जलवायु के इतने तीव्र परिवर्तन को सहन नहीं कर सके। उनमें से कुछ विलुप्त हो गए। इसी बीच मनुष्य ने, स्वयं को नयी प्राकृतिक अवस्थाओं के अनुरूप ढालने में सफलता प्राप्त कर ली थी। इसी युग की बात है कि आदिम मानव झुंड का अधिक उन्नत प्रकार के समुदाय में क्रमिक रूपांतरण हुआ। लेकिन अभी भी वह प्राकृतिक आश्रयों-मुख्यतः गुफाओं का ही उपयोग करता था।

वैसे तो आधुनिक मानव ई.पू. चालीसवें और बारहवें सहस्राब्दियों के बीच यानि उत्तर पुरा पाषाण काल में विकसित हुआ। इसी काल में पहले नस्लीय भेद भी प्रकट हुए|1

1(संक्षिप्त विश्व इतिहास भाग1 पृष्ठ १२-१३)

भिन्न-भिन्न मानव जाति की चमड़ी और आंख का रंग बतलाता है कि उन्हें भिन्न-भिन्न जलवायु में, सर्दी-गर्मी में, अपने जीवन का बड़ा भाग बिताना पड़ा| काली पुतलियां गर्म प्रदेश में सूर्य के प्रखर प्रकाश को कम करने के लिए जरूरी है और नीली पुतलियां ऐसे प्रदेश के लिए जहां सूर्य की किरणें मंद होती है।[2]

2(मानव समाज: पृष्ठ १४)

आदमी के रंग रूप : चार

समस्त पृथ्वी पर निम्न चार ही रूप और रंग के आदमी बसते हैं।[3]

3(वैदिक सम्पत्ति, पृष्ठ २१७.२१८,२१९,२२१)

१ सफेद रंग और ऊँची-पुरी आकृति के मनुष्यों को काकेशस कहते हैं। कॉकेशियन इस शब्द का जनक है, 18 वीं सदी का जर्मन व्यक्ति जॉन फ्रेडिक ब्लूमनबाक। वह निसर्गतज्ञ और शरीर रचना तज्ञ था। उसने 200 साल पहले यानि १७९५ में "ऑन द नॅचरल व्हेरायटी ऑफ मनकाइण्ड" नाम की किताब लिखी| उसमें सबसे पहली बार कॉकेशियन यह शब्द प्रयोग में लाया गया। रूस और जॉर्जिया में कॉकेशस पर्वत श्रृंखलाएं हैं| उसकी दक्षिणी ढलान पर दुनियॉ के सबसे सुंदर लोग रहते हैं| कॉकेशस पर्वत यह सुन्दर लोगों की जन्मभूमि समझकर, उनके जैसे लोगों को कॉकेशियन कहा जाने लगा। आज पाश्चात्य देशों के गोरे लोगों को कॉकेशियन कहा जाता है। वह अब अधिकृत शब्द बन गया हे। (वैसे स्वीडन में दुनियां की सबसे गौर-गुलाबी रंगोवाले आदमी हैं तो द. पॉसिफिक में स्थित बुगलविले द्वीप पर एकदम काले (शीशम के रंग के) आदमी हैं।[4]

4(चित्रलेखा : नियतकालिक एप्रिल९५ पृष्ठ३१ : मराठी)

२.पीले रंग और चौड़ी आकृति के मनुष्यों को मंगोलिक कहते हैं ।

३.काले और मोटी आकृति के मनुष्यों को इथिओपिक कहते हैं।

४.लाल रंग और पतली आकृति के मनुष्यों को अमेरिकन (रेड इंडियन) कहते हैं।

और उनके संकर से बने जन भी हैं।

इसी जगह आगे लिखा गया है-

'यह इतिहास प्रसिद्ध है कि हजरत नुह के बेटों का नाम हेम और शेम था। 'हेम' से हेमेटिक जाति और 'शेम' से सेमेटिक जाति की उत्पत्ति हुई है। संसार के जितने मनुष्य है सब हेमेटिक और सेमेटिक शाखाओं में समा जाते हैं।' और भी-

"मनु का नाम था वैवस्वत मनु। विवस्वान सूर्य को कहते हैं| इसीलिए वैवस्वत मनुवंशी, इक्ष्वाक आदि सूर्यवंशी कहलाते हैं| **हजरत नूह के दोनों पुत्र हेम और शेम के वंश सूर्यवंश और चंद्रवंश ही है|** सूर्य को हेमगर्भ अर्थात् हिरण्यगर्भ भी कहते हैं और शेम तो सोम के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं।"

चतुर्थ हिमयुग का समय

ई.पू. 20000 के लगभग का समय चतुर्थ हिमयुग का समय था। इस हिमयुग का पूरी तरह अन्त ई.पू. 8000 के करीब हुआ। ई.पू. 20000 के लगभग 'औरिग्नोशियन' मानवों का पता लगता है| इससे पहले के अर्थात् नेअंडर्थल मानव के पास कोई कला नहीं थी, लेकिन औरिग्निशियन मानव में इतनी समझ उत्पन्न हो गयी थी, जिसे हम आदि कला कह सकते हैं| रहने की गुफाओं में अपनी अंगुलियों से उन्होंनें चित्र अंकित किए हैं| उनमें से कुछ चित्र प्राप्त हुए हैं| मनुष्य ने लाल और काले रंगों में जानवरों की तस्वीरें बनानी शुरू की। इन चित्रों में केवल बाल वाले गैंडे, हिरन, जंगली घोडों की ही तस्वीरें मिलती हैं। हड्डी, हाथीदांत, पत्थरों पर भी उसने चित्र उत्कीर्ण किए। इसी जाति के अंतिम काल में धनुष्य-बाण के आविष्कार का पता लगता है। इस काल की मानव जातियों में ग्रिमाल्दि, क्रोमेग्नन् आदि शामिल हैं। क्रोमेग्नन् मानव की चित्रकला के भी नमूने मिले हैं। गंगपुर (छत्तीसगढ़) में पत्थर पर उत्कीर्ण कुछ चित्र मिले हैं। इनमें शिकार के कुछ दृश्य दिखलाए गये हैं। ऐसे ही उत्कीर्ण चित्र दुनियॉ के अन्य देशों में भी मिले हैं। **इन चित्रों में देव, भूत तथा दूसरे धर्म सम्बन्धी अलौकिक शक्ति बिंबों की गंध तक नहीं मिलती है।**[1]

1(मानव समाज: राहुल सांस्कृत्यायन, पृष्ठ11,३९)

चतुर्थ हिमयुग की समाप्ति के साथ, पुरापाषाण युग समाप्त हो जाता है| **चतुर्थ युग के बाद से, लगातार जो मानव जाति चली आ रही है या अपना अस्तित्व बनाए हुए हैं, वह हमारी मानव जाति है। इसे सपियन मानव जाति कहा गया है**| दूसरी मानव जातियां हिमयुगों के बीच में ही लुप्त हो गयीं। सपियन जाति का भी बहुत सा समय जंगली अवस्था में ही बीता।

मिथकीय युग

अभी तक हमने मनुष्य के इतिहास से संबंधित जो भूगर्भीय सबूत प्राप्त हुए उस आधार पर वैज्ञानिक सिध्दान्त या अनुमानों पर दृष्टिपात किया। अब मनुष्य की उत्पत्ति विषयक कुछ मिथकीय बातों का भी हम यहां, चलते-चलते, उल्लेख करेंगे।

1.एक हिन्दू मिथक के अनुसार मनुष्य की उत्पत्ति की कालगणना इस प्रकार है-

सातवें वैवस्वतमनु सें मनुष्य का जन्म हुआ| इसकी कालगणना इस प्रकार है। वैवस्वतमनु की 27 चतुर्युगी बीत चुकी हैं। हमारा एक वर्ष यानि देवताओं का एक दिन है। देवताओं के 12000 वर्षों की एक चतुर्युगी है।

अतः एक चतुर्युगी के वर्ष हुए 120000 * 360 -- 4320000

सत्ताइस चतुर्युगी के वर्ष हुए 4320000 * 27 --116640000

अठ्ठाइस वीं चतुर्युगी में तीन युग बीत चुके हैं-

सतयुग के	1728000 वर्ष
त्रेतायुग के	1296000 वर्ष
द्वापर युग के	864000 वर्ष
और आज तक कलयुग के	75000 वर्ष
कुल समय	120533000 वर्ष [1]

1(वैदिक सम्पति (१९२९ में प्रकाशित),पृष्ठ ११२)

2. बाइबल के पुराने अहदनामे के अनुसार [2]

आदम से नोहा तक 11 पीढ़ियां कहो 2262 वर्ष

नोहा के पुत्र शेम से इब्राहिम तक 11 पीढ़ियां या कहो 1310 वर्ष

योग ---------- 3472 वर्ष

2(वैदिक सम्पति (१९२९ में प्रकाशित),पृष्ठ १००)

इब्राहिम कब हुआ इस विषय में कुछ मतभेद हैं| डा. स्पिगल के अनुसार वह ई.पू. 1900 में हुआ। इनके अनुसार इब्राहिम को हुए, आज तक (इस प्रतिपादन तक) 3829 वर्ष हुए हैं। किन्तु अन्य विद्वान आदम का समय (उपरोक्त वर्ष से) 6993 वर्ष पूर्व बताते हैं। इस हिसाब से इब्राहिम को हुए 3421 वर्ष मान लें तो आदम को हुए 3572 + 3600=7172 वर्ष होते हैं।

और भी कई गणनाएँ है| लेकिन उन सबका उल्लेख यहां करना संभव नहीं।

प्रकरण: दो

समाज विकास

मानव समाज की प्रगति

गोत्र समुदाय

आदिम मानव झुंडों में रहा करते थे। जो भी झुंड से अलग रहता था वह शत्रु समझा जाता था। पुरापाषाण काल में ही आदिम झुंड का स्थान सामाजिक जीवन के एक नए रूप ने ले लिया था। इस नए रूप को 'गोत्र समुदाय' कहा जाता है। यह एक नयी सामाजिक संरचना थी। इस का आधार मातृक सगोत्रता थी। सगोत्रता केवल मातृवंशीय ही हुआ करती थी। यह मातृसत्तात्मक पद्धति पर आधारित समाज था। उसका कई हजार सालों तक अस्तित्व रहा। यह अवधि मोटे तौर पर मध्य पाषाण तथा पूर्व नव पाषाण कालों की समकालीन थी।

लंगूरों के यूथ (झुंड) में सबसे शक्तिशाली नर को स्वामित्व का अधिकार होता है। वानरों, लंगूरों, वनमानुषों में यूथ का स्वामी नर होता है| किन्तु मनुष्य को संघशक्ति का पता काफी पहले से था। अतः मनुष्य की आदिम अवस्था में भी यूथप नहीं देखा गया। **उसकी जगह वहां परिवार था। परिवार की प्रमुख एक स्त्री होती थी। उस समय समूह विवाहों का ही चलन था जिसके कारण बच्चे अपने पिताओं को नहीं सिर्फ माताओं को ही जानते थे। वह निश्चित पति-पत्नी का समय नहीं था।** परिवार के सभी व्यक्ति जानते थे कि उनकी वहीं एक माता है| पुरूषों का पिता होना उतना निश्चित नहीं था कि जिसके कारण सारे परिवार के साथ उसकी माता जैसी घनिष्ठता हो। **परिवार की प्रमुख स्त्री, परिवार की मां भी होती थी।** उस समय सारे परिवार को एक साथ मिलकर जीविकार्जन और शत्रुओं से मुकाबला करना पड़ता था। परिवार के बाहर का कोई भी, कठिन जीवन स्थितियों के कारण एक परिवार का शत्रु बन सकता था। अतः स्त्री-पुरूष संबंध भी परिवार के भीतर ही होते थे। इस ऐतिहासिक बात के अवशेष अभी भी देखने को मिलते हैं| जैसे दक्षिण भारत के कुछ भागों में मामा के साथ भांजी का विवाह। रक्त की पवित्रता बनाए रखने के लिए मिश्र और इराण के शासकों में भाई-बहन के विवाह के कितने ही दृष्टांत मिलते हैं| लैटिन अमेरिका की इन्का संस्कृति में भी ऐसे उदाहरण मिलते हैं। उस वक्त के समाज की यही विशेषता थी कि समाज में वर्चस्व स्त्री का था। इसे ही मातृसत्ता या मातृशाही कहते हैं। आज यह बात कुछ अजीब लग सकती हैं लेकिन इस अवस्था में रहने वाली प्राचीन और अर्वाचीन जातियों का अध्ययन करते हुए वैज्ञानिक इसी नतीजे पर पहुंचे हैं ।[1]

1 मानव समाज : पृष्ठ२३

समाज व्यवस्था : आदिम साम्यवाद

जंगल मानव के पास साधन कम थे। इसलिए उसे अपनी बढ़ती आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए व्यक्ति से अधिक समाज पर निर्भर रहना पड़ता था। जो कुछ भी थोड़ी सी सम्पत्ति होती थी वह सम्मिलित श्रम से प्राप्त होती थी। अतः वह भी सम्मिलित होती थी। उस समय यूथ से अलग अस्तित्व का ख्याल भी नहीं था। सभी मिलकर एक दूसरे की रक्षा करते थे। साथ मिलकर खाद्य एकत्र करते थे। साथ मिलकर परिश्रम करते थे। साथ मिलकर भोजन करते थे। उनमें कोई असमानता नहीं थी। अधिक से अधिक अपने बनाए या इस्तेमाल किए जाने वाले हथियार का अपवाद छोड़कर **सारी सम्पत्ति सामूहिक थी। इस अवस्था को आदिम साम्यवाद कहते हैं।**

आदिम साम्यवाद का काल ई.पू. 10000 वर्ष तक का माना जाता है।

उपजिविका के साधन

इस दरम्यान फलसंचय मनुष्य की प्रथम अवस्था थी। मछली और जानवर का शिकार दूसरी अवस्था थी। यहीं जीविका के प्रधान साधन थे।

जनयुग (7000 ई0पू0 तक का काल)

उपरोक्त वर्णित गोत्रीय पारिवारिक अवस्था के बाद परिवारों के समूह 'कम्यून' की उत्पत्ति हुई| एंगेल्स ने जंगली अवस्था से आगे की स्थिति को 'जन' कहकर संबोधा है। 'जन' प्राचीन हिन्दी-यूरोपीय शब्द है जिसका अर्थ मनुष्य या मनुष्य जाति होता है। लेकिन एंगेल्स ने उसे मनुष्यों के एक वंशज समुदाय के अर्थ में उपयोग में लाया है। भारत में भी जन शब्द का प्रयोग एक वंशज मनुष्य समुदाय के अर्थ में होता था लेकिन फिर भी यह विकास की अवस्था को व्यक्त नहीं करता था। हिन्दी आर्य जिस वक्त अफगानिस्तान और सिन्धु के तट पर पहुंचे तो वे अलग-अलग जनों (कबीलों) में विभक्त थे। वे जिन प्रदेशों में जाकर बस गए वह (कबीला) उन्हीं जनों के नाम से प्रसिद्ध हो गया। 'जन' एक वंश के लोगों का समाज था। वह जंगलों या पहाड़ियों की प्राकृतिक सीमाओं के भीतर एक स्थान पर रहता था। स्थिर वास न होने पर भी हर एक जन की विचरण भूमि निश्चित थी।

किन्तु समाज के विकास में वैज्ञानिक उस अवस्था को जन कहते हैं जबकि समाज में मातृसत्ता की प्रधानता थी और आदिम कम्यून से समाज अधिक दूर नहीं हटा था। वर्गभेद भी स्पष्ट रूप से नहीं उभरे थे। इस समाज में आचार सादा था। सांघिक जीवन के विरोधी सभी काम दुराचार समझे जाते थे।

वैयक्तिक संपत्ति न होने से चोरी का सवाल ही नहीं उठता था। जन समाज में अधिकार और कर्तव्य में कोई भेद नहीं था। वहां यह प्रश्न बेमानी था कि सार्वजनिक जीवन

में हिस्सा लेना व्यक्ति का कर्तव्य है या अधिकार। यह प्रश्न उनके लिए उसी तरह बेमानी था जैसे यह पूछना कि खाना, सोना, शिकार करना व्यक्ति का कर्तव्य है या अधिकार। जन कबीले के नियम या निर्धारित बातें हर व्यक्ति के लिए पवित्र और अनुल्लंघनीय थीं।

1(मानव समाज : पृष्ठ ३९.४०)

इसी काल में पशुपालन की नींव पड़ी| सबसे पहले पालतू बनाया जाने वाला जानवर शायद कुत्ता था। कृषि के भी आदिम रूपों का इसी काल में आविर्भाव हुआ।2 मानव ने अपरिष्कृत पाषाण आयुधों के स्थान पर घनुष्य और बाण जैसे अधिक श्रेष्ठ आयुधों का निर्माण किया। लोगों ने इस काल में मिट्टी के बर्तन बनाना सीखा। दूसरे कबीलों से झगड़ों का निबटारा युध्द द्वारा होता था। **यहां एक कबीले का सर्वनाश भले ही संभव था लेकिन किसी को गुलाम बनाते हुए नहीं पाया जाता था।**

2(संक्षिप्त विश्व इतिहास : पृष्ठ१४)

इस तरह हमने देखा, लोग पहले छोटे-छोटे समूहों, कुलों अथवा गोत्रों या जनों, कबीलों में रहा करते थे। यह काल आदिम समाज का युग कहलाता है। आदिम सामुदायिक व्यवस्था का काल पांचवीं सहस्राब्दियों ई.पू. तक माना गया है।3

3(दर्शन कोश (प्रगति प्रकाशन, मास्को) पृष्ठ 70)

गोत्र, कबीला, जन इनके विषय में कुछ अधिक बातों पर विचार करेंगे।

जहां तक भारतीय इतिहास की बात है, 'जन' की अपेक्षा 'गोत्र' शब्द जनअवस्था के नजदीक हैं। पीछे हमने देखा कि इसी अवस्था में पशुपालन की नींव पड़ी| गौ एक समय हिन्दी आर्यों का प्रमुख धन था। गोत्र का वैसे अर्थ भी है गौओं की रक्षा का साघन, स्थान या रक्षक समुदाय। इसलिए एक वंशज जनसमुदाय या वंश को ही गोत्र (गाय रखने वाला) कहा गया। जन अवस्था में जहां यूरोपीय समाज पशुपालन आरम्भ करता है, हमारे यहां वह गोपालन की समृद्धि का समय था।4

4(मानव समाज,पृष्ठ २९)

गोत्र (clan) लोगों के समुदाय का एक रूप था या है जो रक्त संबंध पर आधारित होता है| इसका उद्भव आर्थिक सम्बन्धों के आधार पर आदिम समुदायों में हुआ था| गोत्र समुदायों का नाभिक हुआ करता था। वह सदस्यों को घनिष्ठ रूप से एक समष्टि में बांध रखता था। इसमें सम्पत्ति और सामाजिक विभेदों का अभाव था। आदिम सामुदायिक व्यवस्था के विकास के साथ गोत्रों की संख्या धीर-धीरे बढ़ती गयी।

गोत्र बिरादरियों में, बिरादरियां कबीलों में और कबीले कबायली संघों में एकीकृत होते गए। उत्पादक शक्तियों की प्रगति और समुदाय तथा परिवारों के बीच पण्य मुद्रा संबंधों के

विकास ने गोत्र का ह्रास पूर्वनिर्धारित किया जिसकी भूमिका वर्ग समाज में घटती चली गयी।[1]

1(दर्शन कोश (प्रगति प्रकाशन,मास्को)पृष्ठ १८४

कबीला (tribe) मानव समुदाय का एक रूप था। यह आदिम सामुदायिक व्यवस्था की एक विशेषता थी । कबीला गोत्र संबंधों पर आधारित था। यह क्षेत्र, भाषा तथा संस्कृति की दृष्टि से कबीलों की विविधता पर निर्धारित **था। गोत्र सम्बन्धों के स्थान पर पण्य-विनियम के सम्बन्धों की स्थापना के फलस्वरूप कबीले विघटित हो गए और जातियों में ऐक्यबध्द हो गए।[2]**

2(दर्शन कोश पृष्ठ १३३)

प्रकरण : तीन

अलौकिक शक्ति विषयक या धार्मिक कल्पनाएं

आदिम काल में

पिछले अध्याय में हमने लगभग ई.पू. 5000 साल तक, मनुष्य का शारीरिक, बौध्दिक, ग्रहणशक्ति की दृष्टि से, मनुष्य समाज की संरचना की दृष्टि से, विकास किस तरह हुआ यह व्यापक पार्श्व में देखा| अब हमें हमारा ध्यान हमारे इप्सित विषय पर ही केंद्रित करना है। अर्थात् आदिम काल में अलौकिक शक्ति विषयक या धार्मिक कल्पनाएं क्या थीं? पीछे इस पर भी चर्चा हो चुकी हैं कि उस समय की जानकारी प्राप्त करने का साधन है पुरातात्विक सामग्री। **धर्म को शाश्वत बताने वाले कहते हैं कि धर्म का अस्तित्व मनुष्य के प्रादुर्भाव के समय से ही था। लेकिन उपलब्ध सामग्री की कसौटी पर यह दावा कहां तक खरा उतराता है, यह एक प्रश्न ही है।**

(प्राचीनतम 40000 वर्ष पूर्व तक)

प्राचीनतम पूर्वजों (पिथेकेंथ्रोपस और सिनेंथ्रोपस) से लेकर तो निएंडरथल मानव तक या अधिक उचित होगा कि हम 40 हजार वर्ष पूर्व तक का काल लें। इस काल की उपलब्ध पुरातात्विक सामग्री में निम्न बातों का उल्लेख किया जा सकता है।

अ).कई शवाधान प्राप्त हुए है जिनमें निएंडरथलों के कंकाल या खोपड़ियां दफन की हुई थीं। उदाहरण के तौर पर -

'फ्रांस में ला मुस्तरा की गुफा' और षापिल-ओ-सें' के समीप प्राप्त सामग्री /उजबेकिस्तान में 'तेशिक ताश' आदि जगह।

इससे इतना ही अनुमान किया जा सकता है कि उनमें मृतक के प्रति किसी ढंग का लगाव था।

(ब) रेगूर्दू (दार्दोन्ये-दक्षिण फ्रांस) की गुफा में भालू की हड्डियां निएंडरथली शवाधान के साथ मिली है।

पुरातत्ववेत्ताओं ने इनके विषय में व्यक्त की संभावनाएं इस प्रकार हैं-

1.भालू पूजा की प्रथा के ये आदिम लक्षण हो सकते हैं।

2.टोटेमवाद (पशुओं से लोगों की अलौकिक सजातीयता में विश्वास) के आदिम चिन्ह हो सकते हैं।

3. महज संयोग हो सकता है।

लेकिन आम तौर पर इस काल को हम निश्चित तौर पर धर्म पूर्व काल कह सकते हैं।

<u>चालीस हजार से अठ्ठारह हजार वर्ष पूर्व तक का काल</u>

इस काल के विश्वसनीय भौतिक अवशेषों की संख्या बढ़ जाती है| यही उत्तर पुरापाषाण काल है। इसे आधुनिक किस्म के मानव 'होमो सैपियंस के काल' के तौर पर भी लिया जा सकता है।

अब पत्थरों और हड्डियों से परिष्कृत उपकरण बनाए जाने लगे थे। आखेट कर्म अधिक विकसित और उत्पादक होने लगा था| इस काल को कई चरणों में विभाजित किया जाता है।

(अ) शुरू के काल की, तरह-तरह की वस्तुओं और आभूषणों से युक्त कंकाल या खोपड़ियां शवाधानों में प्राप्त हुई हैं।

(आ) अरिग्नेशी युग: इस काल के मूर्तिशिल्प तथा गुहाचित्र प्राप्त हुए है| उत्तरी स्पेन के सावंदरे प्रान्त में विख्यात अएतामिरा गुफा, एक शिकारी द्वारा 1863 में ही खोज ली गई थी। इसमें जानवरों के बहुत सारे चित्र पाए गए। वे अति प्राचीन हैं| ऐसे चित्र और गुफाओं में भी मिले हैं। वेजेर नदी (फ्रांस) के तट पर स्थित लास्सेल के पास की गुफा में एक स्त्री की मूर्ति मिली है। स्त्री को एक सींग आनुष्ठानिक मुद्रा में, ऊपर की ओर उठाते हुए दिखाया गया है। इनमें पशुओं के चित्र तो अधिकतर यथार्थ के नजदीक है। लेकिन मनुष्यों के चित्र अधिकतर या तो पशुओं के मुखौटे पहने हुए या पशु-मानव आकृतियों को एकीकृत किए हुए रूप में हैं। सर्वाधिक प्रसिद्ध चित्र एक नाचते हुए ओझा का है जिसकी लम्बी दाढ़ी है और उसे घोड़े की पूंछ जैसी पूंछ लगायी हुई है। सिर पर हिरन के सींग सजाए हुए हैं, कंधों पर किसी जानवर की खाल है| एक गुफा की दीवार पर तीन नाचती हुई आकृतियां कुरेदी हुई हैं| उनकी टांगें तो दो ही हैं मगर वे सिर पर सांभर के सिर के शक्ल के मुखौटे पहने हुई हैं| आस्ट्रेलियाई जनजातियों में पूर्वजों के आज भी ऐसे ही चित्रित किया जाता है।

उपरोक्त सामग्री से निम्न, बहुत ही सामान्य अनुमान निकाले जा सकते हैं| उत्तर पुरापाषाण काल में निम्न ढंग की मान्यताओं का उदय हो चुका था-

1.मरने वाला मौत के बाद भी किसी न किसी रूप में जिन्दा रहता है| यही मान्यताएं आगे अविनाशी आत्मा की कल्पना की ओर ले जाती हैं।

2.किसी ढंग के अनुष्ठान का उदय। यह हमें उपासना की ओर ले जाता है अर्थात् अतिमानवी अस्तित्व की कल्पना की ओर।

इस काल के अंतिम दौर में यानि अजीली युग में पशुओं और मनुष्यों के स्थान पर आरेखीय शैली में बनायी गयी आकृतियां मिलती हैं।

पश्चिमी यूरोप में अरिग्नेशी युग की कई स्त्री मूर्तियां प्राप्त हुई हैं|

<u>नवपाषाण काल (7-5 हजार वर्ष पहले)</u>

संक्षेप में इस काल की विशेषताएं थीं -

1.यूरोप और मध्य पूर्व के अधिकांश भागों में कृषि और पशु पालन में संक्रमण हो चुका था।

2.जनजातियों (कबीले) स्थायी या अर्धस्थायी बन चुकी थीं|

इस काल की उपलब्ध पुरातात्विक सामग्री भी मुख्यतः शवाधानों तक ही सीमित है। हां, उनकी संख्या काफी बढ़ गयी है। शवाधान स्थलों में अस्थियों के साथ अब आम और दैनंदिन उपयोग की वस्तुएं मिलने लगती हैं| आभूषण, हथियारों के साथ-साथ खाने-पीने की वस्तुओं से भरे बर्तन भी। स्पष्टतः लोगों का विश्वास था कि मृतक को इन सबकी मरणोपरांत भी आवश्यकता होगी।

इस काल के शवाधानों में मृतक को दफनाने के कई ढंग अपनाए गए हैं-

1. गुफा में दफनाना

2. विशाल अनगढ़ पत्थरों से निर्मित समाधि

3. कृत्रिम गुफा में दफनाना

4. पत्थर के ताबूत में दफनाना

5. सीधे जमीन में गाड़ना

आगे धीरे-धीरे मृतकों का दाह करने की पद्धति शुरू होती गयी। शुरू में इसका प्रसार उत्तरी फ्रांस, ब्रिटैनी भागों में अधिक हुआ। लेकिन इस प्रथा के शुरू होने का पूर्ण भौतिकवादी स्पष्टीकरण अभी तक ज्ञात नहीं हो सका है। कुछ विद्वान प्रथा का मूल प्राचीन लोगों के मरणोपरांत जीवन में विश्वास में मानते हैं| शव को जलाने से, मानो आत्मा को शरीर से निकलने और मुक्त होने का रास्ता खुल जाता है।

इन शवाधानों में विशेषकर गुफाओं में पत्थर पर स्त्री आकृतियां तराशी हुई मिलती हैं| लघु एशिया के तटवर्ती भाग, एजियन द्वीप समूह, बाल्कन और पेरीनीज प्रायद्वीप, फ्रांस, इंग्लैंड और स्कैंडिनेव्हिया में इस काल के संस्तरों में पत्थर या मिट्टी की अनगढ़ स्त्री मूर्तियां

और बर्तनों पर स्त्री की बनी हुई शक्लें मिली हैं। **तुलनात्मक दृष्टि से पुरूष मूर्तियां बहुत ही कम मिलती हैं| हो सकता है कि यह मातृसत्ता के प्रभाव का परिणाम हो। लेकिन लगता है नवपाषाण काल में देवी पूजा का प्रचलन शुरू हो चुका था। क्या इस पूजा या उपासना का संबंध किसी भौतिक वस्तुस्थिति से भी था। क्या उर्वरता वृद्धि की मनुष्य इच्छा से था?**

<u>धातु युग</u>

पाषाण युग के बाद धातु युग आता है, कांस्य युग और लौह युग| इस युग की विपुल पुरातात्विक सामग्री उपलब्ध हुई है| ऐसा लगता है कांस्ययुग में अंत्येष्टि संबंधी अनुष्ठान अधिक जटिल बने।

साधारण सदस्यों के शवाधान साधारण होते थे। तो कुछ कब्रों में बहुत सारी मूल्यवान सामग्री, घोडे, इतनाही नहीं तो कहीं-कहीं लोग भी दफन किए हुए प्राप्त हुए हैं| अर्थात् वे किसी प्रभावशाली या शक्तिशाली व्यक्तियों की कब्रें होनी चाहिए|इससे, पुरातन समाज की तुलना में, समाज का वर्गों में विभाजन होने की बात व्यक्त होती है।

इंग्लैंड की 'विल्ट शायर काऊंटी' में 90 मीटर व्यास वाला विशाल वृत्ताकार महापाषाण समुच्चय (स्टोन हेंज) पाया गया है। इसके विभिन्न हिस्सों की स्थिति से ऐसा प्रतीत होता है कि उसका सूर्य की स्थिति या गति से कोई संबंध है। स्मारक का मुख्य अक्ष, उत्तरायण के प्रथम दिन जिस दिशा में सूर्योदय होता है, उस ओर है| कुछ विद्वानों के अनुसार यह रचना एक ढंग का सूर्य मंदिर है। जबकि कुछ अन्यों के अनुसार वह शवाधान के ऊपर बना स्मारक है। ऐसी ही अन्य महापाषाण रचनाओं के नीचे और भी शवाधान मिले है|

यह कांस्ययुग में सूर्योपसना की ओर इंगित करता है| उसका सम्बन्ध भी उर्वरता से ही होना चाहिए क्योंकि उर्वरता का मुख्य स्रोत सूर्य ही है। स्कैडिनेविया में एक ताम्र रथ मिला है जिसमें घोड़े जुते हुए हैं और सूर्य का चक्र बना हुआ है| सूर्य को किरण सहित या किरण रहित चक्र के विभिन्न रूपों में चित्रित किया हुआ पाया जाता है| स्पेन, स्वीडन में ऐसे चक्र मिले हैं।

संक्षेप में हमें जो संकेत मिलते हैं-

1. मरणोत्तर जीवन में किसी ढंग का विश्वास

2. देवी पूजा के संकेत

3. सूर्य पूजा के संकेत।

पुरातात्विक सामग्री और आदिम नृजातीय, समूहों के तुल्यरूप

पुरातात्विक सामग्री का महत्व इस बात में है कि उसके आधार ज्ञात इतिहास के पहले की जानकारी का, कम-अधिक सही तिथि निश्चित के साथ, निर्धारण संभव है। कम से कम कालानुसार वर्गीकरण तो कर ही सकते हैं। लेकिन उसकी व्याख्या करने के लिए तुल्यरूपों का और अनुमानों का सहारा लेना पड़ता है| **तुल्यरूप हमारी समकालीन जातियों के जीवन, संस्कृति मान्यताओं से लिये जाते हैं। इसे ही 'नृजातिवृत्तात्मक सामग्री' कहते हैं।** पुरातन काल का विचार करते समय, जिन जातियों में ऐसी संस्कृति का आदिम रूप अधिक से अधिक शुद्ध रूप में विद्यमान रहा है और ऐसी जातियों से तुल्यरूप जब उठाए जाएंगे वे उतने ही वास्तविकता के करीब होंगे। **कुछ नृजातीय समूह काफी अर्वाचीन समय तक अपने आदिम संस्कारों को संजोए हुए थे। इसका मुख्य कारण उनका सुदूर और दुर्गम स्थानों में होना था। वे सभ्य समाज से कटे रहे और उनका सामाजिक जीवन आदिम रूप में सुरक्षित रह गया। इसके लिए कुछ और भी कारण हो सकते हैं। इनमें जो मुख्य जातियां थीं उनकी** स्थितियों के विषय में अब हम विचार करेंगे।

इनमें मुख्य जातियां निम्न थीं।

आस्ट्रेलियाई

अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण प्रगत जातियों से पूरी तरह अलग-थलग रहने वाला भूभाग है आस्ट्रेलिया। दूसरी बात यहां जंगली या हिंस्त्र पशुओं का अभाव था। शिकार और खाद्य संग्रहण द्वारा न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए, यहां के मनुष्य को बड़ा भारी संघर्ष करने की आवश्यकता नहीं रही| अतः यहां के मानव का प्रकृति के साथ संघर्ष कम उग्र था। लेकिन इसका परिणाम भी कुछ सुखद नहीं रहा। उत्पादक शक्तियों का विकास यहां धीमा रहा। परिणामतः यहां की जनजातियों विकास के आदिम स्तर पर काफी लम्बे समय तक बनी रही। परिणामतः विद्यमान सभी जातियों की तुलना में, इन जनजातियों ने अपने प्राचीन विश्वासों को शुद्ध रूप में सुरक्षित रखा। इस कारण यहां के विश्वासों का वैज्ञानिक महत्व है। अर्थात् हम यहां जो बात कर रहे हैं वह यूरोपियनों के उपनिवेश से पहले के आस्ट्रेलिया की है।

ओशेनियां की जनजातियों

आस्ट्रेलिया से चलते हए जब हम ओशेनिया में पश्चिम से पूर्व की ओर आते हैं तो आस्ट्रेलिया से समानता रखने वाली आदिम सामुदायिक व्यवस्था वाली जनजातियां मिलती हैं| ये न्यू गिनी की जनजातियाँ हैं| उनकी आस्ट्रेलियाई जनजातियों से कई बातों में समानता है| जैसे धार्मिक विश्वास। यहां तक की पश्चिम द्वीप में आस्ट्रेलियाई बोली उपयोग में लायी

जाती है। टारेस जलसंधी के द्वीप और न्यू गिनी की मरींद-अनीम जनजातियां उनके उदाहरण हैं।

फिर पूर्व की ओर पापुआई जनजातियाँ आती हैं| पूर्व द्वीपों पर पापुआई बोली है। आस्ट्रेलिया के साथ होने वाली समानता कम होती गयी है| उदाहरण के तौर पर यह बताया जा सकता है कि आस्ट्रेलिया के समान ही पश्चिमी भाग में टोटमवाद का बोलवाला है लेकिन पूर्व की ओर वह क्षीण होता गया है।(टोटमवाद के बारे में विस्तार से हम जल्दी ही देखेंगे।) इधर मातृवंशीय गोत्र, पितृवंशीय गोत्रों में परिवर्तित हो गए है| पूर्व की ओर न्यू कैलीडोनिया और फीजी द्वीप पर कृषि का उच्च स्तर पाया जाता है| लगभग हर कहीं सम्पन्न समुदाय सदस्यों का तबका उभर आया था, ऐसा दिखता है। सरदार समुदाय के सदस्य और कृषि आश्रित दासों के तबके मिलते हैं।

<u>अन्य ओशेनिया भाग की जनजातियॉ</u>

मेलोनेशियाई

यहां की उष्ण जलवायु के कारण यूरोपियनों के उपनिवेश देरी से बने। परिणामतः यहाँ की जनजातियॉ की विशेषताएं काफी हद तक बनी रहीं।

मायक्रोनेशियाई

यहां मातृसत्ता तथा जातिप्रथा का मिश्रण यहां की जनजातियों में देखने को मिलता है।

पोलीनेशियाई

1.दक्षिण-पश्चिमी और पश्चिमी हिस्सा न्यूझीलंड और समोआ जनजातियॉ

2.अन्य भागों में ताहिती और हवाई द्वीप| यहां छोटे-छोटे राज्यों का उदय देखने को मिलता है।

<u>एशिया</u>

एशिया में भी कुछ अल्पसंख्यक नृजातीय समूह हैं जो सुदूर और दुर्गम स्थानों में होने के कारण उनका सामाजिक जीवन आदिम रूप में सुरक्षित रह गया है। इनमें मुख्य जातियां निम्न हैं-

अंदमान द्वीप

इन द्वीपों की मूल आबादी अब लगभग लुप्त हो गयी है| वे अन्य दुनिया से पूरी तरह अलग-थलग थे। उन्हें आग उत्पन्न करना तक नहीं आता था। इसलिए उन्हें अपने चूल्हे हमेशा जलते हुए रखने पड़ते थे।

सुमात्रा

सुमात्रा के दक्षिण पूर्वी भाग में भीतरी घने जंगलों और दलदली इलाकों में बसने वाली आदिम जाति को 'कूबू' जनजाति नाम दिया गया है।

मलय प्रायद्वीप

यहां के भीतरी भागों में स्थित घने जंगलों में 'सेमांग' जनजाति बसती है।

श्रीलंका

श्री लंका के भीतरी भाग की जनजाति 'वेद्या' या 'वेद्याह' है| वैसे तो यह सिंहली तथा तमिल आबादी के काफी संपर्क में रही। फिर भी उन्होंने अपने आदिम विश्वासों का खूब जतन किया।

जापान

उत्तरी जापान के होकाइडो द्वीप पर एक छोटी सी जनजाति है 'आइनू' ।

तिब्बत

सातवीं शताब्दी में बौद्ध मत अंगीकार करने के पहले वहां की जनजातियों के विश्वासों को 'बोन मत' के तौर पर जाना जाता हैं|

मंगोलिया

मंगोलिया में बौद्ध धर्म का अवतरण 16 वीं सदी में तिब्बत से हुआ। बौद्ध मत स्वीकार के पहले यहां के रहने वालों के अपने विश्वास थे।

यही बात वर्मा, हिन्दचीन के बारे में भी सत्य है।

इण्डोनेशिया

इनके इस्लाम को कबूल करने के पहले के विश्वास है| ईसा पूर्व दूसरी सहस्राब्दि में आधुनिक इंडोनेशिया के पूर्वजों अर्थात् दक्षिण एशियाई 'मंगोलाथ' जनों ने इन द्वीपों पर बसना शुरू किया तो वहां की निग्रोसम प्रजाति पहाड़ों के भीतरी हिस्सों में हटती गयी। यह

प्रजाति सामाजिक विकास के निम्नतम स्तर पर थी। फिर भी उन्होंने आगन्तुकों को प्रखर प्रतिरोध किया। वे इन आगन्तुकों पर वनों के अन्दर से विषैले बाणों से हमले करते थे। लेकिन उनकी पकड़ में नहीं आते थे।

<u>अमेरिका</u>

अमेरिका महाद्वीप की मूल आबादी रेड इंडियन, एस्किमो आदि है। इनके विश्वासों का विकास भी एशिया, यूरोप, अफ्रीका के धर्मों के विकास से स्वतंत्र रूप से हुआ था।

आदिम और सर्वाधिक पिछड़ी हुई जनजातियों का अधिकतर हिस्सा दक्षिणी अमेरिका के दुर्गम इलाकों में था। यूरोपीय उपनिवेशों द्वारा वहां की जनजातियों का निर्ममतापूर्वक उन्मूलन किया गया| इस कारण अध्ययन के लिये बहुत ही सीमित सामग्री उपलब्ध है। बचे हुए छोट-छोटे समुह अपनी परंपराओं की यादों को संभाले हुए हैं।

'तिएरा देल फुएगो की ओना' 'यगान' और 'अलाक लुफ' जनजातियॉ वहां के इण्डियनों में सबसे पिछड़े समूह है लेकिन उनकी आबादी बेहद कम रह गयी है।

अमेरिका महाद्वीप के उत्तरी छोर के रहिवासी एस्किमो है| अपनी भौगोलिक परिस्थितियों के कारण वे पूरी दुनिया से कटे रहे। कठोर प्राकृतिक परिस्थितियों से जूझना यही उनकी नियति रही है| जहां तक धार्मिक विश्वासों की उत्पत्ति का सवाल है हेगेल ने कहा था-

'एस्किमो लोगों के विश्वास धर्म के विश्वास की पहली सीढी है।'

वहां शिकार की कमी और सफलता के प्रति अनिश्चितता के कारण भूखमरी का खतरा हमेशा मंडराते रहता था। अतः उनके मन में प्रकृति के प्रति असहायता की भावना का ही प्राबल्य था।

<u>अफ्रीका</u>

अफ्रीका दुनिया का एक बहुत बड़ा भूभाग है। यहां मनुष्य, विकास के भिन्न-भिन्न चरणों में पाये जाते हैं| भौतिक परिस्थितियां भी भिन्न-भिन्न है और सांस्कृतिक परिवेश भी| यहां की सर्वाधिक पिछड़ी जनजातियॉ है 'बुशमैन' और 'पिग्मी'| ये विकास की सीढ़ियों पर इतने नीचे थीं कि कृषि और पशुपालन से भी अपरिचित थीं| उन्होंनें अपनी आदिम जीवन पद्धति को काफी हद तक मूल रूप में बनाए रखा| अन्य जगहों की तरह यहां भी उपनिवेशीकरण के दौरान उनका बड़े पैमाने पर संहार हुआ है और उनकी आदिम जीवन पद्धति को क्षति पहुंची है।

बुशमैन यह दक्षिण अफ्रीका में रहने वाला शिकारी जनजातियों का एक छोटा सा समूह है तो पिग्मी मध्य अफ्रीका के बौने लोग है| इतूरी की घाटी के वासी बांबूती तथा अन्य जनजातियॉ इनके अन्तर्गत आती हैं।

<u>उत्तरी एशिया</u>

एशिया के एकदम उत्तरी भाग में साइबेरिया आदि हिस्सा आता है| यहां आबादी एकदम छिटपुट है| विकसित भागों से ये हिस्से काफी दूर हैं| घ्रुवीय भागों की परिस्थितियों एकदम प्रतिकूल है। इन कारणों से यहां की जनजातियों की मान्यताएं काफी हद तक अपनी मूल रूप में बनी रही। यहां जीवनयापन का महत्वपूर्ण साधन मछलियां तथा अन्य समुद्री जीवों का शिकार रहा है।

केवल दक्षिणी सायबेरिया का कुछ भाग चीन आदि उन्नत सभ्यता के नजदीक था। वहां अर्थव्यवस्था के विकसित रूप पशुपालन और कृषि के लिए अनुकूल स्थितियां थीं। अर्थात् विकास के लिए कुछ अनुकूल माहौल था।

<u>काकेशिया</u>

आर्मीनिया, जार्जिया, अझरबैजान जैसे भागों में प्राचीन काल से ही विकसित संस्कृति अस्तित्व में है। एक ओर चौथी से छठीं सदी के मध्य आर्मिनिया, जॉर्जिया और अंशतः आसतियों और अबरबाजों के बीच ईसाई धर्म का प्रचार हुआ तो दूसरी ओर सातवीं और आठवीं सदी में अझरबैजान, दागेस्तान की जनजातियों, इंगुशों, चर्केसों, चेचेनो, कबार्दिनों आदि तथा जॉजिया के अजारों और इंगीलोइयों में इस्लाम का प्रसार हुआ। ओसेतियों और अबखाजों ने भी आंशिकतः इस्लाम को स्वीकार किया। फिर भी ऊँची पहाड़ी इलाकों में इस सदी के शुरू तक पुरातन सामाजिक स्थितियों के अवशेष बने हुए थे।

इसके अतिरिक्त यूरोप के जिन भागों में पुरातन धार्मिक विश्वास काफी लम्बे समय तक विद्यमान रहे उनमें.

1.वोल्गा थाले का मध्य हिस्सा है जहां-

I) फीनीभाषी जनजातियॉ है मोर्दवा, मारी, उदमुर्त आदि

II) तुर्कीभाषी चुवोश, तातार, बुश्कीर आदि

इस हिस्से में 14-16 वीं सदियों में इस्लाम पहुंचा तो 18-19 वीं सदी में ईसाई धर्म ।

<u>जर्मन जनजातियॉ</u>

प्राचीन विश्व की सभ्य जातियों के संपर्क में आते समय स्लाव और जर्मन जनजातियों का सामाजिक विकास का स्तर लगभग समान था। शुद्ध गोत्रीय संबंधों के दायरे से निकलने की बस शुरूआत हुयी थी। दक्षिण-पश्चिम और दक्षिण की 'राइनी' और 'डेन्यूबी' जनजातियॉ रोमनों और ईसाइयों के संपर्क और प्रभाव में सर्वप्रथम आयीं। जबकि उत्तर की स्कैंडिनान जनजातियॉ सबसे अंत में । चौथी और दसवीं शताब्दियों के दरम्यान जर्मन कबीलों में ईसाई धर्म के प्रसार ने प्राचीन विश्वासों पर जबरदस्त चोट की।

केल्ट

पेरानीज प्रायद्वीप

गाल प्रदेश (वर्तमान फ्रांस)

ब्रिटिश द्वीप (इंग्लैंड और आर्यलैंड)

इन जनजातियों के धार्मिक विश्वासों की जो जानकारी प्राप्त होती है वह ईसापूर्व पहली सदी की है। यह समय है जब वे रोमनों के संपर्क में आ रही थीं। लेकिन बाद में जैसा यूरोप में अन्यत्र हुआ, ईसाई प्रभाव के कारण प्राचीन विश्वासों का ह्रास होता गया।

<u>प्रकरण : चार</u>

<u>टोटेमवाद</u>[1]

1(धर्म का इतिहास: से. तोकारेव पृष्ठ१९– २९)

पुरातन विश्वासों में ऐसी एक धारणा पायी जाती है कि मनुष्यों के समूह और भौतिक वस्तुओं, खास करके किसी विशेष जाति के जीवों के बीच अलौकिक संबंध है। इसे ही 'टोटमवाद' कहा जाता है। टोटम यानि कुलचिन्ह। टोटम सामान्यतः जीवों, कही-कहीं वनस्पतियों और क्वचित अन्य वस्तुओं को बनाया जाता हैं।

आस्ट्रेलिया को टोटमवाद की क्लासिकल भूमि समझा जाता है। यहां की जनजातियों में टोटमवाद अपने प्रत्यक्ष रूप में सर्वाधिक परिमाण में मिलता है। **ध्यान से देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि हर जनजाति अपने टोटम का चुनाव अपने रहने की जगह की प्राकृतिक और भौगोलिक विशेषताओं के अनुसार ही करती है। उसमें आर्थिक क्रियाकलापों की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है|** लगभग हर जगह टोटम स्थलचर और नभचर जीव है। उदाहरण शुतुरमुर्ग, कंगारू, जंगली कुत्ता, सर्प, छिपकली, कौआ, चमगादड़ आदि-आदि। **कुछ विद्वानों के मतानुसार टोटमी विचारों की उत्पत्ति का कारण शक्तिशाली तथा हिंस्त्र पशुओं का भय है। लेकिन आस्ट्रेलिया के टोटमी विश्वास इस धारणा की पुष्टि नहीं करते। एक तो वहां हिंस्त्र पशु नहीं मिलते। जो प्राणी है उनसे मनुष्य भयभीत होने जैसी स्थिति नहीं है।** आस्ट्रेलिया के आंतरिक अर्ध रेगिस्तानी प्रदेशों में (एअर झील और उसके उत्तर के इलाके में) प्राकृतिक परिस्थितियां काफी शुष्क हैं। कुछ हद तक शिकार का अभाव है। अतः लोग कीड़े-मकोड़े, घास-पतियों से उदरभरण करने के लिए विवश थे। यहां किड़ों-मकोड़ों और वनस्पतियों को भी टोटम बनाया गया है। जबकि इस विशिष्ट इलाकों के बाहर वे नहीं मिलते। आस्ट्रेलिया के मध्य भाग में, अरांडा जैसे जनजाति में वर्षा, सूर्य जैसे टोटेम भी हैं।

यहां ध्यान देने लायक महत्वपूर्ण बात यह है कि टोटेम से मात्र एक रहस्यमय संबंध ही टोटेमवाद है। टोटेम कोई देवता या उच्चतर वस्तु नहीं है। अतः यह किसी भौतिक वस्तु की पूजा का परिचायक नहीं है। कुछ जनजातियॉ टोटेम को मित्र, पिता आदि रूप में लेती है। तो कुछ उसके साथ अपना एकांतिक तादात्म बताने के लिए उसे 'हमारा मांस' तक कहते हैं। कहीं टोटम को मारना वर्जित है तो कहीं उनका भक्षण। कहीं टोटमी अनुष्ठानों के दरम्यान उनका थोड़ा सा मांस प्रसाद के तौर पर भक्षण किया जाता है। मिथकों में टोटमी पूर्वज शिकार भी करते हैं और खानाबदोश जीवन बिताते है| लेकिन बहुत सारे मिथक आदि 'पुरखिनियों' या 'गूंकहोवाओं' के बारे में हैं। ये पृथ्वी पर घूमा करती थीं और हर कहीं टोटम छोड़ा करती थीं और इनसे ही आस्ट्रेलिया के मूल निवासी निकले हैं ऐसा माना जाता था| यहां स्त्री बिंबों की ही बहुतायत है। कुछ जनजातियों के विश्वासों के अनुसार मनुष्य अपने

टोटेम का जीवित रूप हैं। लेकिन आस्ट्रेलिया में कहीं भी यह विश्वास नहीं मिलता कि स्वयं टोटेमी जीव ही मनुष्य का रूप धारण करता है या इससे उलटा, मनुष्य की मृत्यु के बाद आत्मा फिर टोटमी जीव का रूप धारणा कर लेती है| संबंधित अनुष्ठानों में मिथकीय पूर्वजों के पराक्रमों का अभिनय किया जाता है। इस अनुष्ठान करने का विशेष स्थान होता था। इस स्थान को टोटेम का पवित्र केंद्र समझा जाता था। बाहरी व्यक्ति के लिए यह स्थान वर्जित होता था। अनुष्ठानों के दौरान विशेष कर्मकांड किए जाते थे। उदाहरण रक्त छिड़कना, पत्थर रगड़ना या खड़िया, गेरू, मिट्टी, चर्बी आदि मलना, मन्त्रों का उच्च आवाज़ में उच्चारण करना आदि।

टोटमी किंवदन्तियों के अनुसार शिशु भ्रूण मिथकीय पूर्वजों ने किन्हीं निश्चित स्थानों में रखे हुए हैं| ऐसे स्थानों में पत्थर, वृक्ष, चट्टानें आदि है| इस शिशु भ्रूण को 'रतापा' कहा जाता था| यदि कोई युवा स्त्री जाने-अनजाने उस स्थान से गुजरती है तो रतापा उसके शरीर में प्रवेश कर सकता है और वह गर्भवती हो सकती है। उसे जो शिशु होगा वह उस टोटेम का होगा। यह टोटेम से संबंध के अंतरण की एक व्यवस्था या व्याख्या है, लेकिन अवंशागत व्यवस्था है।

दक्षिण पूर्वी जनजातियों में यह भी विश्वास है कि टोटेम मनुष्यों को खतरे से बचा सकता है| अगर शत्रुओं को नुकसान पहुंचाना है तो प्रत्यक्ष व्यक्ति की जगह उसके टोटेम को मार डालना पर्याप्त है।

टोटेम चिन्ह का महत्व रखने वाली भौतिक वस्तुओं में अलौकिक गुण होने का विश्वास था। ऐसे चिन्हों में सबसे अधिक प्रचलन उन्हें दीर्घ्र वृत्ताकार पत्थर या गोल सीरोंवाली लकड़ी की पट्टी पर उनका प्रतीकात्मक चित्रण करने का था। उन्हें 'चुरिंगो' कहा जाता था और टोटेम समझा जाता था। हालांकि टोटेम से उसकी कुछ वास्तविक समानता नहीं होती थी। ऐसा माना जाता था कि 'चुरिंगो' किसी खास टोटेम तथा टोटमी पूर्वज और टोटमी समूह के भीतर किसी निश्चित व्यक्ति से रहस्यमय संबंध रखते हैं। उन्हें समूह की पवित्र सम्पत्ति माना जाता था और गुप्त जगहों पर रखा जाता था। समूह के अदीक्षित सदस्य उन्हें नहीं देख सकते थे। इसके अतिरिक्त टोटेम से संबंधित अन्य पवित्र वस्तुएं भी होती थीं जैसे डंडे, क्रॉस आदि। टोटेमी इकाई कहीं तो व्यक्ति से संबधित होती थी तो कहीं कुल से, तो कहीं पूरी जनजाति से। फिजी द्वीपों में टोटेम को पूरी जनजाति का इष्ट आराध्य माना जाता था। लेकिन टोटेमवाद में प्रायः यह सामान्य कल्पना पायी जाती थी कि टोटेम पुरखों को अलौकिक शक्तियां प्राप्त थीं।

आस्ट्रेलिया के समीपी ओशेनिया की जनजातियों के संदर्भ में हमने देखा कि पश्चिमी द्वीपों में बोली तक आस्ट्रेलियाई बोली जाती है और धार्मिक विश्वासों में भी समानता है| आस्ट्रेलिया के जैसा ही यहां भी टोटेमवाद का बोल बाला है| जैसे न्यू गिनी की मरीन्द-अनीम

जनजातियॉ। लेकिन जैसे हम पूर्व द्वीपों की ओर जाते हैं जहां पापुआई बोली है, टोटमवाद क्षीण होता जाता है। यहॉ जो कुछ भी इसके लक्षण है उनके टोटेम मुख्यतः जीवजन्तु हैं। गिनाये गए 36 टोटेमों में जीवजन्तुओं की संख्या 31 है।

<u>एशिया</u>

उत्तरी जापान के होकाइडो द्वीप की 'आइनू' जनजाति में सर्वाधिक प्रचलित भालू की पूजा है| भालू के अलावा अन्य कई जीवों के पवित्र माना जाता है| आइनू भालू को पर्वत का पुत्र मानते हैं और एक देवता का दर्जा देते हैं। **इसके सम्मान में विशेष उत्सव का आयोजन होता है जिसमें उसकी आनुष्ठानिक हत्या की जाती है| यहां यह ध्यान रखने लायक बात यह है कि यह शिकारी जनजाति है। इसे टोटेमवाद का अवशेष समझा जा सकता है । इसके अतिरिक्त पवित्र जीवों में सर्पों का स्थान विशेष है। लोक उनसे डरते हैं और उनकी हत्या निषिद्ध समझी जाती है।**

<u>अमेरिका की इंडियन जनजातियॉ</u>

उत्तरी अमेरिका में जो टोटेमवाद के अवशेष मिलते हैं उनमें आवासों पर बने पारिवारिक टोटमी चिन्ह आदि हैं| कुछ जनजातियों में गोत्रों से संबंधित जीवों की पूजा की परंपरा बनी रही। यह बात खास करके पूर्वी, दक्षिण पूर्वी, और मैक्सिकन खाड़ी से लगे इलाकों में देखी जाती है। उत्तर पश्चिमी जनजातियों में टोटेमवाद के अवशेष अन्य अमेरिकी भागों की तुलना में प्रबल रूप से बने रहे। साथ-साथ यहॉ मातृमूलक गोत्र व्यवस्था भी काफी हद तक बनी रही। हर गोत्र का अपना चिन्ह था। यह इसके सदस्यों के वस्तुओं, आवासों, समाधियों पर अंकित किया जाता था। इतना ही क्यों शरीर पर भी उसे गोदने के रूप में अंकित किया जाता था।

जीवों की स्त्रियों के साथ सहवास की पौराणिक कहानियॉ, इस भाग में भी मिलती हैं। विद्वान इसे टोटेमवाद का स्पष्ट अवशेष मानते हैं।

<u>बुशमैन जनजाति</u>

इनमें जीव-जन्तुओं के नाम पर गोत्रों के नाम रखे हुए मिलते हैं। पहाड़ी चट्टानों पर अर्धपशु-अर्धमानव की आकृतियां मिलती हैं। टिड्डे को पूजा योग्य समझा जाता था और उसमें कुछ अलौकिक गुण भी आरोपित किये जाते है| उसको पृथ्वी, मनुष्य का स्रष्टा और स्वामी समझा जाता था। ये निश्चित ही टोटेमवाद का चिन्ह है।

<u>पिग्मि जनजाति</u>

इनमें टोटेम अधिकांशतः जीवजन्तु हैं| यदा-कदा पेड़-पौधे भी हैं| **बांबूतियों का विश्वास है कि मरणोपरांत हर मनुष्य की आत्मा उसके टोटेमी जीव का रूप ले लेती है। यह धारणा आस्ट्रेलियन धारणा से भिन्न है।**

<u>पूर्वी और पश्चिमी अफ्रीका</u>

पशुचारक जनजातियों में अधिकांशतः घरेलू पशु ही टोटेम हैं| वैसे अफ्रीका में पशुपूजा का व्यापक प्रचलन है ही। एक ओर इसकी जड़ें टोटेमवाद में मिलती है तो दूसरी ओर इसका संबंध खतरनाक जंगली जानवरों से मनुष्य को जो भय हए उससे भी जोड़ा जा सकता है। कहीं तेंदुआ आदर का पात्र है। लेकिन उसकी शिकार वर्जित नहीं मानी जाती। कुछ जनजातियों में सर्पपूजा प्रचलित है और उसको हानि पहुंचाना अपराध की श्रेणी में गिना जाता है।

<u>उत्तरी एशिया</u>

आमूर का निचला भाग, सरवालिन की गिल्याक, उल्वा आदि जनजातियॉ और ओब के निचले भाग में खाती और मंसी जनजातियॉ इनमें भालू पूजा प्रचलित थी। गिल्याकों में भालू सम्मान का पात्र था। लेकिन चूंकि यहॉ सभी गोत्रों का पवित्र पशु एक ही है, इसे शुद्ध टोटेमवाद मानने के पक्ष में विद्वान नहीं है। पवित्र पशु की बलि भी दी जाती थी। विश्वास किया जाता था कि उसका उसी जाति के पशु के रूप में पुनरूज्जीवन होगा।

उत्तरी स्कैंडिनेविया और कोला द्वीप पर लोपर जनजातियों में भालू की पूजा की जाती थी। उससे डरा भी जाता था। भेड़िया को एक अशुभ और अभिशप्त जीव समझा जाता था। वे आगे सभी जीव-जन्तुओं के संरक्षक में भी विश्वास करने लगे। लेकिन इसे स्कैडिनावों के प्रभाव का परिणाम माना जाता है।

<u>जर्मन</u>

प्राचीन जर्मनी में भी टोटेमवाद जैसे अति पुरातन विश्वासों की छाप देखी जा सकती हैं। कुछ गोत्रों की उत्पत्ति वृक्षों से तो मेरोविग गोत्र की जलदानव से होने की किंवदन्तियॉ मिलती हैं। **प्राचीन जर्मनी भी पवित्र जीवों की पूजा की जाती थी। आगे ये भिन्न देवताओं में बदल गए, भेड़िया और कौआ ओडिन नामक देवता से सम्बध्द हो गए।**

हेरूस्को जनजाति का नाम हेरूज (युवा हिरण) से लिया गया है।

एबुरीनो जनजाति का नाम एबेर (जंगली सूअर) से लिया गया है।

भारत

कुछ विद्वानों ने ऋग्वेद से प्राप्त पशु, जानवर अथवा पौधों पर आधारित कुल अथवा गोत्र की नामावली में टोटम पद्धति को ढूँढने की कोशिश की है।

- ऋग्वेद संहिता की एक शाखा 'शाङ्ख' का अर्थ सांप की एक जाति है।
- कौशितकि उपनिषद में ऐसे लोगों का वर्णन मिलता है जो मत्स्य नाम से पहचाने जाते हैं।
- कुछ उपनिषदों के नाम भी पशुओं पर आधारित है।

श्वेताश्वतर का अर्थ है खच्चर| मांडूक्य, मेढ़क को कहा जाता है। कौषीतकि का अर्थ है उल्लू आदि|

हिन्दु दशावतारों में कई अवतार पशु हैं| इस संबंध में यह विशेष है कि शुरू के कई अवतार मत्स्य, वराह, कूर्म अर्थात् पशुओं के रूप में हैं। बीच अवतार अर्ध मनुष्य तथा अर्ध सिंह अर्थात् नृसिंह है। क्या यह बात जीवों के विकासवाद की ओर इंगित करती हैं या फिर धर्म की पशु प्रतीक मूलक उत्पत्ति की ओर? आदिम जातियों में तो अभी तक पशु प्रतीक पूजा प्रचलित है। भारतीयों में जो हनूमान, गरुड़ आदि पशु पक्षियों की पूजा होती है उसमें कहां तक पशु प्रतीक पूजामूलक उपादान छिपे हैं ? धर्मों के प्रधान सिद्धांत के रूप में टोटेमवाद या प्रतीक पूजा है।1

1(ऐतिहासिक भौतिकवाद : मन्मथनाथ गुप्त और वर्मा पृ 375)

टोटेमवाद (Totemism)2

यह आदिम समुदाय में धर्म का रूप था। इस पद का सर्वप्रथम उपयोग जे. लॉग ने 18 वीं सदी के अंत में किया था। टोटेमवाद का मुख्य लक्षण है लोगों के किसी गुट का समान मूल तथा निश्चित प्रकार के पशु, पौधे, वस्तु या परिघटना के साथ रक्त संबंध में विश्वास। **टोटेमवाद का उद्भव आदिम अर्थव्यवस्था (शिकार, मुल संचयन आदि) से तथा समाज में रक्त संबंधों के अलावा और किसी प्रकार के संबंधों की जानकारी के अभाव के कारण निर्धारित हुआ था। टोटेम का स्वरूप लोगों के सशक्त संरक्षक का था। टोटेमवाद आस्ट्रेलिया, उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका, मेलोनेसिया, पोलिनेसिया तथा अफ्रीका के आदिवासियों में प्रचलित है।** टोटेमवाद के अवशेष विकसित धर्मों और लोकगाथाओं में सुरक्षित है। इनमें पशुओं के साथ लोगों के वैवाहिक तथा रक्त संबंध विषयक कथाएं भी मिलती हैं।

2(दर्शन कोश : प्रगति प्रकाशन मास्को पृष्ठ २३०)

प्रकरण : पांच

शामानी अनुष्ठान

साइबेरिया में 16 वीं सदी के बाद ईसाई, इस्लाम, बौद्ध जैसे विश्वव्यापी धर्मों का प्रचार हुआ| इससे पहले वहां जो धार्मिक विश्वास प्रचलित थे उन्हें आम तौर पर 'शामान धर्म' के रूप में जाना जाता है। 'शामान' यह शब्द ही मूल रूप से 'तुंगुस' भाषा का है। उसका अर्थ है उत्तेजित या आवेश की स्थिति में होनेवाला व्यक्ति। आगे चल कर यह शब्द अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर विशिष्ट अर्थ वाला वैज्ञानिक शब्द बन गया।

शामान धर्म की सबसे महत्वपूर्ण बात है 'प्रेतात्माओं में विश्वास' ।

अन्य महत्वूपर्ण बातें हैं-

1.'शामानों' में यह अलौकिक क्षमता होती है कि वे अपने आपको आवेशावस्था में लाकर प्रेतात्माओं से संपर्क स्थापित कर सकते हैं, ऐसा विश्वास किया जाता था।

2.आवेशावस्था में आने के लिए वे नृत्य, गायन, डफ जैसे साधनों को उपयोग में लाते हैं।

3.शामानी अनुष्ठान में विशेष सामग्रियों का उपयोग किया जाता है| शामानों की विशेष पोशाखें होती हैं। उनमें घंटियां, लोहे की जंजीरें आदि लटकी रहती हैं। शामान के नाचते समय वे आपस में टकराती हैं और इनसे आवाजें निकलती हैं| वे सिर पर मुकुट या अन्य टोपीनुमा चीज भी पहनते हैं। ये सभी चीजें शामान पद की प्रतीक समझी जाती हैं| इन्हें धारण करने से, शामान मानों सामान्य से अलग दुनियां में प्रवेश कर जाते हैं। उपरोक्त चीजों को विभिन्न प्रेतात्माओं का परिचायक भी माना जाता है। बाद में इनके साथ मिथकीय अर्थ भी नत्थी किए गए।

इनके अनुष्ठानों का समय प्रायः शाम से लेकर देर रात तक होता है और उनका उद्देश्य होता है मुख्यतः

अ) बीमारों का इलाज करना।

इसके अतिरिक्त-

ब) भविष्य कथन|

स) खोई हुई वस्तुओं का पता लगाना|

द) शिकार आदि में सफलता के लिए जादू-टोना करना आदि।

अधिकतर, शामान वहीं व्यक्ति बन सकता हैं जिसकी खानदान में पहले कोई व्यक्ति शामान रहा हो। इस पूर्वज की प्रेतात्मा ही युवा शामान की संरक्षक प्रेतात्मा बन जाती है। इस विद्या को सीखने के लिए लगने वाला समय भी लम्बा होता है। इन सारी बातों का संबंध, विशेषतः तंत्रिका बीमारियों के लिए, आनुवंशिक प्रवणता बनाए रखने से होता है। लगभग सभी जनजातियों में शामानों को भयमिश्रित प्रतिष्ठा प्राप्त थी।

इन विश्वासों के अनुसार हर शामान की एक संरक्षक आत्मा होती है| मानो वह शामान की स्वामिनी हो। ऐसा भी माना जाता है कि कभी-कभी प्रेतात्मा किसी व्यक्ति को शामान बनने का आदेश देती है और उसे अमान्य नहीं किया जा सकता। प्रेतात्माएं मनुष्य की आकृतियों की या फिर अन्य जीवों की आकृतियों की भी हो सकती हैं। 'ननाइयों' जैसी जनजातियों में शामान और संरक्षक प्रेतात्मा भिन्न-भिन्न लिंग के होते हैं और उनके बीच संबंध वैवाहिक संबंधों जैसा ही माना जाता है।

इसके अतिरिक्त शामान की सहायक प्रेतात्माएं भी होती हैं। मानो उसकी चाकर हो। इनकी संख्या शक्तिशाली शामानों के लिए अधिक मानी जाती है, उसकी शक्ति के अनुपात में । वे शामान की उसके कार्य में मदद करती हैं।

अन्य दुष्ट स्वभाव की प्रेतात्माओं की भी कल्पना की गयी है। शामान का कार्य, उनके प्रभाव से छुटकारा दिलाना होता है। इसलिए उन्हें भेंट और बलियां चढ़ाई जाती हैं। असामियों से, शामान इन वस्तुओं की मांग करते हैं। उपरोक्त प्रदेश में आर्कटिक हिस्टीरिया जैसी तंत्रिका बीमारियों का अनुपात अधिक पाया जाता है| शामान ऐसी बीमारियों के इलाज का दावा करता है| इस कारण इस प्रदेश में शामानी क्रियाकलापों का प्रभाव अधिक रहा है।

ऐसा भी देखा गया है कि अनुष्ठान के दौरान या उन्माद की अवस्था में पहुंचकर, शामान असाधारण क्रियाएं कर लेता है, जो सामान्य अवस्था में करना मनुष्य के लिए बहुत कठिन है। इस स्थिति में शामान हिस्टिरिया जैसी अवस्था में या विशेष ढंग की अर्धमृच्छा में ही होता है। उदाहरण के तौर पर, असाधारण ऊंचाई तक ऊँचा कूदना आदि। इन क्रियाओं के असाधारण स्वरूप के कारण दर्शकों में अलौकिक शक्तियों की उपस्थिति पर अंधविश्वास आदि उत्पन्न होते हैं और भय की उत्पत्ति भी होती है।

ऐसी शक्तियों पर जिन-जिन अन्य जनजातियों में अधिक विश्वास था, उनके विषय में कुछ अधिक विस्तार से देखेंगे।

<u>पापुआई जनजातियॉ</u>

इन जनजातियों के महत्वपूर्ण विश्वासों में मारण, चिकित्सा, धंदे आदि से संबंधित तरह-तरह के जादू-टोना आदि महत्वूपर्ण थे। अर्थात् उनका अलौकिक शक्तियों में तथा उनसे संबंधित अनुष्ठानों के प्रति गहरा विश्वास था।

पश्चिमी-मध्य और दक्षिण-पूर्व मेलोनेशिया में जादू-टोना काफी विकसित था और पेशेवर जादूगरों का तबका उभर आया था। कई बातों के लिए जादू-टोने का सहारा लिया जाता था। इस बारे में कुछ बातें विशेष उल्लेखनीय हैं|

कृषि में जादू का उपयोग स्थायी फसल देने वाले वृक्ष लगाते समय नहीं किया जाता था, जैसे फलवृक्ष| लेकिन जो उत्पादन, संयोगों पर निर्भर होता था, केवल उसी के लिए किया जाता था| उसी तरह छोटी मछलियों के शिकार में खतरा कम से कम होने के कारण जादू-टोने की आवश्यकता नहीं समझी जाती थी| लेकिन शार्क जैसी बड़ी और खतरनाक मछलियों की शिकार में इसका सहारा लेना आवश्यक समझा जाता था| उसी तरह घर जैसे निर्माण कार्य में इसे आवश्यक नहीं समझा जाता था। जबकि नौका निर्माण जैसे कार्य में उसका सहारा लिया जाता था। **इसका सीधा अर्थ हुआ जादू या अलौकिक शक्तियों के प्रति विश्वास तभी उत्पन्न होता है जब मनुष्य या तो अनिश्चितता का शिकार होता है या वह अपनी क्षमता के प्रति उतना आश्वस्त नहीं होता।**

<u>एशिया</u>-

जहां तक जादू-टोने में आस्था का सवाल है, वह मंगोलिया की जनजातियों में पायी जाती है तो श्रीलंका की जनजातियों में न्यूनतम। उत्तरी जापान के 'आइनू', जादू टोनों में सांपों का उपयोग करते थे।

<u>अमेरिकन जनजातियॉ-</u>

'यगानों' में शामानवाद विशेष रूप से विकसित था। झांड-फूक, जादु-टोना और उससे संबधित अनुष्ठानों का प्रचलन था। ये 'किना' प्रेतात्माओं विषयक मान्यताओं से जुड़े हुए थे। अनुष्ठानों में भाग लेने वाले, उनके दौरान भयंकर मुखौटे पहनकर इन प्रेतात्माओं का अभिनय करते थे।

अमेरिका महाद्वीप के उत्तरी छोर के रहिवासी एस्किमो है| वहां शामानवाद का विकास महत्वपूर्ण है। चिकित्सा और शिकार से संबंधित अनुष्ठान महत्वपूर्ण है| एस्किमो मानते हैं कि दुनियां प्रेतात्माओं से भरी पड़ी है। सफलता इन प्रेतात्माओं पर निर्भर है। हर प्रेतात्मा किसी शामान से जुड़ी रहती है, मानो उसकी सम्पत्ति है। यदि कोई मनुष्य शामान बनना चाहता है तो उसे पहले अपने लिए प्रेतात्माएं जुटानी होगी| फालतू प्रेतात्माएं नहीं होतीं| **इसलिए उसे किसी शामान के मृत्यु की प्रतीक्षा करनी होगी ताकि उसकी सहायक प्रेतात्माएं उसे विरासत में प्राप्त हो सके। ये प्रेतात्माएं वे हैं जो शामान को बीमारियों के इलाज में मदद करती थीं। एक अन्य मार्ग यानि प्रेतात्माओं को खरीदा भी जा सकता है ऐसा भी माना जाता था|** शामानवाद के विकसित रूप की अनिवार्य विशेषताएं हैं, बीमारियां उत्पन्न करने के

लिए जिम्मेदार प्रेतात्माएं और शामानों की संरक्षक प्रेतात्माओं से संबंधित, शुद्ध जीववादी मान्यताएं हैं, ऐसे विद्वान मानते हैं।

एस्किमो की तुलना में कॅलिफोर्नियाई इंडियनों में शामानवाद अविकसित स्थिति में है| कॅलिफोर्नियाई इंडियन उत्तरी अमेरिका की एक सर्वाधिक पिछड़ी और शेष दुनियां से अलग-थलग नृजाति थी। वैसे तो इनमें भी इलाज करने वाले शामान थे। लेकिन यहां का शामानवाद झाड़-फूंक की अवस्था से ज्यादा विकसित नहीं था।

<u>दक्षिणी अमेरिका</u>-

दक्षिणी अमेरिका की जनजातियों में यह विश्वास था कि शामान इच्छानुसार जैगुआर, पूमा या किसी अन्य जीव में परिवर्तित हो सकते हैं और मृत्यु के बाद शामान की आत्मा इनमें से किसी एक जीव का रूप ले लेती है।

<u>स्वप्न</u>-

अमेरिकी इंडियनों में यह प्रबल विश्वास पाया जाता है कि स्वप्नों का शकूनात्मक महत्व होता है| शकून एक ढंग से भविष्यवाणी है और उसके अनुसार काम करने में उनका विश्वास था|

<u>शामानी विश्वास और मनुष्येतर जीव</u>-

शामानी शक्ति का स्रोत कहीं भालू और खास करके भूरा भालू माना जाता है| इसी कारण वहां के शामान सामान्य तौर पर भालू की खाल का, पोशाख के तौर पर उपयोग करते थे।

अमेरिका की उत्तर-पश्चिमी तट की जनजातियों में महत्वपूर्ण भूमिका 'उद्बिलाव' की है। हर इच्छुक शामान के लिए यह अनिवार्य बात समझी जाती है कि वह उद्बिलाव को मारकर उसकी जिव्हा को पवित्र वस्तु की तौर पर अपने पास जतन करें। लेकिन उद्बिलाव को मारना सामान्य शिकारियों के लिए मना था।

<u>शुद्धिकरण</u>-

रेड इंडियनों में ऐसा पक्का विश्वास था कि हर प्रकार की बीमारी और दुर्भाग्य से मुक्त रहने के लिए शुद्धीकरण का सोपस्कार आवश्यक है। उसी प्रकार किसी महत्वपूर्ण कार्य को शुरू करने के पहले भी इसकी आवश्यकता है। शुद्धीकरण का आनुष्ठानिक महत्व भी था। कुछ क्रियाओं का तार्किक आधार भी होता था।

अमेरिका में शुद्धिकरण से संबधित तीन प्रकार के अनुष्ठानों का प्रचलन था-

1.बाष्पस्नान: कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका की जनजातियों में ।

2.रक्तमोक्षण: मध्य अमेरिका, मेक्सिको, पेरू की जनजातियों में।

3.वमन: वेस्ट इंडिज तथा दक्षिण अमेरिका की जनजातियों में।

<u>अफ्रीका-</u>

पिग्मि जैसी अत्यंत पिछड़ी जनजातियों में जादु-टोने पर विश्वास होना कोई आश्चर्य की बात नहीं।

<u>लोहकर्म-</u>

अफ्रीका में लोहे से संबंधित काम काफी पहले से ज्ञात है। कहीं-कहीं उसे खानदानी पेशे के रूप में भी अपनाया गया है। लौहकर्म करने वाले लुहार को अलौकिक शक्तियों से सम्पन्न माना जाता था। ऐसा भी विश्वास था कि वह अपने औजार, खास कर हतौडे से, मारण-टोना कर सकता है। अन्य किसी भी टोने की तुलना में इसके प्रति अत्यंत भय था। यह इस सीमा तक था कि एक तरह से लुहार, सामाजिक दृष्टि से बहिष्कृत वर्ग समझा जाता था। सामान्य लोग उनसे किसी भी प्रकार का संबंध रखना पसंद नहीं करते थे| हथौड़े, घौंकनी जैसे लुहारी उपकरणों को जादू का साज-सामान भी समझा जाता था। इस कारण उन्हें छुने से भी परहेज रखा जाता था। लेकिन इस वातावरण को बनाए रखने में लुहार वर्ग का भी स्वार्थ था। इस कारण इस महत्वपूर्ण उद्योग पर एकाधिकार बनाए रखना आसान था। यही बात उत्तरी एशिया के 'याकूतों' और 'बुर्यातों' में भी लोहारी व्यवसायियों के बारे में दिखाई देती है।

यहां भी लुहार, लुहारखाने और लोहे में अलौकिक शक्ति होने को मान्यता थी। लोहे को गंडा-ताबीज जैसे चमत्कारी गुणों से युक्त समझा जाता था। यहां तक कि चिकित्सा से संबंधित अनुष्ठान लुहारखाने में सम्पन्न किए जाते थे। 'चेकसा' लोक लुहारों की देवता की तरह पूजा करते थे।

<u>न्यायिक जांच पड़ताल</u>-

पश्चिमी अफ्रीका में पुरोहितों की तरफ न्यायिक जांच-पड़ताल का काम भी होता था। विवाद से संबंधित दो व्यक्तियों में, सत्य की जांच के लिए, पुरोहित उन्हें एक विशेष प्रकार का पेय पिलाते थे। आम तौर पर इन्हें भिन्न-भिन्न प्रकार के विष ही मानना चाहिए| उनकी मात्रा निर्धारित करना पुरोहितों का काम था। इस विष से बाधित न होनेवाले व्यक्ति को निर्दोष समझा जाता था। आज हम ऐसे किसी रिवाज को अमानुष कह सकते हैं| अन्य न्यायिक अग्निपरीक्षाओं का भी चलन था।

इसके अतिरिक्त दोयम दर्जे के पुरोहित-जादूगर ओझा होते थे। वे अधिकांशतः बीमारी का इलाज, तंत्र-मंत्र आदि से करते थे। बीमारी इलाज के शामानी तरीकों में, चीख-चिल्लाहट, ढोल आदि के साथ विक्षिप्ततापूर्ण नृत्य आदि का समावेश था। प्रेतात्माओं का

चित्रण करने में भयावह मुखौटे और पोशाख, नृत्यों आदि का उपयोग किया जाता था। इसके पीछे सामान्य जनों को डराने का उद्देश्य बिल्कुल ही नहीं था ऐसा कहना मुश्किल है। आज भी जहॉ-जहॉ इन तरीकों को उपयोग में लाया जाता है वहां, इन तरीकों में कोई खास परिवर्तन देखने को नहीं मिलता।

उत्तरी स्कैंडिनेविया और कोला द्वीप के 'लोपर' जनजातियों में, उस जमाने में, शामानी विश्वास तथा अनुष्ठानों का चलन बड़े पैमाने पर था। वहां शामानों को 'नोइड' कहा जाता था।

<u>काकेशिया में शामानवाद</u> -

लौहकर्म से संबंधित बातों का उल्लेख हमने ऊपर किया ही है। 'खेवसूर' जनजाति में भविष्य बताने वाले 'कदागी' होते थे। ध्यान से देखने पर ऐसा पता चलेगा कि वे कुछ असामान्य किस्म के लोग होते थे जिन्हें अधिकतर मिर्गी के दौरे पड़ते थे। या फिर वैसा होने का ढोंग रचने में वे प्रवीण होते थे। उत्सव के समय ऐसा व्यक्ति एकाएक कांपने लगता था फिर अर्धमूर्छितावस्था में बड़बड़ाता, चिल्लाता था ओर अन्यों पर यह स्थापित करने का प्रयत्न करता था कि किसी अलौकिक शक्ति ने उसे, उस शक्ति से युक्त बनाया है। परेशान लोग अपने आप राहत के लिए उसके पास पहुँचने शुरू हो जाते थे। जैसा कि अन्य स्थानों में हुआ है स्थानिक परिस्थितिनुसार यहां भी यह विश्वास, आगे ईसाई और इस्लामिक विश्वासों के साथ घुलमिल गए| जबकि पहाड़ी जनजातियों में अपने मूल रूप में बने रहे।

<u>व्होंल्गा का भाग-</u>

विशेष व्यक्ति में अलौकिक शक्ति की कल्पना यहां भी थी। उदाहरण के तौर पर प्रेतात्माओं और देवताओं से सम्पर्क स्थापित करने की क्षमता। किसी को बीमार या स्वस्थ करने की क्षमता। भविष्य ज्ञात करने की क्षमता। अनुष्ठान का स्थल, समय और रूप उन्हीं के सलाह के अनुसार निश्चित होता था।

उदमूर्तों में उन्हें 'तूनो' कहा जाता था तो,

मारी लोगों में 'कार्त' कहा जाता था।

इनसे काफी डरा भी जाता था।

<u>स्लाव जनजातियॉ-</u>

यहॉ ऐसा माना जाता था कि चिकित्सा के लिए झांड़फूंक करने वाले ओझा ईश्वरीय शक्ति की मदद से काम करते हैं, तो काला जादू करने वाले दुष्ट शक्ति की मदत से ।

<u>जर्मन जनजातियॉ-</u>

झाड़-फूंक, टोना-टोटका बड़े पैमाने पर प्रचलित था| मंत्रों, गंडा-ताबिजों का व्यापक तौर पर उपयोग होता था| बीमारों की चिकित्सा में जड़ी-बूटियों का भी उपयोग होता था। शकुन-विद्या और शुभाशुभ की पूर्व सूचना में इन लोगों की गहरी रूचि थी। एक पुरातन प्रथा के अनुसार शुभाशुभ को देवताओं की इच्छा माना जाता था। इसे ज्ञात कराने का काम कुल वृद्धाएं करती थीं। यह उस जमाने में, जर्मनी में मातृसत्ता के प्रबल अवशेषों के उपस्थिति का द्योतक था| एक सर्वाधिक प्रसिद्ध भविष्यवेत्ता स्त्री थी 'वेलेडा'। वह 'ब्रुक्टेरी' कबीले की थी। इसने 69-70 ई. के सिव्हिलिस के विद्रोह के दौरान महत्वूपर्ण भूमिका अदा की। एक और प्रसिद्ध शामान स्त्री थी 'एल्ब्रुना'। अर्थात् वहॉ स्त्रियों द्वारा शामानी कार्य करने की प्रथा थी। 'नगनखाल' जनजाति में तो पुरोहित स्त्रियों के वस्त्र घारण करता था। इन लोगों का जादूगरों और डाइनों की अलौकिक शक्तियों में गहरा विश्वास था। जर्मन पौराणिक आख्यानों में देवताओं को शक्तिशाली जादूगर के रूप में चित्रित किया गया है।

<u>कैल्ट जनजातियॉ-</u>

इनमें पुरोहित होते थे जिन्हें 'ड्रुइड' कहा जाता था। ये शकुन-अपशकुन बताते थे तथा झाड़-फूंक जादु-टोना करते थे। वे बलियां भी देते थे। उन्हें गुप्त ज्ञान का रक्षक समझा जाता था।

<u>जादू टोने पर चिंतकों के विचार-</u>

थॉमसन ने अपने ग्रंथ 'रिलीजन' में यह निष्कर्ष निकाला है कि वास्तव में जितने ही उत्पादन के साधन कम विकसित होंगे उतनी ही जादुयी कर्मकांडों पर निर्भरता बनी रहेगी। एक ओर प्रकृति की द्वेषपूर्ण क्षमताओं के सम्मुख विवशता के कारण तथा दूसरी ओर उत्पादन के साधनों की अत्यंत अविकसित स्थिति की विवशता के कारण, इच्छाजन्य यथार्थता के अन्तर्गत जादुयी कर्मकांड की आवश्यकता का अनुभव होना अनिवार्य है। **उत्पादनों के साघनों का विकास प्रकृति को मानवीय नियंत्रण में ले आता है और जादुयी कर्मकाण्डों की आवश्यकता कम होने लगती है।**

उत्पादन के साधनों की अति अविकसित स्थिति में आदि मानव प्रकृति को किसी न किसी प्रकार अपने नियंत्रण में रख पाने के प्रयत्न में इस प्रकार की क्रियाओं में संलग्न रहा था जिसे आधुनिक भाषा में जादू-टोना की संज्ञा दी जाती है। यहॉ इस बात को स्मरण रखना होगा कि ये जादुयी प्राविधियॉ उनके उत्पादनों के साधनों की सहायक होकर ही स्वरूप ग्रहण कर रही थीं। उनका निष्पादन सामूहिक रूप से होता था और सामूहिक हित ही उनमें अन्तर्निहित था।[१]

(१:माया और मायावाद: डॉ.सेवासिंह पृष्ठ21)

हैरिसन के अनुसार कबीलायी व्यक्ति क्रियाशील व्यक्ति होता है| किसी देवता से किसी प्रकार की प्रार्थना करते हुए बैठने की जगह वह स्वयं कार्यरत होता है। उसकी सहज अभिव्यंजनाएं प्रार्थना न होकर उसके लिए एक प्रकार के जादुई मंत्र होते हैं। जब एक कबीलायी व्यक्ति धूप, वर्षा या हवा चाहेगा, इसके लिए वह किसी धर्मस्थल पर नहीं जाएगा, किसी मिथ्या देवता के सम्मुख दंडवत नहीं करेगा, बल्कि कबीले को आमंत्रित करेगा और एक सूर्यनृत्य करेगा, एक वायुनृत्य करेगा। जब वह एक भालू का शिकार करना चाहेगा तो वह शक्ति के लिए किसी देवता से प्रार्थना नहीं करेगा बल्कि एक भालू नृत्य के रूप में आखेट की पुनरावृत्ति करेगा।[२]

(२:एशियन आर्ट अॅड रिच्युअल्स:हॅरीसन:पृष्ठ30)

थॉमसन का भी मत है कि विकास के निम्न स्तर पर जीवनयापन करने वाले कबीलायी व्यक्ति जिन्हें कि हम जानते हैं उनके यहॉ कोई देवता नहीं है| वे किसी उपासना को नहीं जानते, न कोई बलि की प्रथा है। इसी प्रकार जहां कहीं भी हम सभ्यजनों के प्रागैतिहासिक स्थिति को ज्ञात करने का प्रयत्न करते हैं तो एक ऐसे स्तर पर जा पहुँचते हैं, जहां न देवता है न प्रार्थनाएं हैं, न बलियां हैं । इस स्तर पर हमें जादू अथवा टोने-टोटके दिखाई देते हैं। फिर सवाल सामने आता है कि उत्पादन के उन्नत स्तर पर भी ये कर्मकांड अपना अस्तित्व कैसे बनाए रखते हैं? इसपर थॉमसन ने कहा है कि कर्मकांड नए रूप में नए प्रयोजन के लिए शेष बचे रह जाते हैं| उत्पादन के साधनों का विकास अन्ततोगत्वा समाज को वर्गों में विभाजित कर देता है| प्रभुसत्ता सम्पन्न वर्ग अपने विशेषाधिकारों में अति प्राकृतिक तत्वों को सम्मिलित करते हुए जादुई प्राविधियों का विकास अपने अधिकारों को संग्रहित करने के साधन के रूप में करने लगता है।

'जादू' आदिमकालीन धर्म का एक रूप, जो नाना अबोधगम्य परिघटनाओं का कारण, रहस्यमय शक्तियों की कारवाइयों को बताता है, अनुष्ठानों की एक पूरी श्रृंखला है जिनका लक्ष लोगों, पशुओं, काल्पनिक आत्माओं आदि को प्रभावित करना है। लेवी बुहल तथा सोविएत अनुसंधान कर्मी न. मार्र (1864-1934) ने अधिकतम पूर्णता के साथ आदिमकालीन जादू का अध्ययन किया था। उन्होंने जादू में चिन्तन का विशेष रूप देखा जिसके अन्तर्गत मनुष्य को अभी वस्तुओं के गुणात्मक अन्तरों का ज्ञान नहीं था और इसलिए वह किसी परिघटना अथवा वस्तु के गुणों का किसी अन्य परिघटना या वस्तु में समावेश कर देता था। आदिमकालीन मनुष्य इस समावेश को अपरिहार्य यथार्थ मानता था जिसमें अलौकिक का कोई स्थान नहीं है। अलौकिक शक्ति से जुड़ी संक्रिया के रूप में जादू आगे चलकर जन्मा। जादू की सामान्य संकल्पना, उद्देश्य-उन्मुख कार्यवाइयों के बिना की गयी इच्छाओं के सीधे कार्यान्वयन में आस्था से जुड़ी हुई होती है। (उदाहरण रोगी का उपचार, वर्षापात, किसी की मृत्यु आदि) ।[3]

3(दर्शन कोश: पृष्ठ:215:प्रगति प्रकाशन मास्को)

प्रकरण : छह

अलौकिक शक्ति विषयक विश्वास (जनजातीयॉ)

शिकारी जनजातियॉ और उनके धार्मिक विश्वास की उत्तरी जापान की आइनू जनजाति-

यह जनजाति शिकारी है। इन लोगों में भालू को एक देवता का दर्जा प्राप्त है| उसके सम्मान में एक विशेष उत्सव का आयोजन किया जाता है, जिसमें उसकी अनुष्ठानिक हत्या का भी अन्तर्भाव है।

अफ्रीका-

बुशमैन जनजाति यह एक शिकारी जनजातियों का छोटा सा समूह है| शिकारी होने के नाते उनमें सबसे महत्वपूर्ण अनुष्ठान शिकार से संबंधित ही है। शिकार की सफलता के लिए अर्थात् जीवनयापन की सुगमता के लिए जो तत्व पूजा के योग्य समझे जाते थे उनमें सूर्य, चन्द्रमा, तारे जैसी प्राकृतिक वस्तुएं हैं तो कुछ अलौकिक तत्व भी हैं । प्रार्थना का स्वरूप कुछ इस प्रकार मिलता है-

‘ हे चन्द्रमा! कल हिरण को मारने में मेरी सहायता करो, पेट भरने में मेरी मदद करो।‘

मध्य अफ्रीका के पिग्मि में भी सबसे महत्वपूर्ण विश्वास और अनुष्ठान शिकार से ही संबंधित है।

उधर उत्तरी स्कैंडिनेविया और कोला द्वीप की ‘लोपर’ जनजातियों में भी शिकार और मछलीमारी से संबंधित विश्वास और अनुष्ठानों की भरमार है। मछलियों की शिकार का संरक्षक ‘अक्करुवा’ समुद्री देवता है। इसके शरीर का ऊपरी भाग मनुष्य जैसा और निचला भाग मछलियों जैसा था। वन में शिकार का संरक्षक ‘मेत्सखोजिनष’ नाम का एक देवता भी मिलता है| उसका स्वरूप काला है तथा वह दुम वाला है। ‘लोपरों’ में विशाल प्राकृतिक चट्टानों या पवित्र चट्टानों ‘सेइड्रो की पूजा की जाती थी। उन्हें बलि चढ़ाई जाती थी ताकि वे शिकार में मदद दें।

काकेशिया में भी शिकार धंधे के संरक्षक देवताओं की कल्पना थी।

पूर्वी यूरोप के उत्तरांचल की ‘कोमी’ जनजातियॉ अच्छी शिकारी जातियां थीं। उनके विश्वासों में कृषि आदि की जगह शिकार से संबंधित विश्वासों और अनुष्ठानों का बड़ा महत्व था।

‘केल्टों’ में भी कुछ देवताओं का संबंध शिकार व्यवसाय से मिलता है|।

युद्धरत जनजातियों के विश्वास

अमेरिकी इण्डियंस

यहां हर युवा को योद्धा होने के पूर्व दीक्षा लेनी होती थी और ऐसे व्यक्ति से शस्त्रग्रहण करना होता था जिसमें ऐसा समझा जाता था कि, शस्त्र को शक्ति प्रदान करने की क्षमता है। युद्ध में मारे गए शत्रु के सिर की खाल उतारने की नृशंष प्रथा भी थी। इसका उद्देश्य होता था कि वह सहायक प्रेतात्मा का काम करें।

अफ्रीका

अफ्रीका में विश्व और मनुष्य के निर्माता ईश्वर की कल्पना तो है लेकिन चूंकि उसकी मनुष्य के प्रत्यक्ष जीवन में दखल नहीं होती इसलिए उसे निष्क्रिय समझा जाता था और उसके प्रति किसी प्रार्थना और याचना को व्यर्थ। लेकिन जब जनजातियों में अधिकार मूलक युद्धों की वृद्धि हुई तो यह देवता कुछ जनजातियों में युद्ध का देवता बन गया। उसकी पूजा का प्रचलन भी शुरू हुआ । युद्ध संबंधी जादू टोना और युद्ध देवता को बलि चढ़ाने की प्रथा का प्रचलन शुरू हुआ।

केल्ट

केल्ट जनजातियों के युद्ध में लिप्त जीवन के कारण वहॉ युद्ध से संबंधित कई देवता प्रगट हुए| केल्टों की पूजाओं और अनुष्ठानों का स्वरूप भी बर्बर था| नरबलि समान्य बात थी।

कृषि तथा अन्य व्यवसायों से जुड़ी जनजातियों में संबंधित व्यवसायों से जुड़े धार्मिक विश्वास.

शिकार और अन्न का संग्रह कर जीवनयापन करने वाले मनुष्य समूह धीर-धीरे कृषि और पशुपालन की ओर मुड़े। इस संक्रमणावस्था से संबंधित सबसे प्राचीन अवशेष जहां मिले हैं, वह स्थान है पॅलेस्टाइन में 'जेरिको'। रेडिओ कार्बन परीक्षण से उनका काल 9000 वर्ष पुराना निश्चित हुआ है| इस बस्ती की व्याप्ति 8 एकड़ भूभाग में थी| जेरिको का यह मानव समाज शिकार और अन्न संग्रह पर ही मुख्यतः निर्भर था। कृषि और पशुपालन का अस्तित्व दोयम स्वरूप का ही दिखता है। इसी जगह जमीन की ऊपरी परतों में 1000 साल बाद की अन्य बस्ती के अवशेष है लेकिन अब जीवनयापन के प्रमुख साधन कृषि और पशुपालन बन गये थे ऐसा दिखाई देता है।

ओशेनिया

इन जनजातियों में कुछ कृषि से संबधित रही हैं| पूर्व की ओर न्यूकैलिडोनिया और फीजी द्वीप पर कृषि का उच्च स्तर था। **कृषि से संबधित जो अनुष्ठान थे उनमें स्त्रियों की विशेष भूमिका पायी जाती थी। ऐसा माना जाता था कि विशेष अनुष्ठान द्वारा स्त्री की काम शक्ति भूमि को अन्तरित हो जाती है।**

एशिया, हिंदचीन

यहॉ कृषि संबंधी धार्मिक अनुष्ठानों का आज भी बड़ा महत्व है।

अमेरिकी इण्डियन्स : कृषि अनुष्ठान

इनमें जहां भी नरबलि की प्रथा थी, उसका संबंध कृषि अनुष्ठानों से था। इसका **उद्देश्य होता था भूमि की उर्वरता बढ़ाना**| उत्तर अमेरिका से एक वर्णन मिलता है जिसके अनुसार एक युवती के टुकड़े कर उन्हें खेतों में गाड़ा गया था और पोधों पर रक्त सिंचन किया गया था। उत्तरी हिस्से की एक जनजाति एक स्त्री की पूजा करती थी जिसे कृषि और मकई की संरक्षिका माना जाता था। उसे चंद्रमा पर वास करने वाली माना जाता था। मकई के बुआई के समय विशेष अनुष्ठान आयोजित किया जाता था।

अफ्रीका

कृषिजीवी जनजातियॉ खास करके पश्चिमी अफ्रीका में रहती हैं, वहॉ कृषि के संरक्षक देवताओं की सामूहिक पूजा का बड़ा महत्व था।

दक्षिण अफ्रीका के 'जुलू' लोग एक आकाशीय राजकुमारी 'नोमकुबुलवानादेवी' की पूजा करते थे। वे यह मानते थे कि वह खेतों को उर्वरता प्रदान करती है| कृषि का आविष्कारक भी उसे ही माना जाता था| जुलुओं में खेती से संबंधित सभी काम स्त्रियों के जिम्मे थे। उपरोक्त देवी के लिए किये जाने वाले अनुष्ठान कुमारी अथवा सधवा स्त्रियां ही सम्पन्न करती थीं।

कृषिजीवी जनजातियों में सार्वजनिक पूजा आदि में मौसम से संबंधित तथा वर्षा करवाने के लिए कर्मकाण्ड किए जाते थे। ये इतने लम्बे चलते थे कि सामान्य तौर पर उनका उद्देश्य पूरा हो ही जाता था। अर्थात् देर सबेर वर्षा हो ही जाती थी।

उत्तरी एशिया

यहॉ कृषिजीवी जनजातियों में यह मान्यता थी कि वनस्पति देवता मरकर फिर जीवित हो उठता है ।

काकेशिया (आर्मीनिया, जार्जिया, अझरबैजान)

अच्छी फसल के लिए संरक्षक देवता की पूजा और जादूटोना किया जाता था| कुछ जनजातियॉ कुछ विशेष देवी-देवताओं को भी मानती थीं, जिन्हें फसल और विभिन्न जाति के मवेशियों के संरक्षक माना जाता था। लेकिन काफी संख्या में देवता इन्हीं उद्योगों से संबंधित थे।

व्होल्गा थाले का मध्यवर्ति भाग

कृषि से संबंधित अनुष्ठान ग्राम समुदाय के स्तर पर मनाये जाए थे। बसंत में पहली जुताई तथा बुआई के समय विशेष उत्सव का आयोजन होता था। नृत्य-गान और युवाओं की क्रीड़ा प्रतियोगिताओं का आयोजन इन उत्सवों में किया जाता था। विशेष व्यंजन, मादक पेय और साफ पहनावे तो होते ही थे| उत्सव का स्थान या तो समुदाय का पवित्र जंगल या खेत होता था। व्यंजनों का भोग सर्वप्रथम धरती माता को लगाया जाता था। भोग के लिए कही-कहीं अन्य देव-देवता या देवताओं को भी शामिल किया जाता था।

'मारी' लोग खाने के टुकड़े अग्नि में फेंकते थे।

'मोर्दूवा' लोग टोकरी में खाने की चीजें रखकर उसे किसी ऊँचे वृक्ष पर लटका देते थे। 'उद्मूर्त' लोग हल की लीक में अंडे रखते थे। ऐसा समझा जाता था कि अंडा उर्वरता का प्रतीक है और वह उर्वरता का गुण भूमि को अंतरित कर देगा। इसे 'अनुकारी' जादू कहा जाता है।

'चुवाशों' में पृथ्वी और हल के रहस्यमय विवाह की कल्पना की जाती थी। यह इस ढंग से अनुष्ठान को मिथक रूप देना हुआ।

बोआई की समाप्ति और वर्षा के लिए भी पर्व थे। फसल के विषय में, शकुन कल्पना के आधार पर भविष्य बताया जाता था। भविष्य-कथन रात के अंधेरे में पकड़ी गयी भेड़ के रंग पर निर्भर होता था। मारी और चुवारा लोग इसे भेड़ की टांग का उत्सव कहते थे।

अनाज की बालियां निकालते समय कुछ कामों पर कड़े प्रतिबंध होते थे। जैसे भूमि खोदना, निर्माण कार्य, लकड़ी कटाई, क्योंकि ऐसा समझा जाता था कि इस समय भूमि गर्भवती होती है। उसकी शांति में खलल नहीं डालना चाहिए| फसल की प्राकृतिक संकटों से रक्षा करने के लिए चढ़ावें आदि भी होते थे। फसल समेटने के बाद आभार व्यक्त करने के लिए देवताओं को बलि दी जाती थी और फिर ही उसे उपयोग में लाया जाता था।

स्लाव

सामुदायिक अनुष्ठान और उत्सव कृषि से संबंधित थे। बहुत सारी जनजातियों में एक जैसी ही रस्में पायी जाती थीं| ये, या तो कृषि कार्य के आरंभ में या फिर अन्त में सम्पन्न की जाती थीं| कुछ जादुई अनुष्ठान भी इससे जुड़े हुए थे। यहॉ भी खेत में अंडे गाड़ने जैसे कार्य किए जाते थे।

सभी स्लाव भागों में एक देवता सामान्य पाया जाता है। वह है 'पैरून'। वैसे तो यह शासक वर्ग का देवता माना जाता है। लेकिन विद्वानों का अंदाज है कि यह अपने मूल रूप में कृषि से संबंधित होना चाहिए।

'वेलेस' अथवा 'वोलोस' पशुपालकों का संरक्षक देवता था । यहां एक मनोरंजक बात देखने में आती है। कृषक स्लावों में, वनों के प्रति शत्रुता का भाव देखने को मिलता है क्योंकि खेती की जमीन उपलब्ध होने के लिए वनों का नाश आवश्यक है।

देवताएं

	पोलिश	चेक
जहां वन अधिक है :	रूसी ल्येसी	दुखलेस्नीया दुखबोरोबी
खेतों की विपुलता :	पोलुदनित्सा पोलुदनिसे पोलेदनिचे	

जर्मन जनजातियॉ

वाल्डेर : इसे उर्वरता, बसंत तथा वनस्पतियों का देवता माना जाता है ।

फ्रायर : यह भी उर्वरता का देवता है।

टोर : यह किसानों में अधिक पूज्य देवता है।

अन्य कई देवता भी कृषि से जुड़े हुए पाए जाते हैं।

केल्ट (फ्रांस, इग्लैंड, आर्यलैंड)

यहॉ भी कृषि, और उर्वरता से संबधित देवता थे। वन्य वनस्पतियों का देवता 'एसुस' सर्वाधिक पूज्य देवता है। इसकी दो मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। उनमें से एक वर्तमान पॅरिस में प्राप्त हुई है। 'ओग्मिओरा' अनाज के खेत का संरक्षक देवता था लेकिन बाद में उसे बुद्धिमत्ता का देवता माना जाने लगा। इसका रोमनों के हर्क्युलिस से साम्य है।

कुछ पशुपालकों के इष्टदेवता भी हैं। घरेलू पशुपक्षियों से संबंधित देवता भी इनमें पाये जाते थे।

<u>अन्य धंधों से संबधित कुछ देवता</u>

रूस में 'मोकोश' नामक देवी की कल्पना मिलती है। यह रूसी सामग्री से मिलने वाली महत्वपूर्ण एकमात्र स्त्री देवता है। वह स्त्रियों के धंधों कताई, बुनाई की संरक्षिका देवी मानी जाती थी।

केल्टों में व्यापारिक संबंधों का विकास होने पर व्यापार से संबंधित देवताओं का भी धार्मिक रंगमंच पर आगमन हुआ| ये, कुछ-कुछ, रोमन देवता, मिनर्वा से समानता रखते थे।

अंदमान में 'तोमों' नामक देवता को जीवनयापन के आवश्यक धंधों का आदि ज्ञाता माना जाता था। उसे आदि पूर्वज भी समझा जाता था।

उत्तरी स्कैंडिनेविया और कोला द्वीप में रहने वाली लोपर जनजातियों में सभी धंधों की संरक्षक देवताएं थीं। ऐसा समझा जाता था कि वे लोगों को उनके धंधों में सहायता करती हैं। उनकी पूजा होती थी। बारहसिंगा पालन धंधा, बारहसिंगा स्वामी और विशेष कर बारहसिंगा स्वामिनी (लुओत खोजिन, लुआत खोजिक) के संरक्षण में होने की बात कही जाती थी। बरछे से मारे गए बारहसिंगा की हड्डियां पूजा में उन्हें चढ़ाई जाती थीं। प्रार्थना की जाती थी कि वे उनके बारहसिंगों की रक्षा करें।

टुंड्राजनों का प्रेतात्माओं में विश्वास भी कुछ इसी धंधे से जुड़ा था।

ऑस्ट्रेलियाइयों की मरणोपरांत आत्मा के अस्तित्व के विषय में मान्यताएं काफी कुछ अस्पष्ट हैं। कुछ जनजातियों के अनुसार मरे हुए लोगों की आत्माएं, शरीर की मृत्यु के तुरंत बाद, अपने आप नष्ट हो जाती हैं। तो कुछ अन्यों के अनुसार वे आकाश में चली जाती हैं। लेकिन मध्य आस्ट्रेलिया की आदिम जातियों में ऐसा विश्वास था कि दीक्षा की प्रक्रिया के दौरान दीक्षा कर्म की अधिष्ठात्री प्रेतात्माएं, दीक्षा ग्रहण करने वाले व्यक्ति को सर्वप्रथम मारती है और बाद में उसे फिर से जीवित करती है। (इस विश्वास में मरे हुए व्यक्ति के पुनरूज्जीवन से संबंधित कल्पना अपनी बहुत ही आदिम रूप में मिलती है।)

प्रकरण : सात

प्रेतात्माएं

मेलोनेशियाई जनजातियों में प्रेतात्माओं की कल्पनाएं

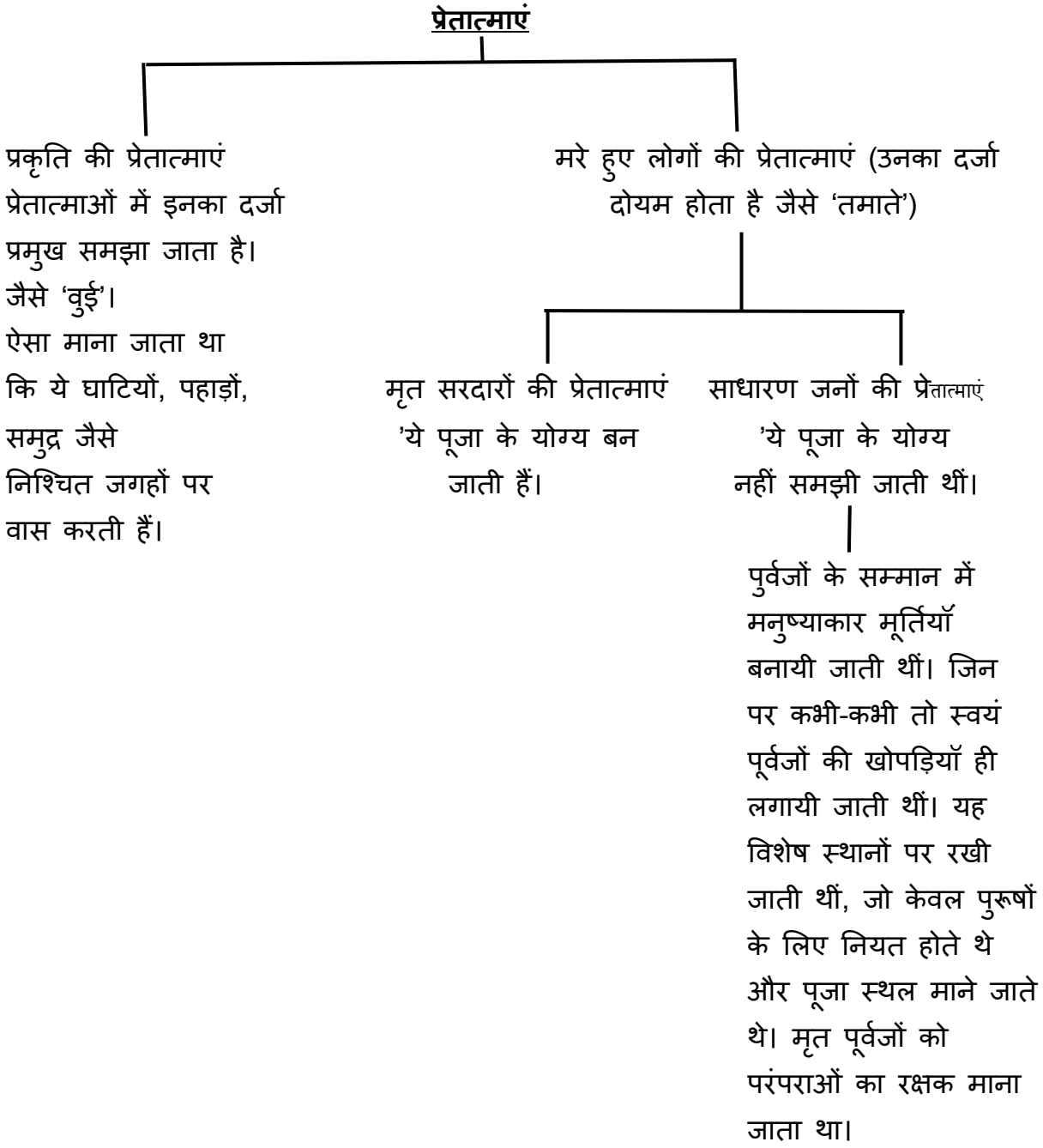

मेलोनेशियाई बहुत सारी प्रेतात्माओं को ही केवल मानते थे। इनसे अलग किसी विशेष देवता से वे परिचित नहीं थे।

मेलोनेशिया से भौगोलिक दृष्टि से जुड़ा हुआ है पोलीनिशिया। दोनों में सांस्कृतिक दृष्टि से समानताएं होना लाजिमी है। लेकिन ये छोटे द्वीप प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से उतने समृद्ध नहीं थे। अतः लोगों का जीवन कड़ी मेहनत से युक्त था। परिणामतः सामाजिक विकास भी कुछ उच्च स्तर का था। यहॉ मृत ही नहीं तो जीवित सुबेदारों की भी पूजा की जाती थी। जीवित सरदारों को देवताओं के सदृश्य, पवित्र समझा जाता था। अर्थात् उनकी मृत्यु के पश्चात् उनको दफनाने का स्थल तो पवित्र बन ही जाता था। **सरदारों में अलौकिक शक्ति का वास होता है ऐसा जबरदस्त विश्वास था।** इस शक्ति का उल्लेख 'माना' द्वारा किया जाता था। सरदार की शक्ति के अनुपात में उसमें इस शक्ति की अधिकता मानी जाती थी। दासों में ऐसे शक्ति का अस्तित्व होने के बात एकदम अमान्य थी। **कोई कुछ और कितना भी कहे लेकिन यहॉ समाज व्यवस्था प्रतिबिंब होने की बात कैसे अमान्य की जा सकती है?**

'माना' की कल्पना एक अलौकिक शक्ति के रूप में विचार है| इसके साथ-साथ उस समय एक और कल्पना पायी जाती थी वह है 'टैबू' की। टैबू शब्द पोलानेशिया मूल का ही है। जो कुछ भी सरदार के संपर्क में आता था वह टैबू हो जाता था। अर्थात् वह अन्यों के लिए वर्जित हो जाता था। आम तौर पर सरदार कहार के कंधों पर ही जाते थे। गलती से भी उनका पांव जमीन को छू लेता, तो वह जमीन प्रजा के लिए टैबू हो जाती थी। टेबू के उल्लंधन की सजा का प्रावधान होना क्रमप्राप्त ही है। यह सजा कुछ मामलों में सरदार द्वारा सुनायी जाती थी, तो कुछ मामलों में वह दैवीय न्याय पर छोड़ दी जाती थी। सरदार अपनी मर्जी से किसी वस्तु को टैबू घोषित कर सकता था। इस घोषणा को आप राजा का आदेश या अन्य रूप में कहों तो, तत्कालीन कानून के रूप में भी ले सकते हैं।

यह तो हुई जीवित प्रभावशाली व्यक्ति या सरदारों के पूजनीय होने के बात। ऐसा भी माना जाता था कि मरणोपरांत कुलिनों और सरदारों की आत्माओं का ही अस्तित्व बना रहता है। जबकि साधारण व्यक्तियों की आत्माएं तुरन्त नष्ट हो जाती हैं। सरदारों की आत्माओं को एक तरह से देवताओं का दर्जा प्राप्त था। समाओं, टोंगा आदि द्वीपों पर सरदारों के शवों को विशेष लेप लगाकर समाधि गृहों में रख दिया जाता था। सामान्य आदमी के शव का ठिकाने लगाने के लिए निम्न तरीके अपनाए जाते थे।

1) भूमि में दफन करना।

2) चबूतरे या वृक्ष पर छोड़ देना ।

3) नाव में रखकर समुद्र में छोड़ देना।

<u>एशिया की जनजातियॉ</u>

<u>'कूबू'</u>

सुमात्रा की जनजाति 'कूबू' के धार्मिक विश्वासों के विषय में बहुत कम जानकारी मिलती है। लेकिन रिदान नदी के किनारे रहनेवाले और घुमन्तु शिकारी जीवन पद्धति वाले इन लोगों में ऐसे विश्वासों की अधिकता नहीं है जिन्हें धार्मिक श्रेणी में रखा जा सकता है, इतना निश्चित। खास तौर पर उनमें प्रेतात्माओं और मृतकों के विषय में कोई विशेष कल्पनाएं नहीं थीं। वे मृतकों को मरने की जगह ही छोड़ देते थे और स्वयं अन्यत्र चले जाते थे। लेकिन इसी जनजाति का कुछ हिस्सा स्थानीय मलय आबादी के संपर्क में आया और उन्होंने शिकारी की जगह खेती को अपनाया। वे एक जगह स्थायिक भी हो गए थे। जीवन के ढंग में फर्क होते ही या अन्य जातियों के संपर्क में आते ही उनमें कुछ कल्पनाओं का विश्वास के तौर पर उदय हुआ| फिर उनमें ऐसा विश्वास अस्तित्व में आया कि कुछ तो मृत्यु के बाद प्रेत बन जाते हैं और कुछ का मृत्यु के बाद अस्तित्व नहीं रहता। इस भेद का क्या कारण है इसका कहीं उल्लेख नहीं मिलता। इस अधूरेपन का कारण ये कल्पनाएं अन्यों से उठायी गयी हैं, उसकी संभावना अधिक है।

सेमांग - मलय प्रायद्वीप के भीतरी भागों में रहने वाली यह जनजाति है । उनके विश्वास यह बताते हैं कि प्रेतात्माएं फूलों में वास करती हैं। वे मनुष्य के प्रति बुरी भावनाएं नहीं रखतीं, उलटा उनका भला चाहती हैं।

<u>अंदमान द्वीप की मूल जाति</u>-

वे प्रेतात्माओं में विश्वास करते थे। यहॉ भी प्रेतात्माएं -

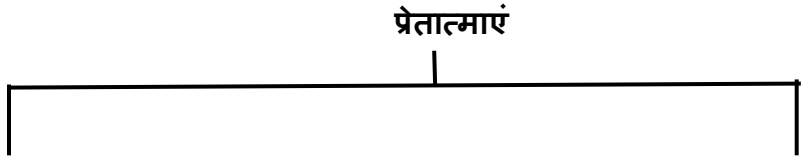

या उन्हें प्रेरक रूप कहना अधिक योग्य होगा।

सेमांग जनजाति के विश्वास के एकदम विपरीत यहॉ ऐसा माना जाता था कि प्रेतात्माएं अधिकांशतः दुष्ट और मनुष्य के लिए खतरनाक होती हैं| यहॉ यह ध्यान में लिया जा सकता है कि इन लोगों को प्रकृति के उग्र स्वरूप का हमेशा सामना करना पड़ता था।

श्रीलंका की मूल जाति -

मुख्य रूप से यहॉ प्रेतात्माओं में विश्वास है लेकिन वे अधिकतर उनके शिकार धंधे से संबधित है। शिकार के लिए कूच करने के पूर्व उनकी पूजा की जाती थी। उन्हें भेंट भी चढ़ाई जाती थी। **आम तौर पर यहॉ की आदिम मान्यताओं में इन प्रेतात्माओं के अतिरिक्त अन्य देवताओं के रूप नहीं मिलते।**

तिब्बत के आदिम विश्वास -

यहॉ प्रकृति की प्रेतात्माओं, विशेषतः पर्वतों की प्रेतात्माओं में विश्वास था। तिब्बत में पहाड़ी दर्रों पर पत्थरों के ढेर आज भी देखने को मिलते हैं। वे राहगीरों द्वारा इन प्रेतात्माओं के प्रति चढ़ावे के रूप में एकत्र हुए पत्थरों के संग्रह हैं। यहॉ आकाश देवता की पूजा का रिवाज जरूर मिलता है।

यही बात मंगोलिया में देखी जाती है| प्रेतात्माओं में सबसे बड़ा आकाश देव माना जाता था| तिब्बत और मंगोलिया के विश्वासों में काफी समानता दिखाई देती है।

बर्मा (बौद्ध धर्म अपनाने से पहले)

बर्मा में नटों-प्रकृति के देवताओं और प्रेतात्माओं की पूजा किसी न किसी रूप में आज भी प्रचलित है।

इंडोनेशिया

पीछे हमने देखा कि ईसा पूर्व दूसरी सहस्राब्दी में एशियाई 'मांगोलाभ' जनों ने इन द्वीपों पर बसना शुरू किया। उन्हें वहॉ के आदिम निवासियों के प्रतिरोध और वनों के अन्दर से आते उनके विषैले बाणों का सामना करना पड़ा। वे आदिम निवासी एकाएक हमला करके वापस जंगल में गायब हो जाते थे। वे पकड़ में नहीं आते थे। एक तरह उन्होंने आगन्तुकों के मन में अपने लिए दहशत उत्पन्न कर रखी थी। वनों से जुड़ी चीजों ने उनके अवचेतन मन में अदृश्य खतरे की अनुभूति उत्पन्न कर दी थी। ये धीरे-धीरे लुप्त हो रहे आदिवासी उनके अवचेतन मानस में रहस्यमय प्रेतात्माओं में तब्दील हो गए। लेकिन प्रत्यक्ष जीवन में पूर्ण अलगाव संभव नहीं हो पाता। कहीं-कहीं और कभी न कभी दोनों के सम्पर्क से इन्कार नहीं किया जा सकता। और शायद यही वास्तवता का प्रतिबिंब है। जंगलवासी प्रेतात्माओं के साथ इन जनों के यौन संबंधों की कथाएं और कहानियों के मिथक मिलते हैं।

यहॉ जगलों से संबंधित प्रेतात्माओं की संख्या काफी अधिक है। उन्हें वनों, नदियों, पर्वतों के स्वामी समझा जाता था। उनके रूप की कल्पना तो मानव सदृश्य की जाती थी। लेकिन मानव के लिए उन्हें अदृश्य ही समझा जाता था। कल्पनाओं के अनुसार वे मनुष्य का बुरा कर सकते हैं। इससे उन्हें विरत रखने के लिए मार्ग खोजा गया, मनुष्य द्वारा अपनी

समझ के अनुसार। वह था उन्हें संतुष्ट रखना। इसी से बलि की कल्पना सामने आयी| यह उन व्यक्तियों के प्रति होती है जिनके अलौकिक होने का हम हमारी दृष्टि से विश्वास दिलाते हैं। लेकिन कम से कम मानव मानस के विकास के उस स्तर तक तो वे कल्पनाएं क्षूद्र मानव भावनाओं से कुछ काफी दूर नहीं पहुँच पायीं।

<u>अमेरिकी भूभाग</u>

एस्किमो : जैसा कि पीछे उल्लेख किया गया है उनके विश्वासों में शामानों से संबंधित प्रेतात्माएं तो थी ही, साथ-साथ प्रकृति की देवताओं के रूप में प्रेतात्माओं का अस्तित्व भी था। उनके लिए सबसे महान प्रेतात्मा सागर का प्रेतात्मा है। कॅनडा के एस्किमो में उसका रूप देवी का है और वहीं उपासना का मुख्य बिंब है| 'बैफ्फिन' प्रदेश के एस्किमो उसे 'सेडना' नाम से पुकारते हैं| वह समुद्र की वासिनी है**| एस्किमो लोगों के मतानुसार मनुष्य की मृत्यु के बाद उसकी आत्मा उसके किसी वंशज, सामान्यतः पौत्र के शरीर में प्रवेश लेती है|** इसी कारण वहॉ छोटे बच्चे भी आदर के पात्र होते हैं। लेकिन यह आत्मा बच्चे में तभी तक रहती है, जब तक कि उसकी अपनी आत्मा सशक्त नहीं हो जाती। बाद में पुरखे की आत्मा बच्चे से अलग हो जाती है| लेकिन आगे उसका क्या होता है यह उन्हें (एस्किमो लोगों को) मालूम नहीं। उनमें परलोक का विशेष महत्व नहीं।

ओशेनिया और अफ्रीका की जनजातियों में सरदारों की पूजा की प्रथा थी लेकिन अमेरिकी इंडियनों में ऐसी किसी प्रथा का लगभग अभाव है| केवल उत्तर-पश्चिमी तट के इंडियनों में सरदारों को अनुष्ठानिक कार्यों से संबंधित कुछ विशेषाधिकार थे। यहॉ जनवादिता का प्रभाव दिखायी देता है।

दूसरी बात उनमें मरणोपरांत जीवन से संबंधित प्रतिफल, स्वर्ग, नर्क आदि कल्पनाओं का अभाव है| वहॉ भावी जीवन को इहलोक जीवन के सिलसिले के तौर पर ही समझा गया था। ऐसा प्रबल विश्वास पाया जाता था कि परलोक में भी व्यक्ति उसी ढंग से रहता है जैसा उसका ऐहिक जीवन होता है। वह अगर यहॉ शूर योद्धा होगा तो वहां भी उसका रूप वैसा ही बना रहेगा। जिसका ऐहिक जीवन शर्मिंदगी का हो, वह वहॉ भी उसी ढंग का होगा। इससे क्या यह नहीं स्पष्ट होता कि परलोक जीवन की चिंता से ऐहिक जीवन को सुधारने की चिंता अधिक थी।

<u>अफ्रीका-</u>

<u>दक्षिण अफ्रीका के बुशमैन</u>-

इनका भी मरणोपरांत जीवन में विश्वास है लेकिन ये लोक मृतकों से बड़े डरते थे। मृतकों का दफन विशेष अनुष्ठानों के साथ सम्पन्न होता था।

<u>मध्य अफ्रीका के पिग्मि</u>-

इनमें पूजा का मुख्य बिंब वन में वास करने वाली प्रेतात्मा है| बांबूतियों का विश्वास है कि मरणोपरांत हर व्यक्ति की आत्मा उसके टोटमी जीव का रूप ले लेती है। **लेकिन इसके आगे मृतकों से संबधित विश्वासों का विशेष विकास नहीं हुआ।**

<u>पूर्वी और दक्षिण अफ्रीका</u>-

यहॉ हर बस्ती, गांव, इलाके में नदी, नालों, पर्वतों, घाटियों, चट्टानों और वनों के अपने स्थानीय देवता अथवा प्रेतात्माएं थीं।

अफ्रीका में भिन्न-भिन्न रूपों में सरदारों, राजाओं की पूजा पायी जाती है| उनमें देवतारोपण भी मिलता है, इनके जीवित अवस्था में और मृत्यु के बाद भी। कहीं-कहीं तो उसे साक्षात ईश्वर की ऊँचाई तक पहुंचा दिया जाता था। नाइजर नदी के निचले भाग में 'बेनिन' नाम का एक राज्य था। वहॉ सरदारों की अंत्येष्टि और श्राद्ध के आयोजन प्रायः नरबलि के साथ सम्पन्न होते थे।

आगे व्यक्तिपूजा इतनी महत्वपूर्ण हो गयी कि उसके आगे प्रत्यक्ष जनजातीय देवताओं की पूजा भी पृष्ठभूमि में चली गयी।

<u>उत्तरी एशिया-</u>

यहॉ भी गोत्र और परिवार की संरक्षक प्रेतात्माओं में विश्वास था। सायबेरिया में खांतियों, सियों, सेल्कूपों के यहॉ हर परिवार के अपने पवित्र संरक्षक भी होते थे। इन्हें लकड़ी के पुतलों की शक्ल में बनाया जाता था।

सायबेरिया की जनजातियों में शिकार, मछलीमारी आदि से संबंधित संरक्षक प्रेतात्माओं की पूजा काफी विकसित थी। इनका उद्देश्य होता था कि इन व्यवसायों में सफलता सुनिश्चित करना। स्वामी प्रेतात्मा होती है, ऐसा माना जाता था| यही निश्चित करती थी कि शिकारी द्वारा मारे जाने के लिए जीव उपलब्ध कराना है या नहीं। ऐसा भी विश्वास था। पूरी की पूरी जीव जातियों के स्वामी भी होते थे। आगे अलग-अलग जीवों की स्वामी प्रेतात्माएं इनके अधीन होती थीं। उनका मनुष्य के प्रति व्यवहार, मनुष्य के (शिकारी या मछुआरों) आचरण पर निर्भर होता था। ये प्रेतात्माएं इनके प्रति दयालु और उनके अनुकूल होगी बशर्ते कि मनुष्य इनकी पूजा करता हो और पशु वध की अपरिहार्यता होने पर भी उनके प्रति अनावश्यक रूप से क्रूर न हो। इन प्रेतात्माओं की अनुकंपा के आधार पर ही शिकार का उपलब्ध होना निर्भर था। प्रकृति के आगे मनुष्य की असहायता और जीवनयापन में व्याप्त अनिश्चितता के कारण उपजी मानसिकता से ऐसे अलौकिक तत्वों के प्रति, विश्वासों का सृजन काई आश्चर्य की बात नहीं है। इन प्रेतात्माओं का, शामानी प्रेतात्माओं,

बीमारियां उत्पन्न करने वाले प्रेतात्माओं, परिवार, गोत्रों के संरक्षक प्रेतात्माओं से अलग अस्तित्व माना जाता था। **उत्तरी एशिया के जनजातियों में पूजा केवल प्रेतात्माओं की जाती थी, देवताओं की नहीं।**

उत्तरी स्कैंडिनेविया और कोला द्वीप में रहने वाली लोपर जनजातियों में परिवार संरक्षक प्रेतात्मा की पूजा का रिवाज था| लेकिन काकेशिया के इंगुशों, ओसेनियों और कुछ जार्जियाई समूहों में, गोत्र संरक्षक की पूजा की जाती थी। यह संरक्षक कुल का कोई पुरखा भी हो सकता था। उसके सम्मान में पत्थर के स्मारक खड़े किये जाते थे। इसे 'सियेलिंग' कहते थे। इसके पास गोत्र पर्व के अवसर पर प्रार्थना का आयोजन किया जाता था। 'अवखाजों' जैसी जनजातियों में गोत्रों के समूहों के भी संरक्षक देवता होते थे।

मृतको से संबंधित अनुष्ठान और विश्वासों का अस्तित्व व्यापक पैमाने पर था| यह उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है । उनका स्वरूप कहीं एकदम सरल तो कहीं विकसित रूप में और कहीं-कहीं तो उनका असामान्य जटिल रूप देखने को मिलता है। कुछ-कुछ जनजातियों में अंत्येष्टि के समय खेल और प्रतियोगिताएं आयोजित की जाती थीं। यानि वह एक उत्सव का रूप ले लेती थी।

उचित समय पर मृतकों के श्राद्ध की प्रथा का कड़ाई से पालन किया जाता था। ऐसा समझा जाता था कि इसमें मृतक भी उपस्थित रहता है| जो इस सारी प्रथा का पालन करने में कम पड़ता था उसे हेय दृष्टि से देखा जाता था। ऐसा माना जाता था कि वह अपने मृतक को भूखा रख रहा है। ऐसा विश्वास, खास करके, असिर्तियों में था। **यहॉ किसी की मृत्यु पर कडाई से शोक मनाया जाता था।**

<u>स्लाव जनजातियॉ-</u>

मृतक

शुद्ध मृतक	**अशुद्ध मृतक**
जिनकी मृत्यु सहज होती थी जैसे बीमारी कारणों से या वृद्धावस्था के कारण उन्हें शुद्ध मृतक माना जाता था| इन्हें ही पितर समझा जाता था ऐसा विश्वास था कि उन्हीं पर परिवार की रक्षा का दायित्व होता है। अर्थात् वे सम्मान के योग्य माने जाते थे।	हत्या, आत्महत्या, अपघात आदि कारणों से जो अकाली मृत्यु को प्राप्त हुए,उन्हें अशुद्ध मृतक समझा जाता था| ओझाओं और जादूगरों की प्रेतात्माओं को भी इसी श्रेणी में रखा जाता था। ऐसा समझा जाता था इनमें मनुष्य की अनिष्ट करने की क्षमता होती है और उनसे डरा जाता था।

परिवार की रक्षक प्रेतात्मा का वास अंगीठी या दहलीज के नीचे होता है, ऐसा माना जाता था| उसे मनुष्य के शक्ल का ही माना जाता था।

<u>जर्मन जनजातियॉ</u> -

जर्मन जनजातियों का भी प्रकृति में रहने वाली बहुसंख्य प्रेतात्माओं में विश्वास था| जैसे -

- जमीन पर वास्तव्य करने वाली प्रेतात्मा 'एल्फ्रो' थी।
- पहाड़ों पर वास्तव्य करने वाली प्रेतात्मा 'ट्रोलो' थी।
- पानी में वास्तव्य करने वाली प्रेतात्मा 'निक्सो' थी।
- भूमि में नीचे रहने वाली प्रेतात्मा 'ग्नोमो' थी।

इनमें कुछ प्रेतात्माएं मनुष्य का भला चाहने वाली होती थीं तो अन्य कुछ मनुष्य के प्रति शत्रुता रखने वाली। मनुष्य के जीवन के प्रति प्रकृति की अनुकूलता तो कभी प्रतिकुलता और उसे मनुष्य के अनुकूल बनाने के लिए उसका जीवट संघर्ष ही इन कल्पनाओं में प्रतिबिंबित होता है। ये कल्पनाएं, लोक विश्वासों और लोक साहित्य में सुरक्षित रही हैं और हम तक पहुंची हैं। जर्मनों के धार्मिक विश्वासों का पता उनके रोमनों के संपर्क में आने के युग में, रोमन लेखकों द्वारा किए गए उल्लेखों से मिलता है।

<u>केल्ट जनजातियॉ</u>-

इनका मृत्यु उपरांत जीवन में विश्वास था। पृथ्वी और जल के नीचे अथवा द्वीपों पर एक ऐसा लोक स्थित है, जहॉ मनुष्य मरने के बाद पहुंचता है, ऐसा समझा जाता था| उनका पुनर्जन्म में विश्वास था। उनका बड़ी संख्या में प्रेतात्माओं, परियों, डाइनों और दैत्यों के अस्तित्व में भी विश्वास था।

<u>पितर पूजा-</u>

पीछे हमने देखा कि किस तरह मेलोनेशियाई जनजातियों में सरदारों आदि प्रभावशाली व्यक्तियों के मृत्यु के बाद उनकी आत्माएं पूजा की बात बन जाती थीं। पापुआई जनजातियों में भी पूर्वजों के प्रति आदर की भावना थी। **तिब्बत तथा हिन्द चीन (बौद्ध धर्म पूर्व काल)**

यहां पितर पूजा का प्रचलन था। आज भी उसके अवशेष देखने को मिलते हैं।

<u>अमेरिकी भूभाग</u> -

कुछ अपवादों को छोड़कर किसी भी अमेरिकी इंडियन जनजाति का पितरों की पूजा में कोई विशेष विश्वास नहीं था।

अफ्रीका-

अफ्रीका के बुशमैन मृतकों से तो डरते थे लेकिन उनमें पितरों की पूजा का रिवाज नहीं था। लेकिन अन्य जनजातियों के विश्वासों के आधार पर अफ्रीका को पितर पूजा का क्लासिकल देश माना जाता है। यहॉ पितर पूजा महत्वपूर्ण है। ऐतिहासिकतः पितर पूजा पितृसत्तात्मक गोत्रीय व्यवस्था के आधार पर उत्पन्न हुई थी। अफ्रीकी लोगों में, पूर्वजों को सामान्यतः परिवार या गोत्र का संरक्षक समझा जाता था। मगर वे निष्काम शुभचिंतक नहीं होते थे। उन्हें वंशजों से अपेक्षा रहती थी, पूजा तथा बलि की। यदि उनकी उपेक्षा की गयी तो वे वंशजों को दंडित भी करते थे। बीमारियों और विपदाओं के रूप में दंड दिया जा सकता था।

साइबेरिया-

साइबेरिया में आम तौर पर पितर पूजा नहीं मिलती। लेकिन लोपरों की जनजाति में इसका प्रचलन था। वे मृतकों के लिए विशेष अनुष्ठान करते थे। उन्हें खिलाते-पिलाते थे।

वोल्गा प्रदेश-

वोल्गा प्रदेश की 'मारियों' और 'उद्मुतों' जातियों में पितर पूजा से संबंधित विश्वास व्यवस्थित ढंग से सुरक्षित रहे। पारिवारिक श्राद्ध मृत्यु के तीसरे, सातवें तथा चालीसवें दिन और प्रथम बरसी पर सम्पन्न किए जाते थे। बसंत में गोत्रीय श्राद्ध का समय होता था। पुण्य सप्ताह में बृहस्पतिवार के दिन और कर्मकांड होते थे| जैसे मृतकों को श्राद्ध में पाचारण करने का आवाहन, उन्हें तृप्त और प्रसन्न करने के लिए खिलान-पिलाने का स्वांग और फिर अपने काम की बात यानि वंशजों की रक्षा और सहायता करने की प्रार्थना। प्रत्यक्ष में मृतक की भूमिका किसी व्यक्ति द्वारा अदा करने जैसे स्वांग भी रचे जाते थे।

स्लाव-

रूस में निश्चित तिथियों पर पितरों की याद में भोज दिया जाता था। बायलो-रूस में मृत पितरों का पर्व धूमधाम से मनाया जाता है| सबसे बड़ा आयोजन शरद ऋतु में होता है| पितरों का आवाहन किया जाता है कि वे इसमें पधारे। सर्ब और बल्गेरिया में स्मरण दिवस मनाया जाता था| खान-पीने की वस्तुओं का पितरों को समाधि स्थल पर भोग दिया जाता था और बाद में उसका प्रसाद के तौर पर सेवन किया जाता था।

जर्मन-

मृतकों के प्रति सम्मान और पितरों की पारिवारिक और गोत्रीय पूजाएं, अन्य जातियों की तरह जर्मनी में भी मिलती हैं।

मृत शरीरों का निर्वतन

हमने पीछे देखा कि पोलोनेशियाई जनजातियों में सरदारों आदि के शवों को विशेष लेप लगाकर समाधि गृहों में रख दिया जाता था। साधारण आदमी का शव निम्न तरीकों से ठिकाने लगाया जाता था।

1. भूमि में दफना देना|

2. चबूतरे या वृक्ष पर छोड़ देना|

3. नाव में रखकर समुद्र में छोड़ देना।

सुमात्रा की कूबू जाति मृतक को मरने की जगह ही छोड़ देती थी और स्वयं अन्यत्र चली जाती थी।

अमेरिकी भूभाग कॅलिफोर्निया में भी मृतकों की अन्त्येष्टि की दो विधियॉ मिलती हैं। **दाह संस्कार और भूमि में गाड़ना, शव को खुले में छोड़ देना और ममीकरण, यह बातें भी अमेरिकी इंडियनों के लिए एकदम अज्ञात नहीं थी।**

अफ्रीका के बुशमैन विशेष अनुष्ठानों के साथ मृतक को दफनाते थे।

काकेशिया और व्होल्गा प्रदेश-

इंगुशों/ओसेतियों में पुरानी समाधियॉ, पत्थरों से बने शवकक्षों के आकार की मिलती हैं। व्होल्गा भूभाग की 'मारियों' और 'उदमूतों' जनजातियों में जो अत्येष्टि संबधित संस्कार हैं, उनसे उनका मृतकों के प्रति भय व्यक्त होता है। वे मृतकों को खिला-पिलाकर संतुष्ट करने की चेष्टा करते थे।

स्लाव जातियॉ -

पूर्व-पश्चिमी स्लाव मृतकों को जलाते थे तो दक्षिण में मृतक को गाड़ने का रिवाज था| **कब्र के ऊपर मिट्टी का टीला बनाया जाता था। मृतक के साथ तरह-तरह की वस्तुएं, इतना ही नहीं तो दास और पत्नी को भी मारकर गाड़ दिया जाता था।** स्लाव लोक मृतक की आत्मा अथवा प्रेतात्मा से नहीं तो प्रत्यक्ष लाश से डरते थे। मुर्दे को खतरनाक और अहितकर समझने के अंधविश्वास अभी हाल तक प्रचलित थे। लाश के चलने-फिरने की अलौकिक क्षमता में विश्वास किया जाता था। वह ऐसा न कर सके, इसलिए लाश को कब्र से निकाल कर दलदल में फेंक दिया जाता था।

<u>जर्मन-</u>

इनमें शव को ठिकाने लगाने की दोनों प्रथाओं का प्रचलन पाया जाता था- शवदाह और गाड़ना। लेकिन जर्मन पुराणाख्यानों में युद्ध में वीरतापूर्वक वीरगति को प्राप्त सैनिकों के, ओडिन देवता के उज्ज्वल प्रासाद 'वाल्गाल्ला' में पहुँचने की बात कही गयी है। वहाँ वे भोग-विलासमय जीवन बिताते थे।

श्री मन्मथनाथ गुप्त और रमेन्द्रनाथ वर्मा के अनुसार मृत्यु अवश्य एक विशेष घटना थी। किन्तु बहुत आदिम युग में बहुत कम लोग पशुओं के साथ या दूसरे कबीलों के लोगों के साथ लड़ते हुए मारे जाते थे। और यह भी बिल्कुल स्वाभाविक समझा जाता था। इसके अतिरिक्त जिन लोगों को वृद्ध होने का मौका मिलता था, वे एक तरह से आत्महत्या करते थे अर्थात् उनकी राय से उनके साथ वाले उन्हें मार डालते थे। बात यह थी कि समाज उन दिनों अनुत्पादक सदस्यों का बोझ उठाने की स्थिति में नहीं था| इस प्रकार की मृत्यु भी स्वाभाविक समझी जाती थी। इस मृत्यु को उत्सव के रूप में मनाया जाता था। धार्मिक रूप से उस व्यक्ति का मांस खाया जाता था और यह समझा जाता था कि उस व्यक्ति की शक्ति मांस खाने वालों में आ जाती है। उत्पादन के साधनों की उन्नति के साथ-साथ बूढ़ों तथा अपाहिजों को मारकर खाने की प्रथा का अन्त हुआ। क्रोपाटकिन ने अपनी रचनाओं में इसके उदाहरण दिये हैं| ऐसी जातियाँ जीवित पायी गयी हैं| लोग जब आम तौर से स्वाभाविक रूप से मरने लगे, तभी लोगों में मृत्यु के संबंध में अथवा मृत व्यक्ति और जीवित व्यक्ति के भेद के संबंध में कुतुहल उत्पन्न हुआ। इससे पहले लोग मृत्यु को एक मामूली घटना समझते थे। लेकिन बाद में मनुष्य में मृत्युभय की उत्पत्ति हुई| प्रसिद्ध रूसी लेखक एन् पोक्रेवस्की मृत्यु के भय को ही धर्म की उत्पत्ति स्थल मानते हैं।1

ग्रेट एलेन आदि कुछ विद्वानों के मतानुसार धर्म की उत्पत्ति मृतक पूजा से हुई। उनके अनुसार जो-जो पेड, पत्थर, नदी मृतकों से सम्बद्ध होते गए, वे पुजास्थान होते गए।

(1: 2 :ऐतिहासिक भौतिकवाद: गुप्त और वर्मा :पृष्ठ३६३ और ३७६)

<u>(प्रेतात्माओं के अतिरिक्त) अन्य देवताओं की कल्पनाएं</u>

<u>पेलिनेशिया की जनजातियाँ -</u>

पोलिनेशिया में प्रेतात्माओं के अतिरिक्त और कई देवता भी उभर आए। **ये देवता या तो मनुष्य के कार्यकलापों से या फिर प्राकृतिक घटनाओं से जुड़े हुए हैं|** महत्वपूर्ण देवताओं के नाम पोलिनेशिया के बहुसंख्य द्वीपों पर समान पाए जाते हैं| लेकिन उनसे जुड़े मिथकों में अलग-अलग द्वीपों पर भिन्नता पायी जाती है। इस विषय में ऐसा अनुमान किया गया है कि जहाँ तक इनकी उत्पत्ति का प्रश्न है, एक ही जगह हुई होगी। लेकिन जनों के

प्रदेशान्तरण के कारण उनसे संबंधित मिथकों का विकास अलग-अलग जगह स्वतंत्र रूप से हुआ।

सबसे प्रमुख पोलिनेशिया देवता है 'तंगारोआ'। कही-कहीं इनका नाम 'तगारोआ', 'तंगालोआ' 'कनालोआ' भी है। वह प्रकृति की शक्तियों से सम्बन्ध रखने वाला देवता है। **उसे सृष्टि का निर्माता और अन्य देवताओं का पिता माना जाता है।**

एक अन्य देवता है 'ताने' । अधिकांश द्वीपों पर उसे उर्वरता का देवता और वनस्पतियों का रक्षक माना जाता है। न्यूजीलैंड में उसे प्रथम स्त्री का रचयिता माना जाता है। अर्थात् यहॉ भी उर्वरता की कल्पना से सम्बन्ध है ही।

तीसरा बड़ा देवता 'रोंगों' कृषि और वर्षा का देवता है। इसके 'रोओ', 'लोनों' नाम भी हैं।

एक बहुत ही ध्यान देते लायक बात है। यह बड़े देवता, शासक और पुरोहित जैसे सुविधाभोगी जनों के आराध्य थे। आम लोग इनसे बहुत ही कम परिचित थे। सामान्य जनों की अलग-अलग स्तर पर संरक्षक देवताएं थीं| जिनका स्वरूप संरक्षक प्रेतात्माओं से कोई विशेष परिष्कृत नहीं था। **अर्थात् समाज के भिन्न-भिन्न स्तरों के अनुसार देवताओं का स्वरूप भी और उसके परिष्कृत होने का अनुपात भी भिन्न-भिन्न था| यहॉ तक की विशेष देवता सामान्य जनों में काफी कुछ अपरिचित थे।**

न्यूझीलैंड में पुराने समय में भी एक गुप्त पंथ था। यह एक ही बड़े देवता में विश्वास रखता था। उसे 'ईओ' नाम से जाना जाता था। इसका स्वरूप कुछ निराकार शक्ति जैसा था, जो सबके मूल में थी। लेकिन यह एकेश्वरवाद का आदिम रूप था ऐसा दावे के साथ कहना कठिन है। क्योंकि उपरोक्त सार हमारी अपनी भाषा में हमने निकाला हुआ सार है।

<u>अफ्रीका</u> -

<u>पिग्मी</u>-

पिग्मी जनों का ऐसे देवता में विश्वास था जिसने मनुष्य को मर्त्य बनाया। उसे दुष्ट देवता समझा जाता था और उपासना के अयोग्य।

जहॉ तक पूर्वी और दक्षिणी अफ्रीका के निवासियों का संबंध है, देवपूजा से संबंधित विश्वास कुछ सामाजिक दृष्टि से उन्नत जनजातियों में उत्पन्न हुए। किसी वस्तु या घटना से मनुष्य के मन में विस्मय उत्पन्न होता था, **किसी संयोग से, किसी बात या वस्तु की उपस्थिति से या सान्निध्य से मनुष्य को इच्छित सफलता मिल जाती थी तो ये बातें मनुष्य के लिए देवता बन जाती थीं। उसके प्रति मनुष्य का व्यवहार भी ध्यान देने लायक होता था।**

1. किसी वस्तु से यदि मनुष्य को सफल होने में सहायता मिलती थी तो उसे भेंट, चढ़ावे चढ़ाए जाते थे। उसके प्रति आभार व्यक्त करने का यह एक ढंग था। उससे और अधिक सहायता की याचना भी की जाती थीं। एक प्रथा में देवक से किसी चीज की याचना करते समय उसमें लोहें की कीलें ठोंकी जाती थीं। ऐसा समझा जाता था कि इस पीड़ा की अनुभूति के कारण हमारी याचना उसके स्मृति में हमेशा बनी रहेगी और वह हमारे प्रति लापरवाह नहीं होगा। मनुष्य के दिमाग से निकली कल्पनाएं भी कितनी उलजूलूल हो सकती हैं।

<u>उत्तरी एशिया-</u>

उत्तर एशिया की जनजातियों में पूजा केवल प्रेतात्माओं की जाती थी, देवताओं की नहीं। हो सकता है 'आकाशीय देवता' जैसी कल्पना का उदय बाद के संपर्क के कारण हुआ हो।

सायबेरिया की केवल ऐतिहासिक दृष्टि से विकसित जनजातियों में बड़े देवताओं के बिंब स्पष्ट हुए हैं। अनुष्ठानों में उनका स्थान भी महत्वपूर्ण हो गया है। 'याकुतों' में मिलने वाले बिंब इस प्रकार हैं।-

1. सहृदय देवताओं का प्रमुख है महान दयालू देवता 'आइई तो इयोन'

2. इसके विपरीत दुष्ट देवताएं भी होती हैं| इनका मुखिया है, पातालवासी बूढ़ा 'अल्लारा ओगोनयोर' अथवा 'अरसान दुओलाई'।

3. दयालू देवताओं में सबसे बड़ा 'उल्गेन'

4. दुष्ट देवताओं में सबसे बड़ा 'एरलिक'।

पश्चिमी बुर्यातों में देवताओं से संबधित कल्पनाएं इस प्रकार हैं-

आकाशवासी देवताएं हैं 'तेंग्रियों'। उनमें शुभ्रवर्ण या पश्चिमी देवताएं 55 है तो कृष्णवर्ण या पूर्वी की संख्या 44 है| दोनों में लगातार संघर्ष चलते रहता है| तेंग्रियों के मातहत उतने ही खान या राजा थे। यानि राजाओं को दर्जा देवताओं के समान बन गया है| इनके नीचे जायान, एझीन वगैरा पृथ्वी पर वास करने वाली प्रेतात्माएं होती हैं।

मनुष्य, केवल प्राकृतिक शक्तियों के प्रति अज्ञानवश उनमें अलौकिकता ढूँढने के स्तर से यहॉ आगे निकल आया है। अब उसकी मनोवृत्ति सामाजिक विभेदीकरण के अनुसार देवताओं के बिंब उभारने की ओर अग्रसर है। इस क्रम में अन्य दुनिया से संपर्क भी, अपनी उचित भूमिका निभाते हैं। कुछ-कुछ जनजातियों में विश्व स्रष्टाओं के पौराणिक चरित्र मिलते

हैं| लेकिन उनकी पूजा नहीं की जाती थी। न ही उन्हें भारी आदर के योग्य समझा जाता था। इसका उदाहरण है 'कमचात्का' में रहनेवाले 'इतुल्मेनो' का 'कुत्खु' नामक देवता|

<u>स्लाव जनजातियॉ</u> -

सभी स्लाव भाषाओं में पाया जाने वाला एक शब्द है 'बोग' । इसका मूल अर्थ है सुख और सफलता। इसी अर्थ को व्यक्त करने वाले या समानान्तर अन्य भाषाई शब्द है- इरानी 'बग', भारतीय भाषाओं में 'भग'। आगे इसी शब्द ने सफलता प्रदान करने वाले देवता के बिंब का रूप ले लिया ।

एक और सर्वस्लावभाषी शब्द है 'बेस' । मूलतः यह अलौकिक तत्व को दर्शाता है| लेकिन आगे स्लावों ने ईसाई मत अपना लेने के बाद, यह दुष्ट आत्मा या शैतान के अर्थ में रूपान्तरित हो गया। यह वास्तव में प्राकृतिक शक्तियों के प्रति भय को सूचित करने वाला बिंब है। इसी तरह अन्य कई पुराने देवी-देवताओं का ईसाई सन्तों के साथ विलय हो गया| उनसे संबंधित कल्पनाओं ने अपने व्यक्तित्व को बदल डाला। जैसे पैरून की पूजा इल्या देवदूत की पूजा में रूपांतरित हो गयी। लेकिन हर जगह शुद्ध पुरातन और शुद्ध नूतनीकृत ऐसा वर्गीकरण करना बड़ा कठिन काम है।

वैसे तो पूर्वी, पश्चिमी और दक्षिणी स्लावों के अपने-अपने अलग देवता थे। निश्चित रूप से सभी जगह पाया जाने वाले सामान्य देवता है ऊपर उल्लेखित 'पैरून'। स्लावों में शीत और मृत्यु के देवता भी थे। अन्य स्लावी देवी-देवता हैं-

<u>सूर्य देवता - स्वरोग या स्वरोझिन</u>

<u>दाझ्द्बोग-</u>

<u>खोर्स</u>

<u>रोद (गोत्र - गोत्र का संस्थापक)</u>

जर्मन जनजातियॉ और उनके देवता-

जर्मन जनजातियॉ और उनसे संबंधित देवता इस प्रकार-

1) मार्सों और उनसे संबंधित जनजातियों की इष्टदेवी- टानफाना

2) फ्रिजों की संरक्षिका - बाडुगेना

3) युटलैंड प्रायद्वीप की सात जनजातियों का संघ जिसे अपनी संरक्षिका मानता था वह देवी- नेर्टुस

जिसका मंदिर एक द्वीप पर बना हुआ था। - नेर्टुस

4) नगनरवाल जनजाति - शुगा देवता अल्कि

5) राइन के निचले भाग में रहने वाले लोगों की देवी इसका उल्लेख बहुत से चित्रों और शिलालेखों से प्राप्त हुआ है -नेगालेनिया

जर्मन जनजातियॉ इन देवताओं को एक तरह से अपने संरक्षक मानती थीं और उनकी पूजा करती थीं| फिर भी इन देवता-बिंबों में विभिन्न मूल तत्वों की छाप मिलती है। इस प्रक्रिया में कुछ बिंब तो काफी जटिल और अस्पष्ट बन गए। ऐसा ही एक देवता बिंब है 'वोडान' का। अन्तर्जनजातीय युद्धों के युग में वोडान/ओडिन, देव मंडली में उभर कर सर्वोच्च स्थान पर आ गया। **मूलतः ओडिन यह उत्तरी जर्मन जनजातियों में युद्ध का देवता था। साथ-साथ उसे पवित्र जादुई संकेतों का जानकार भी समझा जाता था। यह देवता युद्धों में रत जनजातियों में अधिक पूज्य माना जाने लगा।** स्वीडन जैसे जगह बड़े शिकारी को ओडेन नाम से पुकारा जाता है।

इसी तरह दक्षिण जनजातियों का देवता 'वुओटान' है। यह आंधी और तूफान का देवता माना जाता है| साथ-साथ वह पाताललोक का राजा है, तो आत्माओं का सारथी भी है। मनुष्य के मन के साथ भी इसका संबंध कल्पित किया गया है। उसे आत्मिक क्रियाकलाप, बैचेनी और विक्षिप्तपन का देवता भी समझा जाता है। उसे ही मृतकों का देवता भी संबोधा गया है| यानि एक ओर उसका संबंध प्राकृतिक घटनाओं से जोड़ा गया है तो दूसरी ओर मनुष्य की मानसिक क्रिया-कलापों से भी| वह विनाश से संबंधित भी है। इन सारे बिंबो में एक सामान्य बात है और वह अशांति।

कुछ अन्य देवता और पौराणिक बिंब हैं-

टिऊ- शुभ्र आकाश का देवता।

तीन बहनें : उर्द, वेर्डीडी स्कूल्ड
| | |
भूत वर्तमान भविष्य

विश्व वृक्ष : ऐश का वृक्ष इग्गद्रासिल ।

लोकी : अग्निदेव लेकिन यह कपटी स्वभाव का है।

प्राचीन जर्मन पुराणाख्यानों के मिथकों का मुख्य स्रोत 'बड़ी एड्डा' नाम का एक काव्य संकलन है। ऐसा माना जाता है कि उसे सेमुंड सिगफुस्सन नाम के व्यक्ति द्वारा 11-12 वीं सदी में संपादित किया गया है| इसमें जो कुछ मिथक दर्ज हैं उनके अनुसार देवताओं के

शासन के पहले विराट काया वाले दानव 'योटून' थे। इसमें देवों-दानवों और एक भिन्न नस्ल के देवताओं 'वानों' के बीच युद्ध का उल्लेख मिलता है। ये वान भिन्न नृजातीय लोग हो सकते हैं।

दुष्ट शक्तियों का भी उल्लेख है, जैसे स्कैंडिनावी मिथकों में। इन्हें प्राचीन दानवों की सन्तानें समझा जाता था। कुछ बिंब इस प्रकार हैं-

बृहदाकार भेड़िया फ्रेनरिर

विराटकाय नाग फाफनिश

अंधकार, मृत्यु तथा पाताललोक की देवी हेलू।

दानवों में से एक 'इमीर' को मारकर इसके शरीर से आकाश और पृथ्वी का निर्माण किया गया है। इस मृत इमीर के शव के अन्दर छिपे किड़ों से उत्पन्न हुए काले बौने अल्फ। **दुष्ट शक्तियों से देवता और वीर पुरूष निरन्तर संघर्ष करते रहते हैं ।**

जैसा कि इतिहास में कई जगह हुआ है, जर्मनों में भी एक सामान्य देव मंडल का निर्माण होने के पीछे अन्तर्जनजातीय एकीकरण की मंशा होने का प्रमुख कारण हो सकता है। रोमनों के विरूद्ध संघर्ष में इसको और गति मिली।

<u>केल्ट जनजातियॉ-</u>

शिलालेखों, चित्रों ओर रोमन लेखकों की रचनाओं से बहुत सारे प्राचीन केल्ट देवताओं के नाम मालूम होते हैं| इनमें अधिकतर स्थानीय और जनजातियों के संरक्षक माने गए देवता हैं| कइयों के नाम तो जनजातियों के नाम पर ही मिलते हैं।

<u>प्रकृति की शक्तियों, परिघटनाओं की ओर देखने की दृष्टि -</u>

हम उस समय की बात कर रहे हैं, या उन मानव समूहों की बात कर रहे हैं, जिनका प्रकृति की शक्तियों, परिघटनाओं के पीछे विद्यमान कारणों का ज्ञान लगभग शून्य था। न विज्ञान था, न वैज्ञानिक विश्लेषण। ऐसी स्थिति में मनुष्य की इन सारी बातों की ओर देखने की दृष्टि क्या थी, वह उन्हें किस रूप में लेता था, यह देखना मनोरंजक तो है ही, साथ-साथ इससे आज वैज्ञानिक ज्ञान के प्रकाश में उन कल्पनाओं का थोथापन स्पष्ट होने पर भी उनसे चिपके रहने की मनुष्य की मानसिकता कहां तक उचित है, यह सोचने का मौका भी मिल जाएगा।

इससे पहले हमने प्रकृति की शक्तियों और घटनाओं को प्रेतात्माओं से संबंधित करने का प्राचीन मानव का प्रयास देखा। अब कुछ और बातों को जानने की कोशिश करेंगे।

प्रकृति की शक्तियां, परिघटनाएं

एशिया-

अंदमान द्वीपों के आदिमवासी, तूफान और प्रचंड मानसूनी हवाओं की कभी पुरूष तो कभी स्त्री के रूप में कल्पना करते थे। मानसूनी हवाओं को 'पुलुगा' कहा जाता था।

उत्तरी जापान के 'होकाइडो' द्वीप की आदिम जनजाति 'आइनू' में प्रकृति की प्रचंड शक्तियों के प्रति श्रद्धा देखने को मिलती है।

अमेरिकी भूभाग

एस्किमों-

एस्किमो लोगों को अमूर्त अलौकिक शक्तियों में विश्वास है। इन अलौकिक शक्तियों का प्रकृति के कार्यकलापों और मनुष्य के जीवन पर भी नियंत्रण है ऐसा माना जाता था। इस प्रकार की धारणा को 'प्राणवाद'[1] कहा जाता है1 लेकिन इन विश्वासों की जडें जीवन से जुड़ी है और उनका उद्भव जीवन में व्याप्त अनिश्चितता और उस कारण जो भय है, उनमें हैं इतना निश्चित कहा जा सकता है।

(1:धर्म का इतिहास: तोकारेव पृष्ठ 78)

रेड इंडियन जनजातियॉ -

गोत्रीय विश्वास व्यापक रूप लेकर जनजातीय विश्वासों में रूपांतरित हो गए । उनमें प्राकृतिक शक्तियॉ, परिघटनाओं की पूजा पर बल दिया गया है।

सूर्य : बहुत सी जनजातियों में सर्वोच्च प्राकृतिक शक्ति के तौर पर सूर्य को माना गया है। विशेषतः प्रेअरीवासियों में 'सीअ' समुह, मुख्य वार्षिक पर्व ग्रीष्म में मनाता है। यह सूर्यनृत्य कहलाता है अर्थात् वह सूर्य को समर्पित है। अन्य कई जातियों में सूर्य नृत्य का बड़ा भारी महत्व है। वर्ष का आरंभ इसी क्षण से माना जाता है ।

अन्य पूज्य प्राकृतिक शक्तियॉ मानी जाती थीं चंद्रमा, वायु, जल, अग्नि, पृथ्वी और संबंधित विश्व। यहॉ महत्वपूर्ण बात यह है कि पूजा की वस्तु स्वयं प्रकृति का तत्व या प्राकृतिक शाक्ति थी, न कि उसके नियामक रूप में कोई अलौकिक तत्व या देवता। प्रकृति के चार तत्वों की पूजा अपने ठेठ रूप में प्रेअरी में रहनेवाले जनजातियों में मिलती है। ये तत्व है पृथ्वी, अग्नि, जल और वायु| प्रत्येक तत्व को एक निश्चित दिशा और वर्ण से जोड़ा जाता था।

तूकान	वाकिनयन	ताकुशकानश्कन	उन्केतेही
(पृथ्वी)	(अग्नि)	(वायु)	(जल)
उत्तर दिशा	पूर्व दिशा	दक्षिण दिशा	पश्चिम दिशा
नील वर्ण	रक्त वर्ण	कृष्ण वर्ण	पीत वर्ण

चार दिशाओं की ओर इंगित करने वाली दो रेखाएं एक क्रॉस बनाती हैं। इसलिए इंडियनों के अनुष्ठानों में क्रॉस प्रतीक का बड़ा महत्व था। उसकी चार भुजाएं उपरोक्त चार तत्वों का प्रतीक थीं। चार संख्या को भी बड़ा पवित्र माना जाता था।

<u>अफ्रीका-</u>

अफ्रीका में व्यापक रूप में कुछ देवताओं के बिंब मिलते हैं जो प्रकृति से संबंधित हैं| उदाहरणरूपी: पाताललोक के देवता, समुद्र के देवता, आकाशीय देवता। आकाशीय देवता अधिक चर्चित है| कहीं इस देवता को विश्व और मनुष्य का स्रष्टा समझने की ओर झुकाव है तो कहीं वृष्टि और तडित् उत्पन्न करने वाली प्राकृतिक शक्ति के रूप में। कहीं वह आकाश का मूर्त रूप है, लेकिन इस देवता की पूजा का प्रचलन नहीं है| पशुचारक और घुमन्तू, पूर्व अफ्रीकन जनजातियों में पूजा योग्य जो वस्तुएं हैं उनमें पर्वतों की चोटियॉ भी हैं।

<u>स्लाव जनजातियॉ</u>-

खेती, वन आदि से संबंध रखने वाले देवताओं का उल्लेख हमने पीछे किया है| प्रकृति से संबंधित स्लाव देवताओं से यहॉ हम परिचित होगें।

जल में रहने वाली रूसी देवता बोद्यानोई, पोलीश: तोपीलेक, वोद्निक चेक: वोद्निक

जलपरी रूसाल्का की कल्पना भी मिलती है| उसके विषय में विश्वास था कि वह आदमियों को लुभाकर पानी में खींचना और डुबोना पसंद करती है।

<u>जर्मन जनजातियॉ</u>-

इनमें प्रकृति की चीजों की पूजा करने का रिवाज था। ईसाई लेखकों ने इसका उल्लेख किया हैं। ये चीजें हैं- पवित्र पत्थर, पवित्र वृक्ष, पवित्र सोतें। 'टिऊ' नामक शुभ्र आकाश का देवता भी है।

<u>केल्ट जातियॉ-</u>

यहॉ भी प्रकृति से संबंधित देवता थे। नदियों और जलस्रोतों के भी अपने देवता थे।

<u>अग्नि</u>-

अग्नि ही शायद प्रकृति की वह शक्ति हो जिसे मनुष्य ने सर्वप्रथम अपने जीवन को सुविधाजनक बनाने के लिए सर्वाधिक उपयोग में लाया हो। इस कारण कई जनजातियों में अग्निपूजा आम बात थी।

<u>जापान-</u>

उत्तरी जापान के होकाइडो द्वीप पर रहने वाली छोटी सी जनजाति है 'आइनू'। यहॉ अग्नि की अग्निदेवी के रूप में कल्पना की गयी है। अग्निस्थल स्त्री का प्रतीक माना जाता है| घर के उत्तर-पूर्वी कोने में एक खास ढंग की चिकनी बनायी डंडी की प्रतिष्ठा की जाती है। इसे परिवार के मुख्य अलौकिक संरक्षक का दर्जा प्राप्त रहता है। यह पुरूष का प्रतीक माना जाता है। परिवारिक पूजाओं और कर्मकाण्डों में स्त्रियॉ हिस्सा नहीं लेतीं। वैसे तो इनकी जीवन पद्धति में आज भी मातृसत्ता के अनेक अवशेष शेष हैं। लेकिन उपरोक्त बात यह स्पष्ट करती है कि मातृसत्ता का जबर्दस्ती उन्मूलन किया गया था।

<u>मंगोलिया</u>-

मंगोलिया में भी अग्नि को शुद्धिकारी शक्ति माना जाता था। उसका विशेष महत्व था।

<u>अमेरिकी इण्डियन</u>

अमेरिकी इंडियन जनजातियों में जिन प्राकृतिक शक्तियों की पूजा की जाती थी उनमें एक अग्नि भी है।

उत्तरी एशिया

सायबेरिया की लगभग सभी जनजातियों में पारिवारिक या घर की अग्नि की पूजा की जता थी| इसमें थूंकना, कोई गंदी वस्तु फेंकना वर्जित था। अग्नि को खाने की वस्तुओं के टुकड़े, दूध आदि भेंट किए जाते थे। उससे प्रार्थना की जाती थी और संरक्षण मांगा जाता था| यहॉ हर कहीं पूजा स्त्रियों के हाथों में थी। यह मानों मातृसत्तात्मक गोत्र व्यवस्था का अवशेष हो। अग्नि की कल्पना स्त्री के रूप में की जाती थी। गिल्याकी लोगों के लिए वह अग्नि की बुढ़िया थी।

ननाई उसे मॉ कहते थे तो एवेंक दादी। अल्ताई उसे अग्निमाता कहते थे। एवेंको के यहॉ परिवार के भोजन शुरू करने से पहले गृहिणी सबसे स्वादिष्ट टुकड़े अग्नि को समर्पित करती थीं। **याकूतों और बूर्यातों में जो विकास की ऊँची सीढ़ी पर थे, घर की अग्नि की**

कल्पनाएं स्त्री के रूप में करने की जगह पुरूष रूप में की जाती थी। उसे अग्नि देवता कहा जाता था। चुचकाओं और कोर्याको लोगों के हर घर में मनुष्य की आकृति की आग पैदा करने में काम आने वाली लकड़ी की डंडियों को पवित्र वस्तुएं माना जाता था। उत्तरी स्कैंडिनेविया के और कोला द्वीप में रहने वाली लोपर जनजातियों में भी घर की अग्नि की पूजा की जाती थी। काकेशिया में घर की अग्नि को परिवार के एकत्व का भौतिक प्रतीक माना जाता था और उसकी पूजा की जाती थी। इंगुशों और ओसेतियों में घर की अग्नि और उससे संबंधित सभी चीजें पवित्र मानी जाती थीं। लेकिन स्वानों में घर की अग्नि की जगह विशेष बूर्ज में जलनेवाली अग्नि पवित्र समझा जाती थी। इसे दैनंदिन आवश्यकताओं के लिए नहीं तो विशेष पर्व या अनुष्ठानों के लिए उपयोग में लाया जाता था।

<u>जर्मन जनजातियॉ</u>-

जर्मन जनजातियों में भी पवित्र अग्नि की पूजा की जाती थी। ऐसा माना जाता था कि पवित्र अग्नि में शुद्धिकारी तथा चिकित्सीय गुण होते हैं। 'सूर्त्र' नामक अग्निलोक के स्वामी का उल्लेख मिलता है तो लोकी नामक अग्निदेव का भी। लेकिन लोकी कपटी स्वरूप का माना जाता था।

<u>आदिम जनजातियों में अप्राकृतिक शक्ति विषयक संकल्पनाएं-</u>

<u>मैलेनिशिया</u>

मेलोनिशियाई एक विशेष शक्ति को मानते थे। उसे वे 'माना' कहते थे। इस शक्ति का स्वरूप प्राकृतिक शक्तियों से भिन्न समझा जाता था। इसका स्रोत या तो कुछ प्रेतात्माओं को माना जाता था या फिर कुछ जिवन्त व्यक्तियों को जो ऐसी शक्ति से विशेष रूप से सम्पन्न होते थे। अब प्रश्न उभरता है कि ऐसी शक्ति के, मनुष्य पर प्रभाव का। यह मनुष्य का भला भी कर सकती है और उसे हानि भी पहुॅचा सकती है। इस शक्ति को मनुष्य के लाभ की ओर मोड़ने के लिए वह अलग-अलग क्रियाएं शुरू कर देता है। किसी व्यक्ति को सफलता मिलने पर उसे ऐसी शक्ति से युक्त माना जाता था। या ऐसी सफलता मिलने के लिए जो वस्तु सहायक होती है, उसे भी इस शक्ति से परिपूर्ण समझा जाता था। समझो कोई पत्थर जमीन में गाड़ने से फसल अच्छी हुई, तो सारा श्रेय उस पत्थर को जाता था। पत्थर उस अलौकिक शक्ति से युक्त माना जाता था। इस पत्थर के संपर्क में कोई दूसरा पत्थर रखने से ऐसा माना जाता था कि वह शक्ति उस दूसरे पत्थर में भी अंतरित हो जाएगी। इन कल्पनाओं का तार्किक आधार पर परीक्षण करने में कोई अर्थ नहीं। यहॉ शक्ति का स्वरूप तो अलौकिक है लेकिन उसके अंतरण का स्वरूप शुद्ध भौतिक है। अब इस सारे मामले पर गहराई से विचार करने पर ऐसा स्पष्ट होता है कि इसके उद्गम का कारण निम्न कारणों में से कोई हो सकता है-

1) अज्ञान

2) विशेषाधिकार भोगी लोगों द्वारा अपने कृत्यों को उचित ठहराने और अपनी श्रेष्ठता को बनाए रखने के लिए ऐसी कल्पना को सामने रखना या उसका थोथापन सिद्ध होने पर भी उसको जानबूझकर जारी रखने का प्रयत्न करना ।

<u>कॅलिफोर्निया</u>-

कॅलिफोर्निया में एक प्रथा थी, विशेषकर उसके दक्षिणी भाग में। स्थानीय वनस्पति से एक विशेष पेय तैयार किया जाता था। उसे मनुष्य, पूरे जीवन में केवल एक ही बार पी सकता था। इसके पीने से वह नशे की अवस्था में पहुॅच जाता था। इस अवस्था में उसे जो वस्तुएं दिखने की अनुभूति होती थी वे उसके लिए आगे के जीवन में पूजनीय वस्तु बन जातीं ।

<u>अमेरिकी इंडियन जनजातियां</u>-

अधिकांशतः जनजातियों में एक अलौकिक तत्व में विश्वास किया जाता था। इस तत्व का भौतिक विश्व से कोई सारोकार नहीं| लेकिन फिर भी ऐसा माना जाता था कि इसका मनुष्य के साथ निकट का संबंध है। इस अलौकिक शक्ति की मेहरबानी प्राप्त करने के लिए यहॉ भी कई-कई क्रियाकलापों का अस्तित्व था। जैसे पूजा, प्रार्थना, उपवास और आत्मपीड़न आदि-आदि ।

<u>जनजातियों में अलौकिक शक्तियों का मूर्तिकरण -</u>

पोलिनेशिया में जनजातियॉ लकड़ी और पत्थर की मूर्तियॉ बनाने लगे थे। लेकिन उनकी आकृति मनुष्य आकृति से भिन्न नहीं थी।

अमेरिकी इंडियनों के विश्वासों में अलौकिक मान्यताओं का मूर्तिकरण अपेक्षाकृत कम पाया जाता है| इन कल्पनाओं में प्रधानता अमूर्त शक्तियों से संबधित मान्यताओं की ही मिलती है। इंडियन प्रेतात्माओं और देवताओं में भी मानवात्वारोपण लगभग नहीं करते। इसी कारण वहॉ आत्माओं और देवताओं की मूर्तियॉ या चित्र नहीं मिलते। परिणामतः स्थायी मंदिरों और पवित्र स्थलों का निर्माण भी नहीं होता था।

दक्षिण अफ्रीका के बुशमैनों में जीव जन्तुओं के नाम पर रखे गए गोत्रों के नामों से टोटेमवाद के चिन्ह मिलते हैं| पहाड़ी चट्टानों पर अर्धपशु या अर्धमानव की आकृतियॉ मिलती हैं।

उत्तर एशिया-

सायबेरिया-

खांतियों, मंसियों और सेल्कूपों के यहॉ हर परिवार के अपने पवित्र संरक्षक होते थे, जिन्हें लकड़ी के पुतलों की शक्ल में बनाया जाता था।

काकेशिया में इंगुशों, ओसेतियों और कुछ जार्जियाई समूहों में गोत्र के संरक्षक (यह संरक्षक कुल का कोई भी पुरखा हो सकता था।) के सम्मान में पत्थर के स्मारक खड़े किये जाते थे। इसे 'सियेलिंग' कहा जाता था। इसके पास गोत्र के पर्व के अवसर पर प्रार्थना आयोजित की जाती थी। इसके अतिरिक्त हर समुदाय के अलग-अलग स्थानीय देवता होते थे। इनकी पूजा सामुदायिक तौर पर ही की जाती थी। यह पूजा पवित्र स्थल से जुडी होती थी। इंगुशों और ओसेतियों में यह स्थल कोई पुरानी इमारत होती थी या पवित्र वृक्षों का झुरमुट।

वोल्गा प्रदेश में हर परिवार की कोई संरक्षक या पवित्र वस्तु होती थी। इन्हें विशेष जगह रखा जाता था। जैसे उद्मूर्तों में भूर्म की छाल की पिटारी या अन्य कोई वस्तु। चुवाशों में स्त्री की आकृति की गुड़िया । हर परिवार इसके सम्मान में पूजापाठ करता था। और बलियॉ देता था।

प्राचीन स्लावों में भी पवित्र स्थान और बलि देने के स्थान होते थे।

जर्मन-

जर्मन मंदिरों या पूजागृहों का निर्माण नहीं करते थे। पूजास्थल का काम वनकुंजों से लिया जाता था। यहाँ वेदियॉ बनी होती थीं। इन पवित्र स्थानों की ही पूजा की जाती थी। यहीं अनुष्ठान किये जाते थे। हर जनजाति का अपना पवित्र कुंज होता था। वहॉ जनजाति की सभाएं भी होती थीं| स्रोत सामग्रियों में बुदावों, फ्रीजों और हेरुस्कों के पवित्र वनकुंजों का उल्लेख मिलता है। वहॉ प्रतिमाएं नहीं बनायी जाती थीं। ऐसा लगता है कही-कहीं लकड़ी के या झाडों के ठूंठों से ही मूर्तियों का काम लिया जाता था।

प्रकरण.आठ

अलौकिक शक्तियाँ : मध्यस्थ , विज्ञान

पुरोहिती

जनजातियों में पुरोहित-

हम मानव समाज के जिस काल का या समाज विकास के जिस स्तर का विचार कर रहे हैं, उस समय मानव ने अलौकिक शक्तियों के विषयक में जो कल्पनाएं कीं और उनकी अनुकंपा पाने के लिए उनके प्रति जो अनुष्ठान उस समय किये जाते थे, उन्हें देखा। लेकिन इस प्रक्रिया में क्या किसी मध्यस्थ की सहायता ली जाती थी| इसकी जानकारी लेना विषय की दृष्टि से आवश्यक है। अर्थात् क्या पुरोहितों की उपस्थिति शुरू से ही थी? कुछ जनजातियों में इनका आविर्भाव हम पाते हैं तो कुछ जनजातियों में इनका अस्तित्व नहीं मिलता|

प्राचीन तिब्बत की जनजातियों में पुरोहितों का अस्तित्व हमें मिलता है| यहॉ पुरोहित मुखौटे पहनकर नाचते हुए अनुष्ठान सम्पन्न करते थे। आगे चलकर यहीं प्रथा तिब्बती मंगोल बौद्ध धर्म ने भी अपना ली।

अधिकांश अफ्रीका जनजातियों में विभिन्न श्रेणियों के पुरोहित पाये जाते हैं। उन्हें मुख्यतः दो श्रेणियों में बांटा जाता था। उनमें एक सार्वजनिक राजकीय पूजा, अनुष्ठान करने वाले होते थे। ये पूजा स्थलों से संबद्ध होते थे। सामाजिक दृष्टि से वे शक्तिशाली होते थे।

काकेशिया में भी सामुदायिक पुरोहित होता था और समुदाय पर उसका भारी प्रभाव होता था। लेकिन वोल्गा प्रदेश में गोत्रीय पूजा-पाठ के लिए श्रेष्ठ व्यक्तियों से किसी को पुरोहित के तौर पर चुना जाता था।

जर्मन जनजातियों में भी पुरोहितों की भूमिका परिवारों और गोत्रों के प्रमुखों द्वारा निभाई जाती थी। रोमन सम्राट ज्यूलियस सीझर जर्मन जनजातियों से लड़ा था। उस वर्णन के अनुसार केल्टों और जर्मनों में मुख्य भेद हैं कि जर्मनों के यहॉ ड्रूइड या पुरोहितों की प्रथा नहीं थी। न ही बलि आदि का विशेष महत्व था। लेकिन रोमनों के साथ संघर्ष ने जर्मन समाज पद्धति को बड़ी तेजी से पार्श्व में ढकेल दिया और 'टेसिटस' के उल्लेख के अनुसार सीझर के कुछ डेढ सौ साल बाद ही, अति शक्तिशाली जर्मन पुरोहितों का वर्ग उभर आया। यहॉ तक कि कहीं-कहीं उनकी सत्ता राजा से भी अधिक देखने को मिलती है

केल्ट-

इनमें ड्रूइड या पुरोहितों का विशेष महत्व था। इसी कारण केल्टों के धर्मों को ड्रूइडवाद कहा जाता था। वे बलि देते थे। शकुन-अपशकुन बताते थे झांड-फूंक जादु-टोना करते थे। उन्हें गुप्त ज्ञान का रक्षक भी समझा जाता था।

मिथके

प्राचीन जनजातियों में सृष्टिरचना विषयक मिथके-

पोलीनेशिया में माओरी पुरोहितों द्वारा रचित सृष्टि उत्पत्ति विषयक जो मिथक मिलता है वह इस प्रकार है-

सृष्टि का आरंभ 'पू' से हुआ है| माओरी भाषा में पू का अर्थ जड होता है। उत्पत्ति के कुछ क्रमिक चरणों के बाद अवतीर्ण होता है 'कोरे'| यह शून्य का प्रतीक है। अर्थात् किसी निश्चित व्यवस्था का अभाव। कोरे से उत्पन्न हुआ 'पो'| यह अंधकार को व्यक्त करता है । पो (अंधकार) और आओ (प्रकाश) के मिलन से रांगी (आकाश) और पापा (पृथ्वी) इस युगल की उत्पत्ति हुई। आओ या प्रकाश उत्पत्ति विषयक कोई क्रमिक पूर्वपीठिका नहीं मिलती| उसकी उत्पत्ति और अस्तित्व विषयक कोई स्पष्ट कल्पना नहीं की गयी है। रांगी और पापा से सात सर्वोच्च देवताओं का जन्म हुआ। यानि देवताओं की सृष्टि उत्पत्ति के क्रमिक चरणों में एक चरण है। या हम कह सकते हैं कि सृष्टि की शक्तियों को देवताओं का रूप दिया गया है। इस समय सृष्टि उत्पत्ति विषयक वैज्ञानिक ज्ञान उपलब्ध नहीं था। ऊपर उल्लिखित देवताओं में कुछ महत्वपूर्ण देवताएं इस प्रकार हैं-

1 ताने : उसने एक दूसरे से आलिंगनबद्ध रांगी और पापा को एक दूसरे से अलग किया । वियोग के कारण दोनों रो पड़े। (मानव सुलभ भावनाओं का आरोपण) और सारा वातावरण भांप से भर गया। यानि यह देवता वायु मण्डल से संबंध रखता है। लेकिन साथ-साथ उसे पक्षियों, वृक्षों और सूर्य का देवता भी समझा गया था।

2 रांगो : चंद्रमा का पुरूष रूप।

3 तंगाराओं : समुद्र और मछलियों का देवता।

4 तू : मनुष्य का रचयिता (इसे आगे युद्ध का देवता भी माना गया) नाहिती द्वीप के रहिवासियों के लिए वह एक महान शिल्पी है। उसने पहले मनुष्य 'तीकी' को जन्म दिया। अर्थात् माओरियो का वह आदि पुरूष हो गया।

सात देवताओं से अगला सारा प्रपंच हुआ है।

अन्य द्वीपों पर मिलने वाले सृष्टि रचना विषयक मिथकों में कुछ भिन्नता देखने को मिलती है।

<u>कैलिफोर्निया</u>-

कैलिफोर्निया के इंडियनों में जो इस विषय का मिथक प्रचलित है उसमें सृष्टि निर्माता का वर्णन या तो मानवाकार रूप में मिलता है या फिर पशुओं जैसी आकृतिवाले रूप में।

<u>अफ्रीका-</u>

जहां तक विश्व निर्माण की कल्पना है, अफ्रीका में यह मिथक बहुत कम मिलते हैं| जीव, जन्तुओं और मनुष्य उत्पत्ति से संबंधित मिथक ज्यादा मिलते हैं। अधिकांशतः पृथ्वी, आकाश, सृष्टि आदि को अनादि समझा जाता था। जल, अग्नि जैसी कुछ चीजों की उत्पत्ति से संबंधित कुछ काल्पनिक कथाएं मिलती हैं। मनुष्य उत्पत्ति विषयक कथाएं कई तरह की हैं। कहीं यह उत्पत्ति, ईश्वर द्वारा सामान्य उपादान सामग्री से बतायी गयी है तो कहीं उनका अवतरण आकाश से तो कहीं पाताललोक से, गुफाओं से बताया गया है। जहां तक विश्व और मनुष्य के निर्माण की कल्पना है, उसमें भी चूंकि उसका मनुष्य के प्रत्यक्ष जीवन में दखल नहीं होता, इसलिए निष्क्रिय ईश्वर समझा जाता है और उसके प्रति किसी प्रार्थना या याचना को व्यर्थ| केवल कुछ जगह ही जैसे जुलू जनजाति में उसे आदि पूर्वज समझा जाता है और पितर पूजा से जोड़ा जाता है। वृक्षों को या मिथकीय पूर्वजों के अंगों को भी उनके उत्पत्ति का स्रोत समझा गया है।

जब उत्पत्ति की बात चल रही है तो मृत्यु पर भी कई कहानियॉ उपलब्ध हैं। अर्थात **मिथक भिन्न-भिन्न बातों की उत्पत्ति और नाश के विषय में व्यक्त अशास्त्रीय अभिव्यक्तियॉ हैं।**

<u>यूरोप-</u>

<u>जर्मन जनजातियॉ-</u>

प्राचीन जर्मनी के पुराणाख्यानों और मिथकों के प्रमुख स्रोत 'बडी एड्डा' काव्य संकलन में सृष्टि रचना विषयक मिथक मिलता है। जर्मनों के प्राचीन मिथकों के अनुसार देवताओं के शासन से पहले विराटकाय दानव योटून थे| ये शक्तिशाली प्राणी थे| देवताओं ने उनमें से 'इमीर' नामक प्राणी को मारकर उसके शरीर से आकाश और पृथ्वी का निर्माण किया। ऐश वृक्ष से पुरूषों का तो ऐल्डर से स्त्रियों का निर्माण किया। **देवता आस-आकाशीय आवास-आसगाई में रहने लगे। यह निवास भोग विलास के सभी साधनों से युक्त था।**

एड्डा के प्रथम गीत में, प्रलय सदृश्य मिथक भी मिलता है। एक समय आएगा जब सभी दुष्ट शक्तियॉ प्रबल होंगीं। उनसे लड़ते हुए सभी देवता और मनुष्य मारे जाएंगे। सारा विश्व अग्नि में भस्म हो जाएगा। लेकिन इस महाविनाश के बाद विश्व का पुनर्जन्म होगा। देवता और मनुष्य की नयी पीढ़ी का उदय होगा। यशस्वी 'बाल्डेर' मृतकों के राज्य से लौट जाएगा। **अर्थात् उर्वरता का देवता समझे जाने वाले बाल्डेर का पुनरुज्जीवन होगा।**

<u>अलौकिक शक्तियॉ और विज्ञान-</u>

भिन्न-भिन्न अलौकिक शक्तियों से संबंधित कल्पनाओं को हमने देखा। जगह-जगह उनके पीछे मानव का अज्ञान होने की टिप्पणियॉ भी कीं। लेकिन इस विषय पर चर्चा न करना कि क्या कभी इन सारी बातों की विश्वसनीयता-अविश्वसनीयता परखने के लिए जिसे हम वैज्ञानिक ढंग के प्रयोग कह सकते हैं, वे किए गए, विषय को अधूरा छोड़ना ही होगा।

सर्वप्रथम हम भूत, प्रेत, आत्माओं का मसला ही लेंगे। आधुनिक तकनीक का उपयोग कर भूतों का अस्तित्व सिद्ध करने का सबसे प्रसिद्ध प्रयास गॉस्ट हण्टर और हैरी प्राइस द्वारा किया गया ऐसा माना जाता है। इसमें उन्होंने स्टिल फोटोग्राफी का कैमरा, रिमोट कन्ट्रोल से चलने वाला मुव्ही कॅमरा, उंगलियों की छाप लेने वाला उपकरण तथा अन्य जॉचकर्ताओं से तुरन्त संपर्क स्थापित करने के लिए पोर्टेबुल टेलीफोन आदि उपयोग में लाए। अपने साथ और 48 लोगों को भी प्रयोग में सहायता के लिए लिया। जहॉ भूतों का अस्तित्व है, माना जाता था ऐसे एक 'बोर्ले रेक्टरी' नामक घर में अपना अड्डा जमाया। प्राइस ने मानो 40 वर्ष तक भूत साधना ही की। अपने निष्कर्ष 1940 में अपनी पुस्तक 'The Most haunted house in England ' में प्रकाशित किये । 1956 में तीन खोजकर्ताओं ने इस निष्कर्षों के विषय में गहन छानबीन की और अपना मत व्यक्त किया कि प्राइस ने भूतों के अस्तित्व सिद्धी संबंधित सबूत येनकेन प्रकारेण, कृत्रिम तरीकों से जुटाए हैं।

इस संबंध में 'स्पिरिट फोटोग्राफी' का हवाला भी दिया जाता है। कॅमरे से खींची गयी किसी फिल्म में यदि धोने के बाद, एक ऐसे व्यक्ति का चित्र उभर आए जिसकी तस्वीर खींची नहीं गयी थी तो उसे स्पिरिट फोटोग्राफी का नाम दिया जाता है। सन् 1860 में ही समझो स्पिरीट फोटोग्राफी का जन्म हो चुका था। लेकिन इस फोटोग्राफी के अधिकतर उदाहरण जालसाजी साबित हुए हैं। इसमें गुप्त लेंसों की सहायता लेकर डबल एक्सपोजर तकनीक आदि का सहारा लिया जाता है, ऐसा स्पष्ट हुआ है । इस संबंध में सबसे प्रामाणिक उदाहरण के तौर पर बताया जाता है कि विलियम मम्लर नामक फोटो ग्राफर ने जब मेरी टॉड लिंकन की तस्वीर खींची तो साथ में उनके स्वर्गीय राष्ट्रपति अब्राहन लिंकन का चित्र भी खींचा गया था। इस घटना के बाद भी 'स्पिरिट फोटोग्राफी' की विश्वसनीयता को निर्विवाद रूप से सिद्ध नहीं किया जा सका।

प्रेतग्रस्त घरों, पुराने तहखानों से आने वाली विचित्र डरावनी और भिन्न-भिन्न आवाजों, प्लेनचेट पर आत्माएं बुलाने के किस्सों, रहस्यमय रोशनियों, एकान्त जगह में घूमते भूतकाल के घुड़सवारों आदि भूतों का अस्तित्व अभी तक तथ्य के रूप में स्थापित नहीं हो पाया है।

विज्ञान की 'मनोरोग विज्ञान' नामक शाखा में इस समस्या का समाधान विषयक विचार किया गया है। इसके अनुसार भूत-प्रेत और आत्माएं, विविध अचेतन इच्छाओं, अपराध बोध तथा कल्पना शक्ति की उपज होती हैं।

आत्मा की बात हुई ही है तो पुनर्जन्म के विषय की ओर भी मुड़ जाए। पूर्वजन्म की याददाश्त विषयक किस्से भी बड़ी मात्रा में सुनने को मिलते हैं| वर्जीनिया विश्वविद्यालय अमेरिका के मनोरोग विभाग, परामनोविज्ञान संभाग के डायरेक्टर डॉ0 इयान स्टीवेंन्सन ने इस दिशा में काफी शोध कार्य किया है। उनके ही शब्दों में-

न हम कभी यह सिद्ध कर सकते हैं कि पुनर्जन्म नहीं होता और न ही हम उसके होने का प्रमाण ही दे सकते हैं। आज तक मैंने जिन मामलों की जांच की है उनमें कमियॉ थीं और कई में तो काफी गंभीर कमियॉ भी थीं। किसी एक मामले से या सभी मामलों से संयुक्त रूप से भी आज तक पुनर्जन्म का कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिल सका। हां, इन सभी मामलों में ऐसी घटनाएं और गवाहियॉ अवश्य मिलती हैं जो पुनर्जन्म की ओर इशारा करती हैं।

<u>रहस्यमय आधुनिक चिकित्सा विधियॉ</u> -

<u>साइकिक हीलिंग (Psychic Healing)</u>-

इसमें चिकित्सक अपनी मानसिक ऊर्जा अस्वस्थ व्यक्ति की ओर भेजता है तो हीलिंग प्रारम्भ हो जाती है। लेकिन यह ऊर्जा क्या है यह अभी तक प्रमाणित नहीं हो सका ।

<u>स्पर्श चिकित्सा</u>-

इस विधा की प्रमुख सिद्धान्तवेत्ता डॉ0 क्रिगर कहती है-

मुझे विश्वास हो चुका है कि हाथों के स्पर्श से रोग ठीक करने की प्राकृतिक शक्ति मनुष्य में है। इस प्रक्रिया के लिए आवश्यक शर्तें हैं कि चिकित्सक में रोगी की सहायता करने की इच्छा होना तथा स्वयं उसके शरीर का पूर्ण स्वस्थ होना। लेकिन वैद्यकशास्त्र आज भी इस जादुई स्पर्श के जैवरासायनिक प्रभावों से सहमत नहीं है।

<u>बायोफीडबैक प्रणाली</u>-

यह प्रणाली मरीजों को अपने शरीर की क्रियाओं का नियंत्रण कराना सिखाती है। इस प्रणाली के रहस्यमय विश्वास के अनुसार लोग यदि चाहे तो अपने शरीर का तापमान, रक्तचाप, पेशीय संकुचन तथा दिल की धड़कनों पर इच्छित काबू रख सकते हैं| **केंसास स्थित मेनिंगर फाउंडेशन ऑफ बायोफीडबैक की संस्थापिका एलिस ग्रीन और उनके पति डॉ0 एल्मर ग्रीन इस क्षेत्र के विशेषज्ञ हैं| उनका कहना है कि यह चिकित्सा व्यक्ति की शक्ति बढ़ा देती है। बायोफीड बॅक में जिस आत्मनियंत्रण की चर्चा की गयी है, वह भारत के योग पद्धति में अंतर्भूत है। लेकिन योग के विपरीत इस पद्धति का प्रशिक्षण समाप्त होते ही रोगियों में आत्मनियंत्रण की क्षमता कम हो जाती है। जबकि योगी जब चाहे तब अपनी विद्या का उपयोग कर सकता है।**

<u>मानसिक शक्ति के चमत्कार</u>-

टैलीपैथी –(Telepathy)

इसका अर्थ होता है, दूसरों के मन विचार पढना अथवा दो व्यक्तियों के बीच सीधा मानसिक संपर्क|

पूर्वज्ञान-(Precognition)

इसका अर्थ होता है कि मौजूदा ज्ञान की मदद न लेते हुए भविष्य की घटनाओं को जान लेना।

अतिंद्रिय दृष्टि(Clairvoyance)-

किसी घटना या वस्तु के विषय में किसी प्रत्यक्ष माध्यम के बिना जान लेना|

सायकोकाइनेसिस-

इसका अर्थ है बाह्य पदार्थ में मस्तिष्क की शक्ति द्वारा परिवर्तन लाने की क्षमता।

इन बातों पर पेरिस में चार्ल्स रिचेट, स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय में जान कूवर, हावर्ड विश्वविद्यालय में जॉर्ज ईस्टाब्रुक्स और विलियम मॅकडोगाल आदि ने प्रयोगशालाओं की नियंत्रित परिस्थितियों में शोध कार्य किया। लेकिन सबसे महत्वपूर्ण कार्य मनोविज्ञान के प्रोफेसर जे. बी. राइने का है| उन्होंने 1934 में 'Extra SensaryPerception' नामक पुस्तक लिखी। इसकी विश्व भर के वैज्ञानिकों ने आलोचना की। वैज्ञानिकों का मत था कि चमत्कारिक मानसिक शक्ति पर विश्वास करते हुए नहीं या उसे गृहीत लेकर नहीं तो उसके

प्रति अविश्वास के आधार पर और स्थापित प्रकियाओं के द्वारा इन बातों की व्याख्या की जानी चाहिए। राइने की तरीकों में वैज्ञानिकों ने कई अनियमितताएं खोज निकालीं।

इन मानसिक अनुभवों के विषय में कहा जाए तो ये व्यक्तिगत होते हैं और वे अपने पीछे कोई जीवाश्म जैसी वास्तविकता नहीं छोड़ जाते ताकि उनकी सत्यता को परखा जाए। प्रत्यक्ष राइने ने जब स्वयं अपने प्रयोग दोहराये तो मिश्रित परिणाम प्राप्त हुए न कि पहले जैसे। विज्ञान तो प्रयोग दोहराने पर समान परिणाम की अपेक्षा रखेगा। उसी तरह वह अपेक्षा रखेगा कि मांग की जाने पर इस शक्ति का दावा करने वाली व्यक्ति इसका प्रदर्शन करें। इसमें किन्तु-परन्तु की कोई गुंजाइश न **हो। जब तक इन क्रियाओं का कोई तर्कसंगत सिद्धान्त प्रस्तुत नहीं किया जाता तब तक विज्ञान इसे मान्यता नहीं दे सकता।**

इस तरह की शक्ति की वकालत करने वालों का दावा है कि यह शक्ति मनुष्यों में ही नहीं, पशुओं में भी होती है। पशु खतरे को, मौसमी परिवर्तनों को भाप लेते हैं और उस आधार पर आचरण करते हैं। काफी दूर के अपने मालिक को खोज निकालने की क्षमता का कारण भी उनमें होने वाली टैलिपॅथी की शक्ति ही है।

प्रकरण : नऊ

सारांश

उपरोक्त वर्णन का सार यही है कि प्रकृति विषयक अज्ञान, प्रकृति की अनुकंपा की आकांक्षाएं, उसके प्रति अपनी अगतिकता के कारण प्रकृति से याचना और इस याचना को व्यावहारिक रूप देने के लिए भिन्न-भिन्न ढंग के अनुष्ठान, यहीं आदिम मनुष्य के धार्मिक कल्पनाओं का रूप था। इन सबके लिए कोई विशेष वैज्ञानिक आधार नहीं मिलता। भौतिक उत्पादन की तथा सामाजिक जीवन की परिस्थितियॉ और धार्मिक मान्यताएं एक दूसरे में प्रतिबिंबित होती हुई दिखाई देती हैं। आगे इन कल्पनाओं का, मिथकों का, मनुष्य ने स्वार्थवश उपयोग जारी रखा। आराधना का तत्व, पूजा-प्रार्थना का स्वरूप, पूजा स्थलों और पुजारियों का अस्तित्व इनका भी क्रमिक विकास होता गया यहीं दिखायी देता है। जहॉ तक अनुष्ठानों का सवाल है, उसमें भी अमुलाग्र भिन्नता दिखायी देती हैं| कहीं बलि का विशेष महत्व था, जैसे केल्टों में नरबलि तक दी जाती थी तो प्राचीन जर्मनों में बलि आदि का विशेष महत्व नहीं था। कहीं बलि प्रथा के स्थान पर स्वयं को यंत्रणा देने की प्रथा भी पायी जाती थी। इसके लिए कहीं-कहीं नृशंस तरीके इस्तेमाल किये जाते थे। अमेरिका के इंडियनों में मादक पदार्थों का सेवन भी धार्मिक कार्यकलापों में आता था। तंबाकू भी पूजा की वस्तु मानी जाती थी।

जहां तक पूर्वजों और प्रकृति के प्रति आदर आदि का सवाल है, आज जब ज्ञान का स्तर भी उन्नत है और मनुष्य का मानसिक स्तर भी उठा हुआ है तो इस अभिव्यक्ति के परिष्कृत रूप उपलब्ध हैं, ऐसी स्थिति में उन अवैज्ञानिक कर्मकांडों से चिपके रहना जिनका तार्किक आधार नहीं है, कहॉ तक उचित है।

धर्म के आदिम स्वरूप के बारे में यह टिप्पणी देखिए-

टोटमवाद, वस्तुपूजा आदि ही धर्म के विकास की पूर्ववर्ती मंजिलों का स्वरूप था। धर्म के वर्तमान रूप का आधार ईश्वर विषयक विचार है। लेकिन उपरोक्त पूर्ववर्ती मंजिलों में, आज विद्यमान ईश्वर विषयक विचारों का अस्तित्व नहीं मिलता। आदिम कालीन सामुदायिक प्रणाली के धराशायी होने, कबायली संघों के विकसित होने तथा वर्गों और राज्य का आविर्भाव होने की अवस्थाओं में कबायली और राजकीय ईश्वर के रूपों का जन्म हुआ।(दर्शनकोश:पृष्ठ90)

जो संसार में अलौकिक, वैज्ञानिक अन्वेषणातीत परिघटनाओं तथा शक्तियों के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं और उनके साथ अन्योन्यक्रिया में सक्षम व्यावहारिक विधियों का विशदीकरण करते हैं (जादू, प्रेतवाद) ऐसे मतों को गुहयविधा कहते हैं।(दर्शन कोश :पृष्ठ182)

उपरोक्त कल्पनाओं का मानव समाज के विकास में स्थान क्या है? इस विषय पर भी कई विद्वानों ने गंभीर चिंतन किया है, केवल मूर्खतापूर्ण बातें कहते हुए उनकी ओर से मुंह फेर लेना उचित नहीं।

मानवी संस्कृति की उत्पत्ति विषयक अनुसंधान कर्ता लबॉक के अनुसार निम्न श्रेणी के मानव समूहों में धर्म नहीं होता| जिसे हम धर्म समझते हैं वह जब प्रथम अवतीर्ण होता है उस समय उस धर्म की कल्पना हमारी कल्पना से एकदम ही भिन्न होती है| उसका धर्म उसके ऐहिक दुनियां का ही एक व्यवहार होता है| उसमें परलोक का संबंध नहीं होता। उसकी देवताएं अमर नहीं बल्कि मर्त्य होती हैं।(दी ओरिजिन ऑफ सिविलाइज़ेशन :जॉन लुबॉक)

कॉ0 एम.एन.राय के अनुसार वन्य मानव के गूढ़ विश्वासों का उद्‌गम भी उसके सहजप्रवृत्त बुद्‌धिवादित्व में है। अभाव से कुछ उत्पन्न नहीं हो सकता। हर बात के लिए कोई कारण अवश्य होता, यह विश्वास होना, यहीं वह बुद्‌धिवाद है। वन्य मानव के चित्त में यह विचार इतने स्पष्ट रूप में नहीं होता, इस कारण उसे सहज प्रवृत्त कहना यह मजबूरी है। यह बुद्‌धिवाद अस्पष्ट, संदिग्ध ऐसा भाव है| ये मौलिक भाव और कुछ नहीं बल्कि स्वयं-चलित शारीरिक प्रतिक्रियाएं हैं। प्रकृति बाह्य बातों पर या गूढ़ आध्यात्मिक शक्ति पर श्रद्‌धा होना और श्रद्‌धा का अर्थ श्रद्‌धेय बात के प्रति पूर्ण समर्पण यहीं मनुष्य स्वभाव का सार है| इसे अगर पूर्ण सत्य मान लिया जाए तो मानव अपनी वन्यावस्था से कभी भी बाहर नहीं आता।

(Reason, Romantioism,&Revolution : Volume i :M.N. ROY :page 28-33)

मानवी कल्पना ने प्रकृति में देवता स्थापित किये। प्रार्थनाएं, यज्ञ इनके माध्यम से उन्हें खुश करने के लिए आराधना की पद्‌धति शुरू की। यह कुछ बाद की अवस्था है। इसके पूर्व वन्य मानव की ऐसी श्रद्‌धा थी कि जादू के द्‌वारा वह, वहीं बात साध्य कर सकता है| फ्रेजर के अनुसार धर्म का उदय होने के पूर्व मानव जाति की उत्क्रांति में उसने जादू की विद्‌या का निर्माण कर लिया था। मनुष्य ने सौम्य, लहरी या शीघ्रकोपी देवताओं की प्रार्थना, यज्ञों द्‌वारा याचना करके उन्हें प्रसन्न कर लेने का प्रयत्न करने के पहले केवल मंत्र-तंत्रों की ताकत पर प्रकृति को वश में कर लेने की चेष्टा की। फ्रेजर ने यह दिखाने का प्रयत्न किया कि जादू की और विज्ञान की प्रकृति की ओर देखने की दृष्टियों में कितनी समानताएं हैं| दोनों का यह गृहीत है कि प्रकृति की घटनाएं, अपरिवर्तनीय ऐसे नियमों के कारण एक के पीछे एक घटित होती रहती हैं| वे मानुष अथवा अमानुष बाह्य शक्तियों के हस्तक्षेप के बिना ही होती रहती हैं| जादू के पीछे जो श्रद्‌धा है वह प्रकृति में अंतर्भूत सुव्यवस्था के प्रति है। इसी कारण जादू करने वाली व्यक्ति विशिष्ट परिणाम के लिए विशिष्ट क्रिया ही, श्रद्‌धा के साथ करता है। उसमें प्रकृति के व्यापार में चाहे जैसा हस्तक्षेप करने के लिए और सुव्यवस्था में व्यवधान उत्पन्न करने की स्वतंत्रता के लिए, कोई स्थान नहीं है। लेकिन जब उसके ध्यान

में आया कि जादू आदि द्वारा प्राकृतिक शाक्तियों पर काबू पाने का विश्वास फलिभूत नहीं हो रहा है, तो इस संभ्रमित मानव को लगा कि हमारे जैसे ही लेकिन हमसे कई गुना शक्तिशाली प्राणियों का अस्तित्व होना चाहिए, जो स्वयं अदृश्य रहते हुए प्रकृति को नियंत्रित करते हैं। इन प्राणियों, देवताओं की ओर वह प्रकृति के घटक रूप में ही देखता था। मनुष्य का ध्येय था शक्ति और मुक्ति। मुक्ति, असुविधाओं से मुक्ति, परेशानियों से मुक्ति। उसके लिए आवश्यकता थी शक्ति की। इस ध्येय का मानवी रूप यानि देवता। यह निसर्गधर्म हुआ। जादू और निसर्गधर्म दोनों का अंततः गृहीत यही है कि निर्घृण प्राकृतिक शक्तियों की पकड़ से मनुष्य की मुक्तता करने का सामर्थ्य केवल आदमी के पास ही हो सकता है।

लेकिन एक अन्य मत का पुरस्कार करने वाले, अपने विचार प्रणाली को जादू से भी पहले का मानते हैं। वे ऐसा कहते हैं कि प्राथमिक मानव को निसर्गातीत शक्तियों पर जो विश्वास था वह सहजप्रवृत्त था। उनके अनुसार इसी से आगे धर्म का उद्भव हुआ। उनका युक्तिवाद, प्राणतत्व इस संकल्पना पर आधारित है। वन्य मानव, यह प्राणतत्व कुछ तो अव्यक्त ढंग का है ऐसा मानता था। इसे ही हम आज की भाषा में कह सकते हैं कि इसे आध्यात्मिक माना जाता था। इस मूर्तजीववाद से ही अशरीर आत्मा की कल्पना की उत्पत्ति हुई ऐसा माना जाता है। यही सूत्र आगे धर्म का मध्यवर्ती श्रद्धेय सूत्र बना। लेकिन क्या वास्तव में शुरू से ही प्राणतत्व को शरीर से भिन्न माना जाता था| हिब्रु, संस्कृत, ग्रीक, रोमन, स्लाव, अरबी सभी भाषाओं में आत्मा या चित् वाचक शब्दों का संबंध, जहॉ तक व्युत्पत्ति क्रम संबंध है, श्वास अर्थ के शब्दों से जोड़ा जाता है। यानि इस संबंध में मनुष्य की श्वसन क्रिया से तादाम्य रखने वाला एक वाष्पमय द्रव्य ऐसी ही कुछ धारणा थी। वैसा भी उसका मूल अर्थ जीव ऐसा है। इसका अर्थ यह हुआ कि मूर्तजीववाद की आत्मा, यह कल्पना जीवशास्त्रीय कल्पना हुई। इसी कारण ट्रायलर की दृष्टि से यह जंगली मनुष्य का तर्कशास्त्र है। इस क्षेत्र के सभी अधिकारीगण इसपर सहमत है कि मूर्तजीववाद यह प्राथमिक मानव के बुद्धिवादित्व की अभिव्यक्ति है। शरीरस्थ आत्मा की कल्पना केवल श्रद्धा की वस्तु नहीं थी तो अनुभव की निष्पत्ति थी। इस धर्म का बीज अगर इस वाद में हैं तो धर्म भी मूलतः बुद्धिप्रामाण्य है ऐसा क्यों न कहा जाए?

मानवी संस्कृति के शुरूआती दौर में ही अगर मनुष्य सहजगत ही विश्वशक्ति या जगतनिर्माता सर्वशक्तिमान ईश्वर की कल्पना से परिचित होता तो उसे प्राकृतिक घटनाओं के कारण कहीं अन्य ढूंढने की आवश्यकता ही न रहती और न ही करोड़ों देवताओं के बिंब उभर आते।

ऊपर कुछ बातों का उल्लेख हुआ है उन्हें हम पारिभाषिक दृष्टि से देखेंगे।

<u>जादू विद्या(Magic)</u>: मनुष्य अपनी प्राथमिक अवस्था में कल्पित अद्भुत शक्ति की सहायता से वस्तुओं और घटनाओं पर प्रभाव डालते हुए उन्हें अपने नियंत्रण में लेने की दृष्टि से मंत्र-तंत्र, अभिचार, जारण-मारण आदि जो क्रियाएं करता था उनसे संबंधित विद्या यानि जादू-विद्या| ऐसी क्रियाओं से अद्भुत शक्ति पर, गूढ़ तरह से नियंत्रण करते हुए उसे अपने इष्ट सिद्धि के लिए सक्रिय होने मजबूर किया जा सकता है, ऐसा विश्वास था| जादूगर यानि निसर्ग नियम ज्ञात होने वाला व्यक्ति और इस आधार पर उसमें यह क्षमता होती है कि भविष्य को जाने या निर्धारित करें|

मूर्तजीववाद (Animism): यह संज्ञा प्रसिद्ध मानवशास्त्रज्ञ ई.बी.टायलर ने प्रचार में लायी। प्राथमिक अवस्था से ही मनुष्य में ऐसी एक समझ प्रचलित है कि सृष्टि के हर वस्तु में या मूर्त वस्तु में प्राकृतिक ढंग से ही एक शक्ति या कहो आत्मा का अस्तित्व होता है। इस धारणा से ही मूर्तजीववाद यह संज्ञा अस्तित्व में आयी। इसके एक अन्य रूप में सभी वस्तुओं में स्थूल या सूक्ष्म रूप में आत्माओं का अस्तित्व होता है। वे अशरीरी व स्वतंत्र अवस्था में होते हैं| वे ही वस्तुओं की हलचल के प्रेरक होते हैं|

जडपूजन (Fetishism): गिनी वासी निग्रो, जादुई ढंग से मोह लेने के लिए अभिमंत्रित चीज का उपयोग करते हैं। इससे फेटिस (Fetis) यह शब्द चलन में आया। वन मानव अद्भुत शक्ति की कल्पना कर, अचेतन चीजों की पूजा करते हैं। उस वस्तु के अर्थ में यह शब्द चलन में आया। ऐसी वस्तु के पूजन को 'जड़पूजन' कहते हैं। जड़पूजन यह मूर्तजीववाद का ही एक रूप है| ऐसी कल्पना की जाती है कि पूरी प्रकृति में जीव या आत्मा होती है।

<u>निसर्ग धर्म (Natural Religion)</u>

प्रकृति से ही प्राप्त और प्रकृति से ही संबधित रहनेवाले धर्म को 'निसर्गधर्म' कहा गया है| इस धर्म में प्रकृति की शक्तियों पर देवत्वारोपण किया जाता है। वह, यह बात अमान्य करता है कि धर्म का उद्गम स्थान प्रकृति बाह्य होता है। हर बात के लिए कोई कारण होता है इसी विचार से निसर्गधर्म का उद्भव हुआ है।

"प्रकृति के प्रकाश में देवता तथा अपने कर्तव्यों का और तत्संबधित ज्ञान करा देने वाला धर्म।"

वॅटस ने इसकी ऐसी परिभाषा दी है।

अब हम अलौकिक शक्तियों की कल्पनाएं और घार्मिक कल्पनाओं की ओर मुड़ेंगे-

कालानुसार-

धर्म को शाश्वत बताने वाले : धर्म का अस्तित्व मनुष्य के प्रादुर्भाव के समय से ही था।

जानने के मार्ग - पुरातात्विक सामग्री

लेकिन उपरोक्त दावा इस कसौटी पर नहीं उतरता।

धार्मिक अवधारणाएं –

अमूर्त - शुरू में सामाजिक अस्तित्व के आदिम स्वरूप के कारण मनुष्य की चेतना सीधे-सीधे व्यवहार से जुड़ी हुई थी। (प्राचीनतम पूर्वजः पिथेकेंथ्रोपस और सिनेंथ्रोपस)

40 हजार वर्ष पूर्व तक : धर्म पूर्व काल - निएंडरथल मानव का काल

कई शवाधान प्राप्त हुए हैं जिसमें निएंडरथलों की खोपड़ियॉ या कंकाल दफन किए हुए थे।

फ्रांस में 'मुस्तए की गुफा' और शोपेल-ओ-से के समीप। उज्बेकिस्तान-तोशिक-तारा आदि।

इससे इतना ही अनुमान किया जा सकता है कि उनमें मृतक के प्रति किसी ढंग का लगाव था।

रेंगूर्दू (दार्दोन्ये, दक्षिणी फ्रांस) की गुफा में भालू की हड्डियॉ, निएंडरथली शवाधान के साथ मिली हैं।

पुरातत्ववेत्ताओं ने इनके विषय में व्यक्त की गयी संभावनाएं -

1 भालू पूजा की प्रथा के निशान|

2 टोटेमवाद (पशुओं से लोगों की अलौकिक सजातीयता में विश्वास के निशान।)

3 या महज संयोग

(40-18 हजार वर्ष पूर्व) उत्तर पुरापाषाण काल- विश्वसनीय भौतिक अवशेषों की संख्या बढ़ जाती है। आधुनिक किस्म के मानव का काल (होमोसेपिएंस) : पत्थरों और हड्डियों से परिष्कृत उपकरण बनाये जाने लगे। आखेट कर्म अधिक विकसित और उत्पादक होने लगा।

इस काल को कई चरणों में विभाजित किया जाता है-

अ) शुरू की काल की तरह, कई तरह की वस्तुओं और आभूषणों से युक्त कंकाल या खोपड़ियॉ शवाधानों से प्राप्त हुई हैं।

आ) आरिग्नेशी युग : इस काल से मूर्ति शिल्प तथा गुहाचित्र प्राप्त हुए हैं। उत्तरी स्पेन के सातंदरे प्रान्त में विख्यात अल्तामिरा गुफाए, एक शिकारी द्वारा 1863 में ही खोज ली गयी थी। इसमें जानवरों के बहुत सारे चित्र पाए गए । वे अति प्राचीन है। ऐसे चित्र और भी गुफाओं में मिले हैं। वेजेर नदी (फ्रांस) के तट पर स्थित लारस्सेल के पास की एक गुफा में एक अद्भुत स्त्री की मूर्ति मिली। स्त्री को एक सींग, आनुष्ठानिक मुद्रा में, ऊपर की ओर उठाते हुए दिखाया गया है।

इनमें पशुओं के चित्र तो अधिकांशतः यथार्थपरक है। लेकिन मनुष्यों के अधिकतर या तो पशुओं के मुखौटे पहने हुए या पशुमानवाकृतिक रूप में हैं। सर्वाधिक प्रसिद्ध चित्र एक नाचते हुए ओझा का है जिसकी लम्बी दाढ़ी है तथा उसने घोड़े जैसी पूंछ लगायी हुई है। सिर पर हिरन के सींग सजाए हुए हैं और कंधो पर किसी जानवर की खाल। एक गुफा में दीवार पर तीन नाचती हुई आकृतियॉ कुरेदी हुई हैं। वे दो टांगोवाली हैं लेकिन सिर पर सांभर के सिर की शक्ल के मुखौटे पहने हुए हैं।

(आस्ट्रेलियाई जनजातियों में पूर्वजों को आज भी ऐसे ही चित्रित किया जाता है)

उपरोक्त सामग्री से निम्न बहुत ही सामान्य अनुमान निकाले जा सकते हैं- उत्तरपुरापाषाण काल में निम्न ढंग की मान्यताओं का अन्तर्भाव हो चुका था.

1. मरने वाला मौत के बाद भी किसी न किसी रूप में जिन्दा रहता है, यही मान्यताएं आगे अविनाशी आत्मा की कल्पना की ओर ले जाती है।

2. किसी ढंग के अनुष्ठान का प्रादुर्भाव, जो हमें उपासना की ओर ले जाता है अर्थात् अतिमानवी अस्तित्व की ओर।

३ इस काल के अन्तिम यानि अजीली युग में पशुओं और मनुष्यों के चित्रण के स्थान पर आरेखीय शैली में बनायी गयी आकृतियॉ मिलती हैं।

पश्चिमी यूरोप में आरेग्निशी युग की कई स्त्री मूर्तियां प्राप्त हुई हैं|

नवपाषाण काल :कोई ७.५ हजार वर्ष पहले यूरोप और मध्यपूर्व के अधिकांश भागों में कृषि और पशुपालन में संक्रमरण। जनजातियॉ (कबीले) स्थायी (एकस्थानवासी) अथवा अर्धस्थायी हो, समुदाय बन चुके थे। इस काल की उपलब्ध पुरातात्विक सामग्री भी मुख्यतः शवाधानों तक ही सीमित है। हां, शवाधान बड़ी संख्या में पाए गए हैं।

शवाधान स्थलों में अस्थियों के साथ पायी गयी सामग्री में, आम उपयोग की वस्तुएं प्राप्त हुई हैं- जैसे आभूषण, हथियार, खाने-पीने की वस्तुओं से भरे बर्तन। **स्पष्टतः लोगों का विश्वास था कि मृतक को इन सबकी मरणोपरांत जीवन में आवश्यकता होगी ।**

इस काल के शवाधानों में मृतक को दफनाने के कई ढंग अपनाए गए हैं- जैसे;1) गुफा में (2) विशाल अनगढ़ पत्थरों से निर्मित समाधि (3) कृत्रिम गुफा में(4) पत्थर के ताबूत में(5) सीधे जमीन में गाड़ना। आगे धीर-धीरे मृतकों का दाह करने की पद्धति शुरू होती गयी। शुरू में इसका प्रसार उत्तरी फ्रांस, ब्रिटेन के भाग में अधिक हुआ। लेकिन इस प्रथा का पूर्ण भौतिकवादी स्पष्टीकरण अभी तक नहीं मिल सका है। कुछ विद्वान इस प्रथा का मूल प्राचीन लोगों के मरणोपरांत जीवन में विश्वास में मानते हैं। शव को जलाकर जैसे मानो आत्मा को शरीर से निकलने और मुक्त होने का रास्ता खुल जाता है।

इन शवाधानों में विशेषकर गुफाओं में पत्थर पर स्त्री आकृतियॉ तराशी हुई मिलती हैं। लघु एशिया के तटवर्ती भाग, एजियन द्वीप समूह, बाल्कन तथा पेरीनीज प्रायद्वीपों, फ्रांस, इंग्लैंड और स्कैडिनेव्हिया में, इस काल के संस्तरों में, पत्थर या मिट्टी की अनगढ़ स्त्री मूर्तियॉ और बर्तनों पर स्त्री की बनी हुई शक्लें मिलती हैं। तुलनात्मक दृष्टि से पुरुष मूर्तियॉ बहुत कम मिलती हैं| इससे लगता है नवपाषाणकाल में देवीपूजा का प्रचलन शुरू हो चुका था| लेकिन इस पूजा या उपासना का संबंध किस भौतिक वस्तुस्थिति से था, क्या उर्वरता से था?

<u>धातुयुग : कांस्य युग और लौह युग</u> :

इस युग की विपुल पुरातात्विक सामग्री उपलब्ध हुई है।

कांस्य युग में अंत्येष्टि संबंधी अनुष्ठान अधिक जटिल बने।

साधारण सदस्यों के शवाधान साधारण होते थे। तो कुछ-कुछ कब्रों में बहुत सारी मूल्यवान वस्तुएं, घोड़े, इतना ही नहीं तो कभी-कभी लोग भी गाड़े हुए प्राप्त हुए हैं। अर्थात् वे किसी प्रभावशाली व शक्तिशाली व्यक्तियों की कब्रें होनी चाहिए जैसे मुखियाओं की। इससे समाज का वर्गों में विभाजन होने की बात व्यक्त होती है।

इंग्लैंड की विल्टशायर काउंटी में 90 मीटर व्यास वाला विशाल वृत्ताकार महापाषाण समुच्चय (स्टोन हेंज) पाया गया है| इसके विभिन्न भागों की स्थिति से ऐसा प्रतीत होता है कि उसका सूर्य से या सूर्य गति से कोई संबंध है। स्मारक का मुख्य अक्ष उत्तरायण के प्रथम दिन जिस बिंदु से सूर्योदय होता है उसकी दिशा में लक्षित है। कुछ विद्वानों के अनुसार यह रचनाएं एक ढंग का सूर्य मंदिर है। जबकि अन्यों के अनुसार यह शवाधान के ऊपर बनाया गया स्मारक है। ऐसे ही महापाषाण स्मारकों के नीचे और भी शवाधान प्राप्त हुए हैं| यह

कांस्ययुग में सूर्योपासाना की ओर इंगित करता है और उसका संबंध भी उर्वरता से ही होना चाहिए। क्योंकि उर्वरता का मुख्य स्रोत सूर्य ही है। सूर्य को किरण सहित अथवा किरण रहित चक्र, मध्य में स्वस्तिक के चिन्ह वाले वृत्त, आदि के रूप में चित्रित किया जाता था। स्कैडिनेविया में एक ताम्र रथ मिला है, जिसमें घोड़े जुते हैं और सूर्य का चक्र बना हुआ है| स्पेन में ताम्र की एक मूर्ति मिली है, जिसके पैरों के नीचे और जिसके ऊपर चक्र बने हुए हैं। स्वीडन में पहियों पर खड़ा एक चक्र मिला है ।

भाग दो

देवताओं की ममियॉ (1)

प्रकरण एक

शहरी सभ्यता

शहरी सभ्यता का पुरातनतम अगुआ-

बाइबिल की 'बुक ऑफ जोशुआ' (Book of Joshua) में 'जेरिको' नाम के शहर का मिथकीय चित्रण किया गया है" जॉर्डन पार करने से पहले ही हजरत मूसा का निधन हो चुका था। मूसा के अनुयायी जोशुआ थे, जिन्होंने इजराईल के लोगों का रेगिस्तान पार करने में नेतृत्व किया। पश्चिम की ओर जानेवाले उनके रास्ते में ही जेरिको शहर था। इस शहर को आबादी के साथ जोशुआ के अनुयायियों ने ध्वस्त कर दिया।

आधुनिक शास्त्र में शहर की परिभाषा के लिए निम्न बातें आवश्यक हैंः-

1) स्थायी निवास

2) एक निश्चित आकार की बस्ती ।

3) उपयुक्त मात्रा में संसाधन तथा श्रमशक्ति की उपलब्धता ।

4) सार्वजनिक भवनों की रचना।

5) खाद्य के लिए आसपास के इलाकों पर निर्भर होना|

6) निवासियों द्वारा विशिष्ट कला-कौशल तथा आपसी रीति-रिवाज विकसित करना।

5000 वर्ष पूर्व के उर, उरूक, इरिडु, लागाश, निप्पुर आदि सुमेरी शहरों से ही सभ्यता या नागरी सभ्यता की शुरूआत हुई ऐसा हाल तक माना जाता था। इससे पहले का इतिहास लिखित अवस्था में उपलब्ध नहीं है।

लेकिन 1952-58 के बीच अंग्रेज पुरातत्वशास्त्री डॉ. कॅथलीन किनियन को 'टैल एस सुलतान' नामक पहाड़ी पर कुछ ऐसी दीवारें मिलीं जिनके विषय में किए गये परीक्षणों के आधार पर उनकी आयु ईसा से 7000 वर्ष पूर्व की आंकी गयी। इतिहास के अनुसार ईस्त्राइलियों के प्रसिद्ध संग्राम का समय 1400 से 1250 ई.पूर्व का है| अर्थात् जोशुआ ने जिस नगर को नष्ट किया वह पहले से ही 5000 वर्ष पुराना था। यह शहर जिस पहाड़ी पर स्थित था वह केवल 284 गज लम्बी तथा 175 गज चौड़ी है । ऐसा अनुमान है कि उस

समय यह शहर 10 एकड़ में फैला होगा और इसकी आबादी 2-3 हजार होगी। यहॉ मिट्टी की सुखायी गयी इटों द्वारा बनाए आयताकार घरों के खण्डहर मिले हैं। फर्श और दीवारों पर चुने की प्लास्टर के ढंग की परत भी मिली है| आज उपलब्ध जानकारी के आधार पर कहा जा सकता है कि यह दुनियॉ का सबसे पुराना नगर था| हाँ, आज के हिसाब से उसका आकार एकदम ही छोटा था।

लेकिन यहाँ के धार्मिक विश्वासों और रीति-रिवाजों के विषय में कोई ठोस जानकारी नहीं है।

1961 में एक अन्य ब्रिटिश पुरातत्वशास्त्री को तुर्की में अनतोलियन पठार के दक्षिण छोर पर ईसा से 6250 वर्ष पूर्व की बस्ती के अवशेष मिले। इसे एक महत्वपूर्ण पुरातात्विक खोज माना जा रहा है। इस बस्ती को 'कैटल ह्यू' नाम दिया गया है। इस बस्ती के विकास का कालावधि 6250 ई.पू. से 5400 ई.पू. आंका गया है। अभी तक इस शहर का केवल 492 गज लम्बा हिस्सा ही, एक टीला खोदकर निकाला गया है। अतः उसके पूरे आकार के बारे में निश्चित कुछ नहीं कहा जा सकता। लेकिन हो सकता है कि वहॉ की बस्ती 6000 से 10000 लोगों की हो। यहॉ के घरों में दरवाजे नहीं थे। घर एकदूसरे से जुड़े रहते थे और छत के रास्ते ही उनमें प्रवेश किया या बाहर निकला जा सकता था। शहर में सड़कें नहीं थी। लोग छतों पर ही चलते फिरते थे। छतों को लकड़ी की सीढ़ियों से आपस में जोड़ दिया गया था। आक्रमणकारी के आने पर सीढ़ियों को अपनी जगह से हटाया जा सकता था। आत्मरक्षा का यह प्रभावशाली तरीका था। अधिकांश घर दो कमरों के थे। ऐसा लगता है वहॉ कृषि की प्रधानता थी।

मातृदेवी इस शहर की सर्वोच्च पूजनीय देवी थी। समाज में महिलाओं का स्थान विशेष था| ऐसा लगता है यहॉ धार्मिक और कलात्मक जीवन के प्रमाण मिले हैं।

इसके बाद 1965 में युगोस्लाविया में दानुबे नदी के किनारे की गयी खुदाई में 'लेपीस्की वीर' नामक शहर खोज निकाला गया। इसकी आयु ई.पू. 5000 वर्ष आंकी गयी है। यहॉ के घरों का आकार तम्बुओं जैसा था। लकड़ी की दीवारों पर पशुओं की खाल छत्री समान तानकर ये घर बनाए गए थे। कहें तो झोपड़ियों का यह सुधारित रूप था। लेकिन चूना-पत्थर तथा बालुआ पत्थर का भी प्रयोग इनकी रचना में हुआ है। इस जगह ज्यादा से ज्यादा 200-300 लोग रहते होंगे। इस बस्ती की लम्बाई 185 गज और चौड़ाई 55 गज थी।

यहॉ चार ऐसे मकान मिले हैं जिन्हें मंदिर का नाम भी दिया जा सकता है| इससे अधिक विस्तार में यहॉ की धार्मिक रीतियों की जानकारी अभी नहीं है।

प्रकरण-दो

मेसोपोटामिया

यह वह भूभाग है जहां आज इराक विद्यमान है। पश्चिम एशिया का यह हिस्सा दजला और फरात की घाटियों से निर्मित था। मेसोपोटामिया के दक्षिणी भाग में और फारस इनकी खाड़ी के तटों पर बहुत प्राचीन काल में ही सुमेरी (शुमेर) नाम के कबीले बस गए थे। उनका मुख्य धंधा कृषि था। नहरों, जलाशयों और बांधों वाली सिंचाई प्रणालियों का इन्हींने सर्वप्रथम निर्माण किया था, इसके प्रमाण उपलब्ध हैं।[1]

सुमेरियन सभ्यता

कोई भी ऐसा ऐतिहासिक ग्रंथ उपलब्ध नहीं है जिसमें सुमेरियन सभ्यता का व्यवस्थित वर्णन उपलब्ध हो। उत्खनन में प्राप्त जानकारी से ही उस समाज के विषय में जाना जा सका है। मेसोपोटामिया में कृषि के लिए नदियों की धाराओं को नियंत्रित कर सिंचन की व्यवस्था की गयी थी। यहॉ कृषि के आधार पर एक सभ्यता विकसित हुई| इसके प्राचीनतम अवशेष ईसा पूर्व की चौथी सहस्त्राब्दि के हैं। इसके निर्माता मेसोपोटामिया के प्राचीनतम और सेमेटिक जातियों के वहॉ आगमन से पूर्व के निवासी थे। इस सभ्यता को सुमेरियन सभ्यता कहा जाता है। लेकिन उनके नृजातीय मूल के विषय में स्पष्ट जाना नहीं जा सका। मेसोपोटामिया ओर मिश्र में सभ्यताओं का विकास लगभग समान परिस्थितियों में और साथ-साथ हुआ। उनमें एक दूसरे के साथ धनिष्ठ संबंध कम होने पर भी समानताएं हैं। 3200 ई.पू. के इतिहास की जानकारी पौराणिक आख्यानों ओर विशाल संख्या में खुदाई के दौरान पाए गए लेखों से मिलती है| ये लेख मिट्टी की पट्टियों पर लिखे हैं| 3200 ई.पू. से सुमेर इतिहास की विधिवत जानकारी उपलब्ध है। प्राचीन सुमेरी समुदाय की खेतिहर इलाकों से घिरी छोटी-छोटी बस्तियॉ थीं। 3000 ई.पू. के दरम्यान सुमेर में छोटे-छोटे नगर राज्य थे। ऐसा कहा जाता हे कि ईटें बनाने की कला का आविर्भाव और कहीं नहीं हुआ। उसी तरह इस जाति ने किलाक्षर लिपि का विकास कर लिया था। सुमेरियन लिपि पश्चिम एशिया की प्राचीनतम ज्ञात लिपि है। इस कारण इसका विशेष महत्व है।

लगभग 2500 ई.पू. में 'अक्कादि' नाम के कबीलों का शासक, प्रतिभाशाली प्रशासनकर्ता और सैन्य नेता 'सरगोन प्रथम' था। वह इतिहास में पहला व्यक्ति था जिसने स्थायी सेना का निर्माण किया था।[2]

(1ध् 2 : संक्षिप्त विश्व इतिहास : पृष्ठ 28)

सुमेरियन देवता-

जैसा कि बताया गया है कि प्राचीन सुमेरी समाज यानि कृषिहर इलाकों से घिरी छोटी-छोटी बस्तियॉ थीं। हर समुदाय का अपना स्थानीय संरक्षक देवता था। 'लगश' नगर में संरक्षक देवता था 'निगिर्सू' । यह 'गिर्सू' नामक एक छोटी बस्ती का त्राता था। इस बस्ती का 'लगश' में विलय हो गया था। लगश में शामिल हुई एक अन्य बस्ती की संरक्षिका थी 'बाऊ' जब इन दो बस्तियों का एकीकरण हुआ तो यह माना जाने लगा कि बाऊ, निगिर्सू की पत्नी है| चौथी-तीसरी सहस्त्राब्दि ई.पू. में जिसे सुमेरी युग कहा जाता है, ऐसे कई एकीकरण हुए, जिसके फलस्वरूप ऐसे कई देवताओं के संयुक्त बिंब उभरे जिन्हें सुमेरियों के सामान्य देवता कहा जा सकता है। यानि देवताओं का जन्म सामाजिक बदलावों के साथ प्रत्यक्ष ढंग से जुड़ा हुआ था।

एकेश्वरवाद से बहुदेववाद

कुछ इतिहासकारों का मत है कि सुमेर के लोग आरम्भ में एकेश्वरवादी थे। लेकिन उपरोक्त बस्तियों के एक दूसरे में विलय के साथ देवताओं की संख्या बढती गयी और सुमेरी लोग बहुदेववाद में विश्वास करने लगे।

प्रमुख देवता

अन-

शुरू में यहॉ 'अन' को सर्वोच्च देवता माना जाता था। सुमेरी शब्द अन का अर्थ आकाश है| यहॉ प्रकृति की बातों का मानवीकरण करने की प्रवृत्ति दिखायी देती है| इसे ही बाबिलोनियन युग में 'अनु' कहा गया है| एरेक में इसका प्रसिद्ध मंदिर था। लेकिन 3000 ई.पू. तक इसका महत्व कम हो गया।

एनलिल

इस नाम की व्युत्पत्ति के विषय में विवाद है| कुछ विद्वानों के अनुसार वह सुमेरी शब्द 'लिल' (वायु, श्वास) से निकला है। (कहीं इसका अर्थ छाया या प्रेतात्मा भी होता है।) इसे वायु और वर्षा का देवता माना जाता था। पुरालेखों में एनलिल के लिए बाढ़ का राजा, भूमि का राजा, वायु का राजा आदि विशेषण भी उपयोग में लाए गए थे। वायुदेव का सबसे प्रसिद्ध मंदिर प्राचीन मेसोपोटामिया के एक नगर 'निप्पर' में था।

एआ

एआ की पूजा विशेषतः समुद्र तट के करीब रहनेवाले समुदाय करते थे। शायद यह मछुआरों का संरक्षक देवता था। उसे अर्ध मानव और अर्ध मत्स के रूप में चित्रित किया जाता था। इसके साथ ही उसे सांस्कृतिक नायक भी माना जाता था। मिथकों में, उसे अन्य देवताओं से मनुष्यों का रक्षण करने वाला भी बताया गया है।

देश के राजनीतिक एकीकरण के युग में उपरोक्त तीनों देवताओं की महान जातीय देवताओं के रूप में पूजा की जाती थी। अनु को अज्ञेय तथा सुदूर स्वर्ग का राजा, एनलिल को शक्तिशाली, भव्य तथा मृत्युलोक का राजा तथा एआ को संत माना जाता था| आगे मिथकों की रचना के साथ देवताओं में आपसी संबंध भी स्थापित किये गये।

सृष्टि रचना संबंधी कथा-

इन लोगों के मतानुसार आरम्भ में संसार में जल ही जल था। इस जल की कल्पना उन्होंने 'नम्मु देवी' के रूप में की है। उससे 'की' नाम की एक देवी और 'अन' नाम का एक देवता बना। इनके पश्चात् की ने एनलिल को जन्म दिया। एनलिल ने पृथ्वी, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा एवं अन्य ग्रहों को जन्म दिया। इस प्रकार एनलिल सृष्टि का सृजनकर्ता बना।

पृथ्वी को सुमेरियन लोग 'निम्माह' कहते थे।

एनलिल की पत्नी बनी 'अन्नता'। यह अनाज की देवी मानी जाती थी। एनलिल का सबसे बड़ा पुत्र 'सिन' यानि चन्द्रमा| निगिर्सू को भी एनलिल का पुत्र घोषित किया गया। शुरू में देवी ईन्निनी (इन्निना) सिन की पुत्री समझी जाती थी। बाद में उसे 'अनु' की पत्नी घोषित किया गया। यानि एक जगह वह एनलिल की पोती हुई तो दूसरी जगह मॉ। जब नए-नए काल्पनिक किस्से गढ़े जाते हैं तो ऐसी विसंगतियॉ उत्पन्न होना कोई अनहोनी बात नहीं है।

देवियॉ -

सुमेरियन लोगों का विश्वास था कि प्रत्येक देवता की एक पत्नी होती है। यह छाया की तरह उसके साथ रहती है। कुछ देवता और उनकी पत्नियॉ इस प्रकार हैं-

देवता	पत्नी	पुत्र
अनु	अनुता	बुल और मत
एआ	देवकिना	मार्दुक

मार्दुक सिनु बनित

नर्गल लॉज

<u>बाढ संबंधी कथा-</u> .

मानव के रक्षक देवता की यह कहानी है| एक बार देवताओं ने अप्रसन्न होकर सारी मानव जाति को नष्ट करना चाहा। सात दिनों तक समस्त पृथ्वी पानी में डूबी रही। लेकिन बाद में इससे देवता स्वयं व्याकुल हो उठे। एक मानव ने अपनी रक्षा के लिए एक देवता को प्रसन्न कर लिया। इस देवता ने मनुष्य को उसकी रक्षा की युक्ति बतायी। इस प्रकार मनुष्य की रक्षा हुई।

<u>कुछ और सुमेरियन देवता</u>.-

सुमेर की मिली एक त्रिमूर्ति में सिन (चंद्रमा), सन (सूर्य) और वृत्त (वायु) सम्मिलित हैं।

एक शमस नाम का देवता भी था जो और कोई नहीं प्रकाश का देवता सूर्य ही है।

कुछ सुमेर ग्रंथों में 'अप्सु' (जल) को समस्त सृष्टि का पिता और 'नियामत' को सबकी माता माना गया है।

सुमेरियन लोगों में यह भी विश्वास था कि इन समस्त देवताओं के ऊपर एक देवता है जिसको ये लोग 'इल' के नाम से पुकारते थे।

<u>मरदुक की कथा.-</u>

इस कथानक में 'नियामत' को जल दैत्य कहा गया है। 'मरदुक' ने जल दैत्य नियामत को हराकर जल के ऊपर धूल डालकर पृथ्वी का निर्माण किया। इसके पश्चात् उसने समुद्र से धरती को अलग करने के लिए बांध बनाया। नगरों आदि की व्यवस्था की। इस आख्यान से उस स्थिति का पता चलता है जब पूरे दक्षिण बेबिलोनिया में दलदल थी। सुमेरियनों ने इसे सुखाना शुरू किया। नदियों की बाढ़ को रोकना शुरू किया। बांध बनाने लगे। सिंचाई आदि के लिए नहरों को खोदना शुरू किया। इस आधार पर सुमेरियन ही वास्तव में मेसोपोटामिया की संस्कृति के आरंभिक निर्माता माने जा सकते हैं| सुमेरियन जल देवता को मानते थे। उसी का स्थान शायद आगे 'मरदुक' ने ले लिया। सुमेरियन आख्यानों में 'नियामत' नामक दैत्य को पराजित करने वाले जल देवता का उल्लेख है।

सृष्टि संबंधी अन्य एक कहानी में साहसहीन देवताओं पर मर्दूक की विजय का जिक्र है।

ग्रहों पर विश्वास.-

देवताओं के अतिरिक्त सुमेरियन लोग पांच ग्रहों पर भी विश्वास करते थे।

बार (शनि) यह योद्धाओं का देवता था।

बेल (बुध) यह न्याय का देवता था।

नरगल (मंगल) आखेट, आंधी, बुद्धि आदि का देवता|

नाना (शुक्र)

नेबो (बृहस्पति) ज्ञान और विज्ञान का देवता था।

तीसरी सहस्त्राब्दि ईसा पूर्व के मध्य में, सेमेटिक युग शुरू होता है। इस युग में सेमेटिक नाम वाले कई देवता प्रकट हुए । कभी-कभी पुराने सुमेरी देवताओं को ही सेमेटिक नाम दिए जाते थे। दीर्घकाल तक ये दोनों नाम प्रचलन में रहते थे। जैसा देवी इन्निना को इश्तर नाम से पुकारा जाने लगा। इसे ही अक्कादि, एश्तर, असेरियाई इस्तर और पश्चिमी सेमेटिक लोग अतर्त अथवा अस्तर्ता के नाम से जानते थे। निग्गिर्सू को निनुर्ता कहा जाने लगा।

<u>सुमेरियन देवताओं का स्वरूप-</u>

यहॉ देवताओं का मानवीकरण देखा जाता है। ये देवता मानवी गुणों से इतना ही नहीं तो मानवी वासनाओं से युक्त भी समझे जाते थे। केवल उन्हें अमर माना जाता था। इन देवताओं का निवास एक पर्वत पर माना जाता था।

देवता और उनकी शक्तियॉ हमेशा न्यायप्रिय होती हैं अतः उनके तथाकथित उपदेशों के पालन को हमेशा मनुष्य का कर्तव्य समझा जाता था। मनुष्य जीवन की सफलता देवताओं की दया पर निर्भर समझी जाती थी। इसके सिवाय और कोई बात मनुष्य का कल्याण नहीं कर सकती। देवता के नाम पर बहुत से झगड़े बिना दिक्कत मिटा लिए जाते थे।

<u>मूर्तीकरण-</u>

जैसा कि देवताओं के स्वरूप के विषय में बताया गया, यहॉ देवी-देवताओं की मूर्तियॉ शुरू में अधिकतर मानव आकृति की ही बनायी जाती थीं। यहॉ मिश्र की तरह पशु की आकृति की देव मूर्तियॉ नहीं मिलतीं। लेकिन इसका एक अपवाद है। वह है एआ की मूर्ति जो अर्द्धमानव और अर्द्धमत्स है।

मानवेतरजीव पूजा-

यहॉ टोटमवाद के लक्षण बहुत कम मिलते हैं। वृषभ, सर्प जैसे कुछ जीवों को पवित्र माना जाता था। पवित्र वृषभों को मानव शीर्ष सहित चित्रित किया जाता था। यह मिश्र की प्रथा के विपरीत है। मिश्र में देवतारूपी मानवेतर जीव को उसके सर और मानव धड़ के रूप में बनाया जाता था। लेकिन आम तौर पर कहे तो जीव पूजा का प्रचलन नहीं था।

दानव की कल्पना-

सुमेरियन लोगों का दानवों पर भी विश्वास था। दानवों की शक्ति देवताअें से कम मानी जाती थी| लेकिन फिर भी ये दानवीय शक्तियॉ मनुष्यों को बुरे रास्ते पर ले जाती हैं, ऐसा विश्वास था।

धर्म में राजाओं का स्थान-

जैसा कि पहले कहा गया है कि हर समुदाय का अपना स्थानीय देवता था। समुदाय का प्रमुख या राजा या सरदार उसका सेवक या पुरोहित होता था।

बाद में जो शासनात्मक प्रणाली अपनायी गयी उसमें राजा होने पर भी उसे वृद्धों की एक संसद के परामर्शनुसार शासन करना पड़ता था। एक ढंग से आरंभिक सुमेर में मर्यादित प्रजातंत्रात्मक प्रणाली को अपनाया गया था। इस आधार पर सुमेरियनों को प्रजातंत्र का जनक कहना चाहिए। लेकिन धीरे-धीरे यह भावना लुप्त होती गयी। राजा का प्रभुत्व बढ़ता गया। और उसे देवता का प्रतिनिधि माना जाने लगा। सुमेरियन काल में कानून और धर्म एक दूसरे से पूरी तरह सम्बद्ध थे। ई.पू. 3000 के दरम्यान नगर-राज्यों की जगह 'सारगौना' ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की। चूंकि राजा ईश्वर का प्रत्यक्ष प्रतिनिधि समझा जाने लगा| उसका हर कार्य उचित माना जाने लगा।

सुमेरियन मंदिर

सुमेर में बहुत बडे-बड़े मंदिर थे। प्रत्येक नगर में एक बहुत बड़ा देवालय होता था। यह नगर की हलचल का प्रमुख केंद्र होता था। इसे 'जिगुरत' कहा जाता था। ये मंदिर काफी ऊँचे होते थे। तथा सभी प्रकार के अन्न और धन-धान्य से भरे हुए रहते थे। मंदिरों के अवशेषों से सुमेरियनों के धर्म के विषय में काफी जानकारी प्राप्त हुई है।

जिगुरत का अर्थ होता हे स्वर्ग का पर्वत । ऐसा विश्वास किया जाता है कि सुमेरियनों ने अपने देवताओं के लिए पर्वताकार भवनों का निर्माण किया था और उसे वे जिगुरत कहते थे। इसमें सबसे महत्वपूर्ण भवन की चार या सात मंजिलें होती थीं। नीचे की मंजिल सबसे

लम्बी होती थी। ऊपर की मंजिलें क्रमशः छोटी होती जाती थीं। कुछ हद तक पिरमिड जैसी। इसकी चोटी पर देवता का स्थान होता था। इसके अन्दर पुजारियों के रहने की व्यवस्था भी होती थी। मंदिर के बाहर वेदियॉ होती थीं। यहॉ पर बलि दी जाती थी। उरनाम्मु का बनवाया हुआ जिगुरत बहुत प्रसिद्ध है।

ऐसा विश्वास किया जाता है कि जिगुरत की सात मंजिलें सात ग्रहों की होती थीं। उनके रंग भी भिन्न-भिन्न होते थे।

मंजिल	ग्रह	रंग
सबसे निचली मंजिल	शनि	काला
दूसरी मंजिल	बृहस्पति	नारंगी
तीसरी	मंगल	लाल
चौथी	सूर्य	इस पर सोने की चादर चढ़ी रहती थीं
पांचवीं	शुक्र	पीली ईटें
छठीं	बुध	नीला
सातवीं	चंद्रमा	चारों ओर चांदी से मढ़ी हुई।

ऊपर की मंजिल के बाहर भी वेदियॉ होती थीं| मंदिरों में ही न्यायालय होते थे। पुजारी ही न्यायाधीश का काम करते थे।

देवता की बड़ी जागीर या मंदिरों की सम्पत्ति का प्रबंधकर्ता 'एनसी' कहलाता था। ऐसा समझा जाता था कि यह देवता का प्रतिनिधि है और प्रत्येक कार्य देवता की आज्ञा से करता है।

<u>पुरोहित</u>-

मंदिर में एक पुरोहित होता था। मंदिरों के पुरोहितों में से एक को मुख्य पुरोहित या 'पटेसी' नियुक्त किया जाता था। उनका काफी प्रभाव होता था। सुमेरियन धर्म को पुरोहित प्रधान धर्म कहा जा सकता है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, पुजारी, न्यायाधीश का काम भी करते थे। पुरोहित काफी सम्मानित व्यक्ति समझे जाते थे।

मंदिरों में मुख्य पुरोहितों के अतिरिक्त तीन प्रकार अन्य पुरोहित होते थे।

1) गाने वाले

2) जादू करने वाले

3) भविष्य बताने वाले

<u>कर्मकांड -</u>..

सुमेरियनों का धर्म कर्मकाण्ड प्रधान था। देवताओं को प्रसन्न करने के मार्ग थे, मंत्र-तंत्र और कर्मकाण्ड की विधियॉ, उनके अनुसार धार्मिक अनुष्ठानों को करने वाला बुरा व्यक्ति भी अच्छा बन सकता है। ये लोग पूजा-पाठ पर विशेष ध्यान देते थे। लोग मक्खन, रोटी, घी, दूध, मदिरा आदि लेकर मंदिर में जाते थे। पुजारी उनकी ओर से पूजा करता था और देवता के 'भोग' लगाता था। लोग प्रसन्नतापूर्वक कन्या मंदिर को समर्पित कर देते थे। अधिकतर मंदिरों में रहने वाली देवदासियों के बच्चों को उच्च वर्ग के लोग गोद ले लेते थे। कर्मकाण्डों में ढोंग की मात्रा काफी होती थी। संक्षेप में यह माना जाता था कि मनुष्य यदि देवता की पूजा नहीं करेगा तो उसका कल्याण नहीं होगा।

<u>बलि की प्रथा.-</u>

उनका विश्वास था कि बलि देने वाला सदैव प्रसन्न रहता है| देवताओं को बलि चढ़ाई जाती थी और आशा की जाती थी कि देवता इससे प्रसन्न होकर मनुष्य का कल्याण करें। वृष्टि के देवता को सबसे अधिक बलि चढ़ाई जाती थी| इसका कारण कृषि व्यवसाय का प्रभुत्व ही हो सकता है।

<u>पाप पुण्य विषयक कल्पनाएं</u>– .

यहॉ के विश्वास के अनुसार मनुष्यों के अपने किए का फल इसी जन्म में मिल जाता है| इन लोगों के अनुसार पाप आठ प्रकार के होते हैं -

1) देवताओं के प्रति अविश्वास

2) झूठ बोलना

3) व्यभिचार करना

4) पड़ोसियों को धोखा देना

5) पड़ोसियों के साथ दुर्व्यवहार करना

6) लड़ाई करना

7) व्यवहार में बेईमानी करना

8) आपसी फूट फैलाना

पाप से छुटकारा पाने का साधन केवल मात्र देवता की आराधना करना था। मनुष्य को जीवन में सुख-दुख बराबर मिलता रहता है| इसे देवता की इच्छा समझना चाहिए और सदाचारमय जीवन जीना चाहिए| अनुशासित जीवन ही सर्वश्रेष्ठ जीवन है।

<u>मृतक संस्कार -</u>

सुमेरियन समाज में मृतक को दफनाया जाता था। साधारण मनुष्यों को दफनाने की विधि बहुत सरल थी। कब्र बनाकर उसमें मृतक को लिटा दिया जाता था। साथ ही रोजमर्रा के जीवन में उपयोग में आने वाली वस्तुएं रख दी जाती थीं। इसके पीछे के उद्देश्य की तलाश करना पेचीदा काम है । ऐसा माना जाता है कि उद्देश्य यही होना चाहिए कि मृतक को किसी प्रकार का कष्ट न हो। इससे अधिक वे मृतक की चिंता नहीं करते थे। हां, जहां तक राजाओं का प्रश्न है, इन वस्तुओं का परिमाण और स्वरूप राजाओं के अनुरूप होता था। उर की राजसमाधि की खुदाई में राजा के वस्त्र, आभूषण, उसकी दासियों और रानियों के अवशेष प्राप्त हुए हैं।

ऐसा भी कहा जाता है कि सुमेरियनों का विश्वास था कि अगर ये वस्तुएं नहीं रखी गयीं तो मृतक भूत बनकर सबको खा जाएगा।

<u>मृत्योपरांत नियति</u> -

सुमेरियनों के विश्वास के अनुसार हमारी आत्मा मृत्यु के उपरान्त 'शियोल' नामक स्थान में जाती है| यहॉ सर्वत्र अंधकार है। वहॉ सुख नाम की कोई चीज नहीं है। स्वर्ग जैसी समझी जानेवाली जगह केवल देवताओं के लिए ही है। वहॉ विरले ही मनुष्य पहुंच सकते हैं । लेकिन इसे स्वर्ग-नर्क की स्पष्ट कल्पना नहीं कह सकते। या अधिक स्पष्ट यानि बिल डयूराण्ट के अनुसार उन्होंने अभी तक स्वर्ग-नर्क की कल्पनाएं, ईश्वरीय पारितोषिक एवं दण्ड के रूप में नहीं की थी। अर्थात् पारलौकिक जीवन में तो उनका विश्वास था लेकिन उस जीवन को वे शुद्ध दुख:मय मानते थे। अर्थात् इस घर्म को निराशावादी ही कहना होगा। लेकिन क्या उनका पुनर्जन्म में विश्वास था| इस विषय में उपरोक्त आधार पर निश्चित कुछ नहीं कहा जा सकता।

उद्देश्य-

इससे एक बात स्पष्ट होती है कि उनके धर्म का उद्देश्य, पारलौकिक जीवन की चिंता के स्थान पर सांसारिक सुखों की प्राप्ति था। वे प्रार्थनाएं और बलि भी पारलौकिक

जीवन के लिए नहीं तो पृथ्वी पर लाभों के लिए करते थे। यह बात सुमेरियनों द्वारा अच्छे आचरण की वकालत में भी देखी जा सकती है।

सुमेरियनों की देन (धर्म विषयक)-

सुमेरियन जाति के विषय में 'बूली' लिखता है- "हजरत ईसा की दस आज्ञाओं की जड़ सुमेरी आज्ञाएं ही हैं । दसों आज्ञाएं ज्यों कि त्यों सुमेरी ग्रंथों से ली गयी हैं। आज का सारा ईसाई संसार सक्रिय रूप से नहीं तो कम से कम सिद्धान्त के तौर पर उसी को अपना आदर्श मानता है।

चिकित्साशास्त्र .

सुमेरियनों ने चिकित्साशास्त्र में विशेष उन्नति नहीं की थी। अधिकतर जादू-टोने द्वारा ही लोगों का इलाज किया जाता था। लेकिन वैद्यों के एक वर्ग का उदय हो चुका था। ई.पू. 2700 के लगभग एक प्रसिद्ध वैद्य था लुलु। ई.पू. 3000 वर्ष का एक शिलालेख मिला है जिसमें उस युग के प्रचलित वैद्यक नुक्से दिये गये हैं। उसे संसार की सबसे प्राचीन भेषज संहिता कहा जाता है। इसकी विशेषता यह है कि यह विशुद्ध रूप से चिकित्साशास्त्र से संबंधित है।

भूतप्रेत आदि -

कुछ सुमेरियन मंत्रों का उल्लेख प्राप्त हुआ है जो भूत भगाने के काम में लाए जाते थे। इसके लिए शायद कुछ कर्मकांड भी थे। एक पापी उडूग का उल्लेख मिलता है जो समस्त संसार को अपवित्र करता फिरता है।

प्रकरण :- तीन

बेबीलोनिया

2000 ई.पू. के कुछ पहले अक्काद पर अरब से अमोर कबीलों ने और सुमेर पर एलामियों ने हमले किए। जल्दी ही इन आक्रमणकारियों ने संपूर्ण मेसोपोटामिया घाटी को जीत लिया। इसके बाद अमीरों और एलामियों में संघर्ष छिड़ा। युद्ध का अन्त अमोर राजाओं के निर्णायक विजय और बेबीलोन नगर के उदय के साथ हुआ। यह जल्दी ही एक महत्वपूर्ण आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक केंद्र बन गया। जमीन के उपजाऊ होने के कारण यहां, आय का मुख्य साधन कृषि था। अन्य स्रोत था पशुपालन।1

1(संक्षिप्त विश्व इतिहास, पृष्ठ र28)

सुमेर के पतन के बाद 21 वीं शताब्दी ई.पू. में मेसोपोटामिया या आज जो इराक है, में एक नयी सभ्यता का आरम्भ हुआ। इसे 'बेबीलोनियन' सभ्यता के नाम से जाना जाता है। बेबीलोन एशिया का बहुत पुराना शहर था। यह बगदाद से लगभग 100 किमी दूरी पर था। पुराने बगदाद को तो अलिफ लैला की माया नगरी के तौर पर सभी जानते हैं| बेबीलोनियन इराक के एक प्राचीन साम्राज्य का नाम है। बेबीलोनियन राज्यवंश का संस्थापक 'समुअबुम' माना जाता है। इसका राज्यकाल 2225 ई.पू. का कहा जाता है। कई बार बेबीलोन का उत्थान और पतन हुआ। बेबीलोनियन सभ्यता के निर्माता सेमेटिक जाति के थे। खोजों के आधार पर यह स्थापित हुआ है कि केनान में अरब के मूल निवासी मध्य सागर के किनारी देशों होते हुए आये थे। वे, ईसा से लगभग तीन हजार वर्ष पूर्व वहॉ आए थे और उन्होंने भूमध्य सागर की अर्ध्य सभ्य जातियों को परास्त किया था। बेबीलोनियनों की जानकारी के साहित्यिक साधन उपलब्ध हैं। साथ ही कई अभिलेख भी प्राप्त हुए हैं| बेबीलोन के राजवंश का सबसे प्रतिभाशाली शासक 'हम्मुराबी' हुआ। उसका काल ई.पू. 2123 से 2081 माना जाता है।

यद्यपि भारत और मिश्र की तुलना में बेबीलोन की सभ्यता कम विकसित थी फिर भी वहीं से यूनान और रोम को गणित, ज्योतिष्य, चिकित्सा विज्ञान, व्याकरण कोश, इतिहास, पुरातत्व और दर्शन का ज्ञान मिला। इनके कानून रोम के कानूनों से सैंकड़ों वर्ष पुराने थे। आर्थिक क्षेत्र में जितनी अधिक प्रगति बेबीलोनियन युग में हुई उतनी अधिक सुमेरियन या असीरियन किसी भी युग में नहीं हुई। विज्ञान की विभिन्न शाखाओं के क्षेत्र में बेबीलोनियन काल में जो उन्नति हुई उसके विषय में अरस्तू ने कहा है 'मैंने बेबीलोनियनों की ज्ञान की नदी के किनारे ज्ञान का घूंट प्राप्त किया।'

प्राचीन बाबुल का प्रारंभिक विज्ञान, कृषि से धनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ था। सुमेरी युग में एक षाष्टिक गणन पद्धति अस्तित्व में आ चुकी थी जिसमें 360 अंशों के वृत्त के आधुनिक विभाजन का मूल था। प्राचीन काल में बेबीलोनियन भाषा और उनकी किलाक्षर लिपि ने अन्य देशों की भाषाओं और लिपियों को बहुत अधिक प्रभावित किया। मिस्री सम्राटों और हित्तियों ने उस लिपि को अपनाया। पश्चिम एशियन जातियों और यूनान पर यहां की भाषा, लिपि, साहित्य तथा राजनीतिक विचारधारा का प्रभाव पड़ा। असीरियन, यूनानी, हित्ती, यहूदी जातियॉ उनसे बहुत प्रभावित हुईं। हित्तियों और यहूदियों के माध्यम से बेबीलोनियन साहित्य का प्रभाव युनानियों तक पहुंचा। यूनानी राष्ट्रवीर हरक्युलिस का चरित्र गिल्गामेश के चरित्र से बहुत मिलता जुलता है। यूनानी देवी एक्रोडईट और उसके प्रेमी एडिनस की कथा बेबीलोनियन कथा का रूपांतरण मात्र ही प्रतीत होती है। देदालुम नामक इंजीनियर के पुत्र इकारोस की कथा और 'ऊटन' गड़रिए की कथा में काफी साम्य है। इस तरह इस सभ्यता का महत्व विश्व इतिहास में काफी है। फिर भी इस सभ्यता को उतनी उत्कृष्ट कोटी का नहीं माना जाता जितनी की भारत, मिस्र और चीन की सभ्यताएं थीं। नील ड्यूराण्ट ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है-

"बेबीलोनिया की सभ्यता मानवता के लिए उतनी अधिक उपयोगी नहीं थी जितनी मिस्र की। उसमें भारतीय सभ्यता की परिवर्तनशीलता और महानता और चीन की दृढ़ता और परिपक्वता न थी।"

बेबीलोनियन धर्म .

हम्मुराबी के नेतृत्व में जिस समय पश्चिमी सेमाइटों ने उन्नति करना आरंभ किया उस समय सुमेरियन धर्म और संस्कृति एक हजार वर्ष से भी अधिक पुरातन हो चुकी थी। इस कारण स्वाभाविक तौर पर उनकी पुरातन कल्पनाओं को शुरू में अपनाया गया। यह उत्तरी सेमाइटों के काल में हुआ था। उत्तरी सेमाइट, सुमेरियन देवताओं और धार्मिक साहित्य का सेमेटिक रूपांतर नहीं कर सके। परन्तु हेम्मुराबी के काल के पश्चिमी सेमाइटों ने इस कार्य को पूरा किया। इस युग में सुमेरियन साहित्य का सेमेटिक भाषा में अनुवाद किया गया। सुमेरियन और बेबीलोनिया धर्म एक दूसरे के साथ पूरी तरह घुलमिल गए। फिर भी पश्चिमी सेमाइटों के धर्म की कुछ विशेषताएं उभर आयीं ।

आम तौर पर कहा जाए तो बाबुली समाज में साहित्य से लेकर विज्ञान तक सभी क्षेत्रों में धार्मिक प्रभाव प्रबल था।

बेबीलोनियन देवता .

बेलोनियन धर्म मूर्ति पूजा प्रधान धर्म था। यहॉ अनेक देवी-देवताओं की पूजा होती थी। **ई.पू. नवीं शती में तो यहॉ के देवताओं की संख्या 65 हजार तक पहुँच गयी थी।**

सुमेरिया के देवताओं का सेमेटिक भाषा में नाम रखकर उन्हें अपना लिया गया।

सुमेरियन देवता	बेबीलोनियन देवता
बब्बर	शम्स (सूर्य)
नन्नर	सिन (चंद्र)
इनानी	इस्टर
ऐनलील	बाल (धरती)

सुमेर के देवताओं आदि में उच्च स्थान एनलिल को प्राप्त था। बेबीलोनिया युग में एनलिल देवता को 'बेल' नाम से पुकारा गया और उसका तादात्म्य सेमेइटों के प्रमुख देवता मर्दुक से किया गया।

ईस्तर देवी .

उर्वरता या कृषि देवताओं की पूजा .

मूल रूप से यह एक सेमेटिक देवी थी। उर्वरता की एक देवी का नाम 'इश्तर' था। यह सबसे मुख्य व्यवसाय कृषि यानि वनस्पतियों तथा उर्वरता के देवताओं की पूजा का प्रतीक था| उर्वरता की अन्य देवियों की तरह इश्तर में भी एक कामुक देवी के लक्षण थे। गिल्गेमिश की प्राचीन कथा में, उसका नायक इश्तर को रतिक्रिड़ा के बाद अपने प्रेमियों की निष्ठुरतापूर्वक हत्या कर डालने का ताना देता है। यहीं नाम एक सुमेरी नगर की संरक्षक देवी का भी था। लगता है आगे चलकर दोनों बिंब एकाकार हो गए। बेबीलोनियन काल में इसका महत्व काफी बढ़ गया। एरेक में इसका सुप्रसिद्ध मंदिर था। एक तरफ ईस्तर देवी सौंदर्य और प्रेम तथा मातृत्व की साक्षात प्रतिमूर्ति मानी जाने लगी तो दूसरी ओर वह युद्ध की भी देवी बन गयी।

इश्तर का पुरूष साथी 'तम्मुज' था। इसका भी संबंध वनस्पति जगत से था। एक मिथक में उसके मरकर पाताललोक में जाने और फिर पृथ्वी पर लौटने की कथा है। उसे जलदेवता 'अप्सु' का बेटा बताया गया है। उसका पूरा नाम 'दुमु-जी-अप्सू (अप्सू का वास्तविक बेटा) दिया हुआ है । मृत दुमुजी के शोक में स्त्रियां द्वारा विलाप किये जाने की

परंपरा थी। यह मुसलमानों की मोहर्रम की परम्परा जैसी ही थी। ग्रीष्म में (जून-जुलाई) एक पूरे मास तक दुमुजी की मृत्यु का शोक मनाया जाता था। इससे ऐसा लगता है कि वह कृषि का देवता था| उसकी मृत्यु और पुनर्जीवन की कल्पना में कृषि की प्रक्रिया का बिंब मिलता है। इसका मिस्त्री समरूप ओसिरिस की कथा है। इस मूल सेमेटिक देवता का महत्व भी ईस्तर के साथ-साथ बढ़ता गया।

यही कल्पना बेबीलोनिया के सर्वोच्च देवता मार्दुकष् के बारे में दोहराने का प्रयत्न किया गया है। एक लेख के अनुसार पाताललोक के द्वार पर मार्दुक (बेल) के मरने और उसकी पत्नी द्वारा उसे पुनजीर्वित करने का उल्लेख मिलता है।

सेमाइट 'तम्मुन' को 'एंडोन' अथवा 'एडोनाई' (यूनानी तथा लैटिन में एडोनिस) कहते थे। इसका अर्थ ईश्वर या प्रभू हैं। आगे चलकर उसकी पूजा का पश्चिमी एशिया में व्यापक प्रचलन हो गया। काफी बाद पूर्वी देशों में जल्दी उगने वाली वनस्पतियों के बाग लगाए जाने लगे। उन्हें एडोनिसी बाग कहा जाने लगा।

<u>मार्दूक-</u>

बेबीलोन के उत्कर्ष के समय से यानि ई.पू. दूसरी सहस्राब्दि आरंभ से बेबीलोन के संरक्षक मार्दूक को सर्वोच्च देवता माना जाने लगा। बेबीलोन के मंदिरों के पुरोहितों ने उसकी श्रेष्ठता स्थापित करने के उद्देश्य से कई मिथकों की रचना का भी प्रयत्न किया। इतना ही नहीं तो एक तरह के एकेश्वरवाद को स्थापित करने का भी प्रयत्न किया| इसके अनुसार यह स्थापित करने का प्रयत्न किया गया कि देवता एक ही है मार्दूक । अन्य सभी देवता उसकी विभिन्न अभिव्यक्तियां मात्र हैं। इसके पीछे केवल धार्मिक ही नहीं तो राजनीतिक केंद्रीकरण का ऐहिक कारण भी था। उस समय बेबीलोन पश्चिम एशिया में सबसे शक्तिशाली राज्य था । उदाहरणार्थ-

निनुर्ता - शक्ति का मार्दुक

नेर्गल - युद्ध का मार्दूक

एनलिल - सत्ता का मार्दूक

लेकिन पहले के देवी-देवताओं की पूजा भी जारी रही। बेल-मर्दूक की पत्नी बेलित भी मूलतः सेमेटिक देवी ही रही होगी। कालान्तर में अन्य देवताओं का महत्व कम तो हुआ लेकिन राजदरबार में मर्दुक की प्रधानता होने पर भी साधारण जनता सुमेरियन देवताओं को ही पूजती थी।

वैसे प्रारंभिक अवस्था में मर्दुक का संबंध भी एक तरह से कृषि के देवता से था। परंतु 'एनुमा एलिश' नामक रचना में उसे तूफान का देवता दिखाया गया जो पृथ्वी और आकाश को अलग करता है। जब बेबीलोन राजनीतिक और सांस्कृतिक केंद्र बना तो उसमें एनलिल का स्थान मर्दुक को दे दिया गया।

<u>शमस-</u>

सेमेटिक देवताओं में सूर्य देवता शमस का नाम भी उल्लेखनीय है। लारसा में उसका प्रसिद्ध मंदिर था। लारसा के प्राचीन देवता 'उतू शमस' जो सूर्य से संबंधित था सारे देश में पूजा जाने लगा था।

<u>ग्रह और देवता</u>-

ग्रहों को देवताओं के नामों से संबोधनों की बेबीलोनियन प्रथा ही युनानियों ने और उनसे बाद में रोमनों ने अपनायी। उर के देवता सिन की चंद्रमा से एकता स्थापित की गयी। नबू को बुध (मर्क्यूरी), इश्तर को शुक्र, मार्दूक को बृहस्पति और निनुर्ता को शनि का प्रतिरूप माना जाने लगा।

मासों के नाम भी देवताओं के नामों पर रखे गए। बेबीलोनी पुरोहित, कालखण्डों और दिक् के भागों के संख्यात्मक अनुपातों को पवित्र मानते थे। धर्म की खगोल से संबंधित पवित्र संख्याओं की इस बात का आगे यूरोपियनों के पंचाग निर्माण और काल गणना की द्वादशांक पध्दति पर प्रभाव पड़ा।

बेबीलोनियन काल में देवताओं का स्वरूप-

सुमेरियनों की भांति ही बेबीलोनियन भी अपने देवताओं को हांड-मांस का बना हुआ मानते थे। देवताओं की चेष्टाएँ और वासनाएँ भी मनुष्य जैसी ही होती हैं। वे खाते-पीते हैं और अपनी कामादि वासनाएं भी पूरी करते हैं । देवताओं को भी मनुष्य के जैसी भूख लगती है। वे रात में घूमकर स्त्रियों को सन्तान आदि प्रदान करते हैं। इसतरह की कल्पनाएं थीं।

<u>देवताओं के मंदिर</u> .

बेबीलोनिया में देवालय बहुत थे। प्रत्येक मंदिर का एक मुख्य देवता होता था। देवताओं की स्तुति के लिए मंदिर बनाए जाते थे। जिस तरह मनुष्य के घर और नौकर होते हैं उसी तरह देवताओं के मंदिर और उसमें पुजारी होते थे। ये मंदिर भी सामान्यतः सीढ़ीनुमा मीनार की शक्ल के होते थे और 'जिगुरत' ही कहलाते थे।

पुजारी-

सुमेरियन काल में पुजारी न्यायाधीश का कार्य करता था लेकिन हम्मुराबी ने इस व्यवस्था को समाप्त कर दिया। उसने राजकीय न्यायालयों की व्यवस्था की। लेकिन फिर भी समाज में पुजारियों का बहुत सम्मान था। उसका कारण था उनके कार्य जिसमें वे लिप्त होते थे। भूत-प्रेतों से बचने के लिए जादू-टोना ही एकमात्र साधन समझा जाता था। जादू-टोना में सफलता पूरी तरह पुजारियों की कृपा पर निर्भर थी। पुजारियों का एक वर्ग देवज्ञों का था, जो शकुन के विशेषज्ञ समझे जाते थे। देवज्ञ भेड़ को देवता के नाम से बलि चढ़ाते थे। ऐसा समझा जाता था की वह देवता, भेड़ के यकृत पर विशिष्ट चिन्ह द्वारा भविष्य का संकेत छोड़ देता है। इस संकेत को या चिन्हों को केवल देवज्ञ ही पढ़ सकते थे।

पुजारियों का एक और वर्ग भी था जो नक्षत्रों और ग्रहों के आधार पर राज्य के लिए शुभ और अशुभ फल बताता था। यही विद्या आगे चलकर ज्योतिष्य विद्या के नाम से प्रसिद्ध हुई ।

सुमेरियन युग में पुजारी ही प्रायः राजा बन जाते थे| परंतु बेबीलोनियन युग में सम्राटों ने पुजारियों के विशेषाधिकारों पर नियंत्रण किया। इस कारण यहॉ स्थिति यह थी कि पुजारी राजाओं के प्रतिद्वंद्वी नहीं थे। बल्कि वे राजा की पूजा का समर्थन करते थे। इसके बदले में राज्य की ओर से उनके विशेषाधिकारों की गारंटी दी जाती थी। (मिस्र में एक तरह से राजा और पुजारियों में काफी लम्बे समय तक प्रतिद्वंद्विता रही।) वे विशाल संपत्ति के स्वामी होते थे।

इस पद के लिए उम्मीदवार वही हो सकता था जिसमें कोई शारीरिक दोष नहीं होता था। यह शर्त कई और धर्मों में भी पायी जाती है|

ऊपर पुरोहितों के अतार्किक कार्यों का उल्लेख किया गया है। लेकिन यहॉ के पुरोहित वैज्ञानिकों का काम भी करते थे। यह बताए बिना बात पूरी नहीं होगी कि सिंचाई पर आधारित कृषि कार्यों के व्यवस्थित संचालन के लिए नदियों में आनेवाली मौसमी बाढ के समय का ठीक-ठीक अनुमान और उसके लिए ग्रहों-नक्षत्रों की गति का नियमित प्रेक्षण यह जीवन की भौतिक आवश्यकताएं थीं। क्योंकि जीवनयापन का महत्वपूर्ण साधन कृषि ही था। इसी कारण मिस्री खगोलशास्त्र जैसा ही बेबीलोनी खगोलशास्त्र का भी विकास हुआ। यह कार्य पुराहितों द्वारा ही किया जाता था। एक ढंग से इस सारे ज्ञान पर उनका एकाधिकार था। आकाश की ओर उन्मुख लेकिन जीवन के लिए अत्यावश्यक इस ज्ञान के कारण जीवन के लिए उनकी अनुकंपा आवश्यक समझी जाती थी| ऐसी देवी-देवताएं आकाशीय पिंड के साथ

व्यापक रूप से सम्बद्ध होने लगीं। या कहिए प्रकृति के आकाशीय घटनाओं में व्यक्तित्वारोपण के तत्वों को व्यापक स्वरूप प्राप्त हुआ।

पुजारियों के अतिरिक्त पुजारिनें भी होती थीं। ईश्वर की सेवा के लिए हिजड़ों को भी रखा जाता था।

<u>मंदिर परिचारिकाएं और पुजारिनें</u>-

मंदिरों में देवदासियॉ रखी जाती थीं। इन्हें स्वयं माता-पिता द्वारा मंदिरों को धन सहित अर्पित किया जाता था। इन देवदासियों को ब्रह्मश्चर्य व्रत का पालन करना पड़ता था। विवाहित स्त्री भी देवदासी बन सकती थी। लेकिन उसे पति से संबंध विच्छेद रखना होता था। देवदासी को यह स्वतंत्रता होती थी कि वह अपना पद त्याग दें। उसके उपरान्त वह विवाह कर सकती थी। इन्हें महापान से भी परहेज रखना पड़ता था। इसके उल्लंघन के लिए कठोर दंड दिया जाता था।

यूनानी इतिहासकार हेरोडोटस के उल्लेखों से ऐसा पता चलता है कि बाबुल में कुंआरी लड़कियॉ देवी को प्रसन्न करने के लिए अपने यौवन को लुटाती थीं। किसी न किसी आगन्तुक से जीवन में कम से कम एक बार सम्भोग करती थीं। विवाह के उपरान्त यहीं लड़कियॉ सामान्य कौटुंबिक जीवन व्यतीत करती थीं|

देवमंदिरों में वेश्यायें भी होती थीं। उन्हें पवित्र वेश्याएं कहा जाता था । जो देवालय की सम्पत्ति नहीं होती थी वे वेश्याएं अपवित्र होनी चाहिए। वे शराब के अड्डों आदि में रहती थी| **इस प्रकार यहां अवैध यौन संबंधों को धार्मिक रूप दिया गया था।**

देवताओं को खुश करने के लिए किये जाने वाले अनेक कर्मकांडों में एक पशुबलि भी था।

<u>राजा और घर्म</u>

बेबीलोन में देवपूजा के साथ-साथ राजा की पूजा भी होने लगी थी। उनकी मूर्तियाँ भी स्थापित होने लगी थीं| सुमेरवालों में कल्पना थी कि देवताएं किसी भी देवता को अपना राजा चुन सकती है जो आगे किसी नगर राज्य में अपने प्रतिनिधि के रूप में राजा को बनाती है। इस सिद्धान्त से राजनीतिक एकता को प्रोत्साहन मिला। हम्मुरावी को इसी आधार पर न्याय और व्यवस्था स्थापित करने में सहायता **मिली। साथ-साथ राज्य की उत्पत्ति को दैवीय आदेश के रूप में स्थापित करने में आसानी हुई।**

बेबीलोनियन लोग मानते थे कि राजा, देवताओं के समान ही पवित्र, दयालु, बुद्धिमान और न्यायप्रिय होता है। जनता में ज्योतिष-ज्ञान के प्रति आस्था बढ़ने से यह विश्वास भी बढ़ा कि संसार और जीवन भाग्यचक्र के बंधन में बड़ी कठोरता से बंधा हुआ है। अतः देवताओं का प्रतिनिधि राजा यदि कठोर है तो वह देवताओं की इच्छा से ही है। इससे भिन्न और कुछ हो ही नहीं सकता। **राजा की निरंकुशता को इस तरह दैवीय समर्थन का आधार प्राप्त हो गया।** हम्मुराबी के कानून वाले शिलापट्ट पर राजा शमस देवता के सामने खडा है और मानो उससे कानूनों का प्रारूप प्राप्त कर रहा है| अन्य चित्रों में भी उन्हें देवता के चित्र धारण किए हुए बताया जाता था| सारगोन के जमाने भी शासक, आकाशीय देवताओं से अपनी निकटता स्थापित करने में विशेष रुची रखते थे और अपने आप को देवताओं का प्रिय बताते थे|

<u>अन्य पूज्य वस्तुएं</u>-

बेबीलोन में स्थानीय नदियों और नहरों की आत्माओं से सम्बद्ध लोक विश्वास भी प्रचलित थे। मृतकों की आत्माओं के पूजन का रिवाज भी नष्ट नहीं हुआ था|

<u>मृतक संस्कार-</u>

यहॉ मृतकों को गाड़ा जाता था। शवों के साथ कब्रों में खाने-पाने आदि की सामग्री रखी जाती थी। उद्देश्य होता था मृतक आत्माएं परलोक में भूख-प्यास से तड़पती न रहें। यह विश्वास भी था कि अगर ऐसा नहीं किया गया तो इनकी तलाश में तड़पती आत्माएं परिवार जनों को परेशान कर सकती है। इसकी परिणति विभिन्न रोगों के फैलाव में हो सकती है। मृतकों को दफनाने के पहले नहलाया जाता था तथा उसको वस्त्रों, अलंकारों और सुगंधी द्रव्यों आदि से सज्जित किया जाता था। स्त्रियों के साथ श्रृंगार का समस्त सामान भी रखा जाता था ।

लेकिन यह विचार भी मिलता है कि मृत शरीर को किड़े चाट जाते हैं।

<u>मरणोपरांत जीवन-</u>

इसके विषय में कोई स्पष्ट कल्पना नहीं मिलती। लेकिन विश्वास किया जाता था कि मृत्यु के बाद आत्मा पाताललोक में जाती है। वहॉ उसका जीवन उदासी और निराशा से भरा हुआ होता है। वह वहीं पड़ी रहती है। हां, जिन मृतकों के जीवित सम्बन्धी उनकी समाधि पर भोजन और जल आदि चढ़ाते हैं वे परलोक में कुछ शान्ति अनुभव करते हैं। वे स्वर्ग नाम का कोई लोग जानते ही नहीं थे। बेबीलोनी धर्म में मरणोपरांत प्रतिफल की धारणा भी नहीं मिलती। मिस्री धर्म में मरणोपरांत विभिन्न आत्माओं की विभिन्न नियति होने की जो मान्यता है, बेबीलोनी धर्म में उसका अभाव है। वैसे तो इस जीवन में किए गए अच्छे कर्मों

का फल परलोक में बेहतर जीवन के रूप में मिलेगा या इस रूप में पुरस्कार मिलेगा यह आश्वस्तता मिस्री धर्म ने भी काफी बाद में देना शुरू किया, वह भी काफी कुछ अस्पष्ट रूप में। लेकिन मेसोपोटामिया की जातियों का धर्म परलोक में पुरस्कार या सांत्वना की आशा नहीं बंधाता। वर्गपूर्व समाज या वर्गीय समाजों के आरंभिक चरण में मरणोपरांत पुरस्कार संबंधी मान्यताएं आम तौर पर नहीं मिलतीं। जब समाज में वर्गीय विरोध उग्र हो गए तभी जाकर वे प्रकट हुईं।

इसका अर्थ उनका धर्म परलोकाभिमुख नहीं था। वह इहलौकिक जीवन पर ही केंद्रित था। वे इसी जीवन में सुख तथा आनंद की कामना करते थे।

ऐहिक जीवन विषयक दृष्टिकोण .

जैसा कि कहा गया है, बेबीलोनी धर्म ऐहिक जीवन पर केंद्रित था। इसका प्रतिबिंब उनके ऐहिक जीवन विषयक दृष्टिकोण में भी मिलेगा। परिणामतः इनके धर्म को मूल रूप में आध्यात्मिक या नैतिक धर्म नहीं कहा जा सकता। इसकी मूल भावनाएं सांसारिक जीवन में सुखों को प्राप्त करना या अन्य शब्दों में इस जीवन के लिए स्वार्थपरक थीं।

बेबीलोनियन, मानव जीवन को पापपूर्ण समझते थे। वे पाप को रोग के समान समझते थे। उनके विश्वासों में यह भी था कि बुराई में भी भलाई रहती है। या वह भलाई का ही दूसरा रूप होती है। उनके नियति में पूरे विश्वास के कारण वे इसे भी देवताओं पर भी थोप देते थे। देवताओं की दास्य भाव से क्षमा मांगते थे| इन बुराइयों को दूर करने का साधन ईश्वर से साक्षात्कार मानते थे और तंत्र-मंत्र आदि क्रियाओं को इसका उपकरण । प्राचीन काल में अच्छाई और बुराई दोनों को ही देवताओं की कृपा समझा जाता था। बेबीलोनियन युग से ऐसा सोचा जाने लगा कि देवताओं ने अच्छे लोगों को कष्टों से अवश्य बचाना चाहिए। न्याय पाना मनुष्य का अधिकार है। अर्थात् सदाचारी व्यक्ति को कष्ट क्यों उठाना पड़ता है? इस संबंध में चिंतन आरंभ हो चुका था। 'लुडलुलवेल' नामक रचना में इस विषय पर विचार मिलते हैं| उपरोक्त प्रश्न के संदर्भ में दो तरह के समाधान मिलते हैं-

1) मनुष्य का स्थान देवताओं से निम्न है। वह देवताओं के रहस्यों को समझने में अक्षम हैं। अतः इसे देवताओं पर क्रोध करने का कोई अधिकार नहीं।

2) अगर मनुष्य देवताओं पर विश्वास करेगा तो उस पर अवश्य कृपा होगी।

बेबीलोनिया के विचारकों ने यह सोचना भी आरंभ कर दिया था कि मृत्यु का कारण क्या है? इस पर मिथक भी है।

चिकित्साशास्त्र .

जैसा कि पहले कहा गया है कि बेबेलोनियन लोग, रोगों को दैवी प्रकोप का परिणाम मानते थे और दैवी प्रकोपों पर उपाय के तौर पर जादू, मंत्रों, ताबीजों, झाड-फूंक में अधिक विश्वास करते थे| वैसे तो चिकित्सकों का एक वर्ग बन चुका था लेकिन जनों में व्याप्त अत्यधिक अंधविश्वासों के कारण लोगों की आस्था उनसे अधिक ओझाओं में थी। अतः उन्हें आवश्यक प्रोत्साहन न मिलने के कारण बेबीलोन में चिकित्सा शास्त्र की खास उन्नति नहीं हुई। लोग दवा इसलिए नहीं खाते थे कि उससे रोग दूर हो जाएगा। बल्कि इसलिए कि दवा सेवन से रोगी पर चढ़े भूत-प्रेत डर जाएंगे और उसे छोड़कर भाग जाएंगे| यही कारण था कि बड़े विचित्र-विचित्र पदार्थों की दवाइयां बनायी जाती थीं। कच्चा मांस, सांप का मांस, पिसी हड्डी, सड़ा हुआ भोजन, धूल, चर्बी, शराब आदि को मिलाकर दवाइयां तैयार की जाती थीं।

जादुई अनुष्ठान-

ये चिकित्सा, बचाव, मारण, युद्ध में विजय के लिए किये जाते थे।।

शकुन विचार, भविष्य विचार

बिना दैवी इच्छा जाने बेबीलोनियन लोग कोई काम नहीं करते थे। दैवी इच्छा जानने के लिए कई रहस्यपूर्ण विधान प्रचलित थे। पुरोहितों में कुछ लोग इसके ही विशेषज्ञ होते थे। उन्हें बारू कहा जाता था। वे स्वप्नों का अर्थ बताते थे। शकुन और भविष्य जानने के तरीकों में पक्षियों की उड़ाने, तेल के धब्बों के आकार आदि उपयोग में लाये जाते थे। सबसे महत्वपूर्ण तरीका इस प्रकार था: बलि किए गए जीवों के भीतरी अंगों और विशेषतः यकृत की जांच करके भविष्य बताया जाता था। 'यकृत प्राकरण्यापन' नामक इस विधि को बहुत ही विकसित कर लिया गया था। यकृत के हर भाग को अलग-अलग नाम से पुकारा जाता था। मनुष्य के यकृत के आरेख और मिट्टी की प्रतिकृतियॉ व्यापक पैमाने पर बनायी जाती थीं। उस पर सामूहिक लक्षण दिखलाए जाने का दावा किया जाता था। आगे यही विधा हित्तियों और एट्रुस्कनों के मार्फत रोम तक पहुंची ।

प्रेतात्माओं की कल्पना-

अधिकांश प्रेतात्माओं को दुष्ट तथा विनाशकारी मानने के विश्वास प्रचलित थे। पृथ्वी, जल तथा वायु में वास करने वाले इन प्रेतात्माओं को 'अनुनाकी' और 'इगीगी' कहा जाता था। उन्हें बीमारियों और दुर्भाग्य का मूर्तिमन्त रूप माना जाता था। उनसे मुक्त रहने के लिए पुरोहितों से तंत्र-मंत्र करवाए जाते थे और गंडे-ताबीजों का उपयोग किया जाता था।

<u>सृष्टिरचना विषयक मिथक</u>.

बेबीलोन में बहुत प्राचीन समय में विश्वोत्पति संबंधी मिथकों की रचना की गयी थी। उसमें एक मिथक, मिट्टी के सात पट्टियों पर लिखा हुआ मिला है। इसके आरंभिक शब्दों के आधार पर इस आख्यान का नाम 'एनुमा एलिश' रखा गया। यह आख्यान विशेष रूप से दिलचस्प है। इसमेंः-

अप्सु यह अतलता तथा असीम जलमयता की पुरूष प्रतिमूर्ति है। तिआमत' आद्य महासागर के खारे जल की स्त्री प्रतिमूर्ति है। इसे चार पैरों वाली दानवी के रूप में चित्रित किया गया है। प्रारंभ में केवल जल ही जल चारों ओर था । इस जल राशि से 'लागू' और **'लहगू'** नाम के दो देवता उत्पन्न हुए। इन्होंने '**अंशार, किशर और उनु'** को जन्म दिया। उनसे अनु उत्पन्न हुआ। अनु ने **इया** अथवा **एनकीथा** को उत्पन्न किया। इन सारे देवताओं की उत्पत्ति के बाद उन्होंने आदि अव्यवस्था (आदिगर्त) की शक्तियों के विरूद्ध संघर्ष किया। तिआमत ने देवताओं से लड़ने के लिए अपनी भयावह दानवी सेवा भेजी। देवता डर गए। अकेला मार्दूक ही लड़ने के लिए तैयार हुआ| लेकिन इस शर्त पर कि सब देवता उसे सर्वोच्च मानेंगे। घनघोर संघर्ष के बाद उनकी जीत हुई । उसने तिआमत को मार डाला और उसे शरीर के टुकड़े-टुकड़े करके उनसे आकाश और पृथ्वी की रचना की।।

यहॉ सृष्टि उद्भव का मूल तत्व जल को माना गया है।

<u>प्रथम मनुष्य</u> ..

इसका नाम **अदापा** था। उसे एक देवता ने बनाया था| एआ ने अदापा को अमरता प्रदान करनी चाही थी लेकिन अपनी गलती के कारण वह उसे प्राप्त नहीं कर सका। इस कथन का संबंध मनुष्य की उत्पत्ति और मृत्यु से है।

<u>प्रलय की कल्पना</u>

यह 'गिल्मामिश' काव्य में मिलती हे। गिल्मामिश का पूर्वज 'उत्नापिश्तिम' उसे भयंकर जलप्लावन के बारे में बताता हे। इसे देवताओं ने उत्पन्न किया था और परिणामतः सारी पृथ्वी जलमय हो गयी थी। केवल उत्नापिष्तिम, उसका परिवार और उसके कुछ पशु पक्षी ही बच पाये। देवता एआ की सलाह से उसने एक नांव बना ली थी। उसमें शरण ली थी। शायद यहीं आख्यान कुछ बदलाव के साथ आगे कई लोगों द्वारा अपनाया गया। उदाहरण. बाइबिल का प्रलय आख्यान आदि।

एटन गड़रिए की कथा-

यह शायद आकाश में उड़ने की सबसे प्राचीन कहानी है।

प्रकरण-चार

असीरियन सभ्यता (उत्तरी मेसोपोटामिया)

ऐसी मान्यता है कि ईसा से 3500 वर्ष पूर्व सुमेरिया के लोग असीरिया में जाकर बस गए थे। उन्हीं लोगों ने वहॉ 'अस्सुर' या असुर देवता की स्थापना की । जिससे नगर का नाम 'असुर' हो गया। बाद में जब वहॉ साम्राज्य स्थापित हो गया तो उसका नाम असीरिया हुआ। सुमेरियनवासियों के शक्तिहीन होने पर असीरिया में कई जातियां आयीं और चली गयीं। लेकिन सेमेटिक जाति का प्रभाव काफी समय तक बना रहा। इस कारण असीरियन सभ्यता का स्वरूप एक मिश्रित सभ्यता का रहा। **फिर भी मेसोपोटामिआ की तीन प्रमुख सभ्यताओं में तीसरी सभ्यता असीरियनों की ही मानी जाती है। तुलनात्मक दृष्टि से असीरियनों की सांस्कृतिक क्षेत्र में देन उतनी नहीं है जितनी की सुमेरियनों और बाबीलोनियनों की है।**

असीरियन सभ्यता और इतिहास की जानकारी के स्रोत यहूदी बाइबल तथा यूनानी इतिहास ग्रंथ ही है। प्रसिद्ध यूनानी इतिहासकार डियेडोरस (प्रथम शताब्दी ई.पू.) ने असीरियन इतिहास पर काफी कुछ लिखा है| हेलेनेस्टिक युग के प्रसिद्ध इतिहासकार इविडेन्स ने भी असीरियन इतिहास पर एक ग्रंथ लिखा है।

1183 ई.पूर्व में बेबीलोन के आधिपत्य में रहनेवाले असीरिया के राजा असुरदान ने अपने को स्वतंत्र घोषित कर लिया। कुछ समय बाद असीरिया काफी शाक्तिशाली हो गया। 13 वीं शताब्दी ई.पू. के मध्य से सातवीं शताब्दी ई.पू. के अन्त तक का इतिहास असीरियन साम्राज्य का इतिहास है। यह एशिया का एक प्राचीन साम्राज्य था जो मिस्र से ईरान तक फैला था। इसकी राजधानी 'तिनेबेह' थी।

वैसे असीरियनों ने व्यापार की जगह कृषि को अपने आर्थिक जीवन का आधार बनाया था। असीरियन व्यापार को घृणा की दृष्टि से देखते थे। असीरियनों ने सैन्य संगठन के क्षेत्र में अपार उन्नति की थी। ये लोग विजातीय शत्रुओं से लगातार लडते रहने के कारण युद्धप्रिय हो गए थे। इस मानसिकता का प्रभाव जीवन के कई क्षेत्रों में पड़ा । इसमें धार्मिक क्षेत्र भी है। लेकिन यहॉ जनता की सुख-सुविधा के लिए विशेष प्रयत्न नहीं किए गए जैसे कि सुमेरियन और बाबीलोनियन सभ्यता ने किए थे। कालान्तर में सिपाहियों की संख्या बढ़ी गयी और कृषकों की संख्या घटती गयी। असीरियनों के आर्थिक जीवन का आधार लूट बन गया। इनके पास दूसरों से लुटा हुआ माल भारी मात्रा में था। लेकिन इसका परिणाम यह हुआ कि आपसी असंतोष बढा। उसे नैसर्गिक विपत्ति की जोड़ मिलते ही उन्हें पराजय का मुंह देखना पड़ा। एक पराजय में ही सारी व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गयी। इरानियों ने विजय के बाद तिनेबेह नगर पूरी तरह जला दिया। असीरिया हमेशा के लिए समाप्त हो गया। यह ई.पू.

612 के दरम्यान की बात है| जिस तरह असीरियनों ने बाबीलोन और सूसा नगरों का विद्वंस किया था वही नियति तिनेबेह के हिस्से में आयी।

<u>प्रमुख देवता असुर-</u>

असीरियन और बेबीलोनियन धर्म में काफी कुछ समानताएं हैं| केवल मुख्य देवता मार्दूक न होकर असुर था। सूर्य को 'सौर' देवता कहा जाता था और इसका चक्र असुर का भी चिन्ह माना जाता था। असुर की कल्पना उन्होंने पंख लगे हुए सूर्य बिंबों के बीच तरकस बांधे और धनुष्य ताने व्यक्ति के रूप में की, अर्थात् वे सूर्य पूजक थे।

वास्तव में उनका जनजातीय देवता अशुर जो एक ठेठ युद्ध देवता था, राज्य का अधिकृत संरक्षक देवता बन गया। यानि यह देवमंडली में असीरियों के जनजातीय देवता का जोड़ ही है, या कहो उसे राष्ट्रीय रूप देना है। असीरियन असुर को साम्राज्य का स्वामी मानते थे। सारा राज्य उसी की सम्पत्ति माना जाता था| सभी कानून उसी के नाम पर बनते थे। जो नगर जिते जाते थे वहॉ सूर्यचक्र की स्थापना (पूजा के लिए) की जाती थी।

इस देवता को युद्धप्रिय और भयंकर माना जाता था। ऐसा विश्वास था कि इस देवता के सामने जितनी अधिक हत्याएं की जाएगी वह उतना ही प्रसन्न होगा। युद्ध में विजय के उपरांत असुर को प्रसन्न करने के लिए बहुत से बन्दियों की बलि दी जाती थी।

<u>अन्य देवता-</u>

उपरोक्त उग्र देवता के विपरीत उनमें एक देवी भी थी। इसका नाम 'नीना' देवी' था। इसे बेबीलोनवालों की ईस्तर देवी की तरह प्रेम की प्रतिमूर्ति माना जाता था। इसे पूर्ववर्तियों का प्रभाव ही मानना होगा। लेकिन इसका प्रचार या प्रभाव काफी कम था। वैसे असीरियों ने कई बैबीलोनी देवताओं के बिंबों को अपनी जाति के युद्धप्रिय चरित्रों के अनुरूप ही ढालने का प्रयत्न किया।

वहॉ आंधी के देवता 'रम्मन' की पूजा भी प्रचलित थी । इस देवता का ही दूसरा नाम 'अदाद' था।

इस तरह यहॉ एक से अधिक देवताओं के विचारों का अस्तित्व था। आमतौर पर ये लोग देवताओं से बहुत डरते थे और उन्हें खुश रखने के लिए कई तरह के कर्मकांड करते थे।

लेकिन असीरी साम्राज्य के पतन के बाद असीरियों के असुर समेत सभी देवताएं इतिहास में लुप्त हो गयीं और मेसोपोटामिया के धर्म में उनका नामोनिशान न बचा।

<u>राजा</u>-

असीरिया के राजा को सूर्य देवता का अवतार माना जाता था। राजा भी अपने को सूर्यपुत्र समझते थे। वैसे असीरिया के सम्राट अपनी क्रूरता के लिए प्रसिद्ध थे।

पुजारी-

पुजारियों की वाणी देववाणी समझी जाती थी। कोई सम्राट भी उसके विरूद्ध मत प्रकट नहीं करता था।

शामानी विचार-

इन लोगों का भूत-प्रेत आदि में विश्वास था। वे ऐसा मानते थे कि मनुष्य में मानसिक और शारीरिक विकार भूत-प्रेत ही उत्पन्न करते हैं| इन्हें दूर करने के लिए अनेक प्रकार के मंत्र-तंत्रों और टोटकों का प्रयोग किया जाता था। बालक, वृद्ध और स्त्रियां तरह-तरह के ताबीज बांधते थे। इन पर आकृतियां और मंत्र खुदे रहते थे।

अंध विश्वास और निराशावाद-

असीरिया अंधविश्वास के लिए प्रसिद्ध हैं। इनमें यह विश्वास था कि संसार अशुद्ध और राक्षसी शक्तियों से युक्त है और उससे त्राण पाने का उपाय मंत्रों द्वारा और पुजारियों की कृपा से ही संभव है ।

'निराशावादी और दास के संवाद' नामक कृति से असीरियनों के निराशावादी विचार भी झलकते हैं| इसमें बताया गया है कि कार्य अपने आप में शुभ-अशुभ नहीं होते। चाहे मनुष्य पाप करे या पुण्य, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। तो फिर अच्छे कार्य करने से क्या लाभ ? हो सकता है, यह उनके लगातार युद्धरत होने का परिणाम हो।

शकुन-अपशुकन-

लेकिन दूसरी ओर शकुन-अपशकुन का बडा विचार था| पुजारियों का एक गुट शुभ-अभुभ फलों पर विचार करता था। ये लोग ज्योतिषी कहलाते थे| इनका समाज में बड़ा सम्मान था।

अपराधियों के साथ बर्ताव-.

कभी-कभी दोषी समझे जाने वाले व्यक्ति को विष प्राशन करना पड़ता था। या देवता के सामने उसके सबसे बड़े लड़के-लड़की को जला दिया जाता था।

लोक-परलोक-

असीरिया के लोग ऐसा मानते थे कि मरने के बाद आत्मा को राक्षसी शक्तियां मर्त्य लोक में ले जाती हैं। वहॉ परीक्षाओं के बाद कुकर्मियों को कष्ट दिए जाते हैं। इस संकट से

छुटकारा केवल एक ढंग के स्वर्गीय अमृत के द्वारा ही हो सकता है। लेकिन उसकी एक बूंद भी प्राप्त होना बहुत कठिन है।

धार्मिक विचारों के प्रति साशंकता का उद्भव-

एक दार्शनिक रचना में जो एक निर्दोष होने पर भी कष्ट भोगने वाले व्यक्ति के विषय में हैं, लेखक उस व्यवस्था के न्याय संगत होने के विषय में जबरदस्त सवाल उठाता है जिसमें देवता मनुष्य को उसका कोई दोष न होने पर भी कष्ट देता है। कोई धार्मिक कर्मकाण्ड उसकी कोई सहायता नहीं कर पाते, जिनके विषय में उसको श्रद्धा रखने के लिए कहा जाता है। वे समय आने पर उसको असहाय छोड़ देते हैं या अनुपयोगी सिद्ध होते हैं। **निराशा के संवाद में भी दैवी जीवन, दैवी मदद, मरणोपरांत पुरस्कार आदि कल्पनाओं और काल्पनिक आशाओं की व्यर्थता के विषय में चर्चा मिलती है।**

कैल्डियन युग

असीरियनों के आधिपत्य के समाप्ति के बाद बेबीलोन में सेमेटिक जाति की एक शाखा केल्डि या खाल्दी का राज्य स्थापित हो गया। खाल्दी साम्राज्य के निर्माण का श्रेय 'नेबोपलस्टर' को है। उसका शासन काल 625 ई.पू. से 604 ई.पू. तक था। खाल्दी अपने को प्राचीन बेबीलोनियनों के वंशज मानते थे।

उरार्तू-

नौवीं से लेकर सातवीं शताब्दी ईसा पूर्व में एशिया ए कोचक, ईरान और उत्तरी मेसोपोटामिया के बीच ऊँचे पहाड़ों से घिरे व्यापक पहाड़ी इलाके में 'उरार्तू' नाम का एक स्वतंत्र राज्य था। इनका सर्वोच्च देवता आकाशवासी कैल्ड (खल्द) था। कुछ विद्वानों का कहना है कि इस जाति का नाम इस देवता के नाम से ही निकला है।

यहॉ हित्ती देवता 'तेशुब' और अन्यों की भी पूजा की जाती थी। देवताओं को मुख्यतः राजाओं का संरक्षक माना जाता था।

राज्य का धार्मिक केंद्र 'मुसासिर' नामक नगर था जहां कैल्ड का मुख्य मंदिर स्थित था। त्रिभुजाकार शीर्षवाला, स्तम्भों पर खड़ा मुसासिर मंदिर युनानी मंदिरों का आद्य प्रारूप माना जाता है। यह वास्तुकला उरार्तू की सबसे बड़ी उपलब्धि मानी जाती

उरार्तू की आबादी उरार्ती तथा कैल्डि (खाल्दि) का कुछ भाग आगे चलकर जॉर्जियनों और कुछ आर्मीनियों में विलीन हो गया। उरार्तूई संस्कृति बाबुल और अशर की संस्कृति से काफी घनिष्ठतः संबद्ध थी।

कैल्डियन युग में उन्नति-

बेबीलोन के कैल्डियन युग में कला तथा वैज्ञानिक क्षेत्र में काफी उन्नति हुई।

सम्राट 'नेबुचेड्रेज्जर' द्वारा (कार्यकाल 604 ई.पू. से 565 ई.पू.) द्वारा रानी के लिए बनवाया गया बेबीलोनिया का झु**लता हुआ बाग** संसार के सात आश्चर्यों में से एक था। राजा का महल भी अत्यंत विशाल था । उसका महल तथा हैंगिंग गार्डन इस युग की कला के उत्कृष्ट नमूने थे। उपरोक्त बगीचे के विषय में बिल ड्यूराण्ट ने लिखा है.-

" Here Seventy Five Feet above the ground in the cool shade of tall trees and surround by erotic shrubs and fragrant flowers the ladies of the Royal Haram walked unvelled, secure from the common eye"

इतनी ऊँचाई पर इस बगीचे में पानी चढ़ाया जाता था।

विज्ञान-

1) उन्होंने पहली बार सप्ताह को सात दिनों में विभाजित किया ।

2) बेबीलोन में 'नीबू रेमन्सू' नाम का प्रसिद्ध वैज्ञानिक हुआ। इसके द्वारा निर्धारित की गयी वर्ष की लम्बाई और आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा निर्धारित की गयी लम्बाई में केवल 26 मिनट का फर्क है।

3) 5 वीं शताब्दी ई.पू. में वहॉ 'किडन्तू' नाम का खगोलवेत्ता हुआ जिसको पृथ्वी की धुरी के वार्षिक झुकाव की खोज का श्रेय प्राप्त है।

4) खाल्दियों ने ही नक्षत्रों को 12 राशियों में विभाजित किया था।

<u>सामाजिक जीवन-</u>

प्राचीन बेबीलोनियन समाज की तुलना में कैल्डियन युग में बेबीलोनियनों का व्यावहारिक जीवन बहुत ही दूषित हो गया। केल्डियन काल में बेबीलोन वेश्यालयों के लिए सारे संसार में बदनाम था। प्रत्येक स्त्री को जीवन में कम से कम एक बार ईश्वर के मंदिर में परपुरूष के साथ सम्भोग करना होता था। प्रत्येक मंदिर में देवदासियॉ होती थीं। जो भोग विलास की सामग्री थी।

<u>देवताओं का व्यक्तित्व</u> .

प्राचीन बेबीलोनियन अपने देवताओं में मानवीय दुर्बलताओं के दर्शन करते थे। परन्तु खाल्दियों ने अपने देवताओं को सर्वशक्तिमान और अपना शत-प्रतिशत भाग्यविधाता बना दिया। खाल्दियों के काल में भी मर्दुक को ही देवताओं में सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। वे

देवताओं को बलि आदि देते थे| बेबिलोनियन मंत्रबल से देवताओं को अपने अनुकूल बनाना संभव मानते थे। लेकिन खाल्दी ग्रहों से तादाम्य पर बल देते थे।

<u>कैल्डियन भाग्यवाद-</u>

खाल्दि देवताओं को अपने कार्यों का पूर्ण नियंता मानते थे। वे पुराने विश्वासों के अनुसार ऐसा नहीं मानते थे कि देवताओं की इच्छाओं को अनुनय द्वारा बदला जा सकता है| अतः उनके अनुसार देवताओं की इच्छाओं को ज्यों का त्यों स्वीकार कर लेना चाहिए।

अतः वे बहुत बड़े भाग्यवादी और परिणामतः निराशावादी बन गए।

प्रकरण:-पांच

हिब्रू सभ्यता

दूसरी सहस्राब्दि ई.पू. के पूर्वाद्ध में यहूदी, उत्तर अरब में रहनेवाले पशुचारी बद्दू कबीलों का जमघट थे। उनका समाज पितृतंत्रात्मक गोत्रीय जनजातीय स्वरूप का था। बाद में खानाबदोश हिब्रू जनजातियों की फिलीस्तीन के खेतीहर इलाकों में घुसपैठ शुरू हुई | आज तो फिलीस्तीन बहुत शुष्क प्रदेश है। लेकिन ऐसा अनुमान है कि उस समय यह प्रदेश शुष्क नहीं था। यहॉ से अनाज, तेल, अंगूरी शराब आदि मिस्र जाते थे। उस समय यह एशिया और अफ्रीका को जोड़ने वाली कड़ी थी। बाइबिल में इसे दूध और शहद का देश कहा गया है।1 **यहुदियों का फिलीस्तीनियों के साथ संघर्ष शताब्दियों तक चला। यहूदियों को विजय मिली। फलस्वरूप यहूदी धीर-धीरे खानाबदेश जीवन और पशुचारण के स्थान पर स्थायी जीवन और कृषि का धंधा अपनाने लगे।** उनका स्थानीय कैनानी आबादी के साथ मिश्रण हुआ। कैनानी एक दूसरी सेमेटिक जाति थी।

(विश्व की प्राचीन सभ्यताएं 1: पृष्ठ 93)

फिलीस्तीन लगभग 150 मील लम्बी पट्टी है। इसके पूर्व में अरब का रेगिस्तान और पश्चिम में भूमध्यसागर है। यहॉ की मुख्य नदी जॉर्डन है। देश का क्षेत्रफल 10000 वर्गमील से भी कम है। दक्षिण फिलीस्तीन में 'जूडा' नाम का स्थान है। जूडा के निवासियों के लिए 'जिउ' शब्द है। अतः जिउ का अर्थ जूडा के निवासी हो गया। इसके अलावा इन लोगों को हिब्रू, यहूदी आदि नामों से भी जाना जाता है। अति प्राचीन समय में इस जूडा स्थान पर एक अत्यंत उच्च कोटि की सभ्यता का विकास हुआ, जिसे आज हिब्रू या यहूदी सभ्यता के नाम से पुकारा जाता है ।

यहूदियों के पहले फिलस्तीन में फिनीशियनों का राज्य था। प्राचीन काल में फिलीस्तीन विभिन्न संस्कृतियों का केंद्र था। इन संस्कृतियों के आपसी टकराओं के फलस्वरूप विभिन्न जातियों में हमेशा आपसी युद्ध होते रहे। इसी कारण फिलीस्तीन के यहूदी कभी शांत जीवन व्यतीत नहीं कर सके।

एक विचार के अनुसार यहूदी, सेमेटिक परिवार की ही एक शाखा है| कहा जाता है कि यहूदियों के आदि पूर्वज 'अब्राहम' सुमेर के उर नामक नगर के निवासी थे। वहॉ से वे फिलीस्तीन गए । यहूदी फिलीस्तीन को ईश्वर का दिया हुआ देश मानते हैं। अब्राहम के दो पुत्र इस्लाम और आइजक थे। (आइजक का पुत्र जैकब था) आइजक के समय फिलीस्तीन में भयंकर अकाल पड़ा| वे दोनों भाई फिलीस्तीन छोड़कर मिस्र चले आए। वहॉ वे और उनके वंशज 130 वर्ष तक मिस्र के निवासियों के दास बनकर रहे। उनको दासत्व से छुड़ानेवाले

मूसा थे, जो स्वयं यहूदी थे। परन्तु अनजाने में इनका पालनपोषण मिस्र के एक राज परिवार में हुआ। उन्होंने एक मिस्री राजकुमारी से विवाह भी कर लिया था। ऐसा कहा जाता है कि मूसा ने यहूदियों को मुक्त ही नहीं किया बल्कि दस ईश्वरीय आदेशों के रूप में एक नया जीवनदर्शन दिया। इसके पश्चात् यहूदी ईश्वर का दिया हुआ देश फिलीस्तीन जीतने के लिए चलें। वहॉ इस समय केनानी नाम की एक दूसरी सेमेटिक जाति राज कर रही थी। यह संघर्ष चलता रहा| लेकिन 1025 ई.पू., यहूदियों ने सोल नाम के व्यक्ति को अपना राजा चुना। उसे ही यहूदी राज्य का प्रथम संस्थापक मानना चाहिए। उसने ई.पू.1000 तक राज्य किया। बाद में डेव्हिड नाम के व्यक्ति ने इसका काफी विस्तार किया और राजधानी येरूसलेम बनायी। इसके बाद का सम्राट था सोलोमन । सोलोमन के बाद यह राज्य दो हिस्सों में बंट गया, इजरायल और जूडा। ई.पू. 722 में असीरियनों ने इजरायल को जीतकर इसका स्वतंत्र अस्तित्व समाप्त कर दिया। ई.पू. 586 में बेबीलोनिया के शासक ने जूडा को भी अपने अधीन कर लिया। फिर यह भूभाग क्रमशः ईरानी, हखाक्शी, सिकंदर महान, मिस्र के टालेमी सम्राट और रोम साम्राज्यों का हिस्सा रहा। इसके बाद लगभग 2000 वर्ष तक यहूदी संसार के अनेक देशों में बिखेरी हुई अवस्था में रहे। लेकिन 1944 ई. में पुन्हा स्वतंत्र इजरायल राष्ट्र की स्थापना हुई|

जहां तक शोधकर्ताओं का मत है, बहुसंख्या में यह मानते हैं कि बाइबिल में उल्लिखित कुलपिता अब्राहम, आइजक, जेकब से लेकर मूसा तक ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं है। वे उन्हें गोत्रीय जनजातीय विभाजनों का मानवीकृत रूप मानते हैं। वे कुल प्रवर्तक सम्मान के पात्र समझे जाते थे।

<u>अध्ययन के स्रोत-</u>

यहूदी इतिहास और धर्म के अध्ययन के लिए आज भी मुख्य स्रोत यहूदियों की मुख्य धर्म पुस्तक बाइबिल ही है। बाइबिल मूलतः यूनानी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है पुस्तकें होता है। वास्तव में बाइबिल नाम हिब्रू शब्द 'सोफेरिम' (पुस्तक) का अनुवाद था। वैसे भी बाइबिल कोई एक मुश्त रचना नहीं है। वरन् कई रचनाओं का संकलन है। परंपरा के अनुसार इन्हें तीन वर्गों में या समूहों में विभाजित किया जाता है.

पहला : नियमों और कानूनों की पुस्तकें (हिब्रू में तोराह) अर्थात् मूसा की पॉच पुस्तकें-

1) **उत्पत्ति (जेनेसिस**)

ईश्वर द्वारा विश्व तथा मनुष्य की रचना विषयक, स्वर्ग में मनुष्यों का जीवन , उनके पतन, स्वर्ग से निष्कासन, मानव वंश की वृद्धि, उसका प्राचीन इतिहास, विश्वव्यापी प्रलय तथा उसमें बचा रहा 'नूह' तथा उसका परिवार, यहूदी जाति के मूल पुरूषों या कुल

पिताओं अब्राहम, आइजक, जैकब, जोजेफ तथा भाइयों और यहूदियों के मिस्र में बसने तक की कहानी इसमें है।

2 **निर्गमन(म्गवकने)**

यहूदियों के विधि निर्माता मूसा का जीवन, मिस्री कैद से यहूदियों की मुक्ति की कहानी, प्रसिद्ध दस ईश्वरीय आदेश(Ten Commandments) तथा अन्य बातें इसमें संकलित हैं।

3) **<u>लेवी ग्रंथ:</u>** (लेविटिकस) धार्मिक कानूनों की पुस्तक है।

4) **<u>गिनती (नंबर्स):</u>** इसमें मिस्र से निष्क्रमण से लेकर फिलीस्तीनी विजय तक का इतिहास और यहूदियों के कानून हैं।

5) **<u>उयूटेरोनोमी:</u>** मूसा निर्मित कानूनों की पुस्तक।

समूह दूसरा : इसमें इतिहास की पुस्तकें आती है।

समूह तीसरा : आईजाई, जेरेमाई, इजकील, डेनियल आदि अन्य 12 पैगम्बरों की पुस्तकें इसमें अंतर्भूत हैं।

इन सभी पुस्तकों को 'ओल्ड टेस्टामेंट' कहा जाता है। वह इसलिए कि उसका ईसाइयों की पुस्तकों 'न्यू टेस्टामेंट' से भेद दिखाया जाए।

<u>प्राचीन जीवनयापन का आधार पशुपालन से संबंधित विश्वास-</u>

ऊंट, जरबोआ, खरगोश, सूअर, सांप, छिपकली और बहुत से पक्षियों के खाने पर पाबंदी थी। यह बात निश्चित ही पशुचारक, खानाबदोश जीवनशैली से जुड़ी हुई थी।

<u>पास्का का पर्व</u> :

यह आरंभ में एक शुद्ध पशुपालक त्यौहार था। बसंत में मनाये जाने वाले इस त्यौहार पर, उस वर्ष रेवड में पैदा हुए पहले मेमने या बछड़े की बलि दी जाती थी। विलियम राबर्टसन स्मिथ ने इस प्रथा के टोटेमी मूल की ओर ध्यान आकर्षित किया है।

लेकिन आगे चलकर इस पर्व में बिल्कुल अलग बातें या तत्व जुड़ गए। ये थे कृषि संबंधित तत्व। कृषि से संबंधित विश्वास और अनुष्ठान।

संरक्षक देवताएं और पूर्वजों की आत्माएं- .

इस आदिम काल के यहूदी कबीले, गोत्रीय, संरक्षक देवता और पूर्वजों की प्रेतात्माओं की पूजा करते थे। वहॉ मूर्तिपूजा भी थी। ऐसा लगता है कि वे वृक्षों, पर्वतों, चट्टानों, सोतों और पवित्र स्तंभों-अशरों की पूजा भी करते थे। बाइबिल में इन सभी के प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष प्रमाण मिलते हैं।

उत्पत्ति में यह मिलता हैः-

जब जैकब अपनी पत्नियों के साथ उनके पिता लेबान के घर से भागा था तो उसकी एक पत्नी रैचेल, अपने साथ पिता के घर से कुछ मूर्तियॉ ले गयी। बाइबिल के यहूदी पाठ में इन मूर्तियों को 'तेराफिम' कहा गया है। संभवतः ये कुलदेवताओं की मूर्तियॉ होनी चाहिए। लेबान को बेटियों और दामाद के भागने से उतना घुस्सा नहीं आया जितना इन कुल देवताओं को मूर्तियॉ चुराने पर आया। उसने भगोड़ों का पीछा किया। तेराफिम चुराने के लिए भला-बुरा कहा और मूर्तियों को लौटाने को कहा। साफ है कि ये मूर्तियॉ उनकी दृष्टि में मूल्यवान थीं।

मृतकों की छायाओं (प्रेतात्माओं) को बुलाने और उनसे बातें करने की संभावना में विश्वास किया जाता था। उदाहरण : राजा साल ने भूतसिद्धि करने वाली एक स्त्री से मृत सैम्युअल की प्रेतात्मा को बुलाने के कहा था।

जीवों की पूजा-

सभी जीव उनके आदर के पात्र थे। बैल, भेड़, नाग आदि की पूजा की जाती थी। नागपूजा तो लगभग 700 ई.पू. तक व्यापक पैमाने पर प्रचलित थी। मूसा के जीवन काल में भी उनके अनुयायी सुनहरे बछड़े (गोल्डन काफ) की पूजा करते थे और उसके सामने नंगे होकर नाचते थे।

चंद्रमा की पूजा-

संभवत: खानाबदोशी युग में चंद्रमा की पूजा का रिवाज था| इस पूजा ने ही सैबथ मनाने की प्रथा को जन्म दिया| इसका यहुदी धर्म में बडा महत्त्व है| लेकिन आरंभ में यह साप्ताहिक विश्राम का दिन नहीं बल्कि अमावास्या या पूर्णिमा का पर्व मनाने का दिन था|

दैवीय शक्तियॉ -

यहूदी दैवीय शक्तियों की कल्पना अनेक रूपों में करते थे। परंतु कालान्तर में इन शक्तियों को मानव रूप में ही माना गया। इन्हें सामान्य रूप में 'एल' (देवता) कहा जाता था।

कर्मकाण्ड और अनुष्ठान-

उपरोक्त 'एल' को प्रसन्न करने के लिए जादू-टोने, पिशाच विद्या एवं बलि क्रिया का आश्रय लिया जाता था।

लिंग पूजा-

यहूदियों का एक वर्ग किमानिया के 'वालीत्र' को प्रजनन का पुरूष तत्व एवं 'ऐश्तोरैथ' को स्त्री तत्व मानकर उनकी पूजा करता था। 'वालित्र' की पूजा, लिंग पूजा की तरह प्रचलित थी।

जादू-टोना आदि-

बाइबिल में जादूगरों, जादूगरनियों, सगुनियों आदि का बार-बार उल्लेख हुआ है। वे प्रेतात्माओं को बुलाते थे, भविष्य या शकुन बताते थे।

जादू-टोने और पिशाच विद्या के ज्ञाता, ओझा और पुजारियों का बड़ा सम्मान था। उनको तरह-तरह के उपहार दिए जाते थे। इस युग के यहूदियों का भविष्य दर्शन में विश्वास था| वे यह मानते थे कि देवता ही मनुष्य के भविष्य को बनाते हैं।

यहूदी फिलीस्तीन में स्थानीय होने के बाद जैसा कि पीछे बताया गया है उनका स्थानीय कैनानी आबादी के साथ मिश्रण हुआ। वे कैनानी रीति रिवाज की नकल और बहुसंख्य बआलों की पूजा करने लगे। 'बआल' स्थानीय समुदायों और नगरों के संरक्षक देवताओं को कहते थे। सीरिया तथा फिलीस्तीन में उनकी पूजा काफी पहले से प्रचलित थी। स्थानीय फिलीस्तीनी आबादी के अनेक पर्व भी यहूदियों ने अपना लिए, जो कृषि से संबंध रखते थे, जैसे मेत्जोथ। इसे बसंत में मनाया जाता था। इसे यहूदियों ने अपने प्राचीन पास्का पर्व के साथ मिला लिया।

यहॉ तक हमने मूसा पूर्व काल तक विचार किया है।

मूसा युग या एकदेव पूजा का युग

मूसा एक ईश्वर में विश्वास करते थे। यद्यपि वे अन्य जातियों के देवताओं के अस्तित्व को अस्वीकार नहीं करते थे फिर भी वे एकदेवपूजावाद के ही गंभीर समर्थक थे। **इसलिए उन्होंने यहूदियों को उपदेश दिया कि वे 'याःवेह' की पूजा करें । इसके प्रभावांतर्गत उसकी पूजा व्यापक पैमाने पर शुरू हो गयी।**

'याःवेह' का संबंध किस देवता से था इस विषय में कहो या उसके बिंब के उत्पत्ति के विषय में मतभेद है। कुछ तर्क इस प्रकार हैं-

1) पहले इसे त्रुटिवश 'जेहोवा' पढ़ा जाता था और कुछ विद्वानों का कहना है कि इस नाम का प्राचीन रूप 'जाहू' था। इस नाम की पूर्ण और सही व्याख्या अभी तक नहीं की जा सकी। हो सकता है कि यह नाम यहूदी मूल का ही न हो। याःवेह नाम का अर्थ भी स्पष्ट नहीं है।

2) याःवेह आरंभ में 'मिदियान' जनजाति का देवता था। यह जनजाति मिस्र के पास सिनाई प्रायद्वीप में रहती थी। बाइबिल की एक कहानी के अनुसार मूसा ने एक मिदियानी पुरोहित की पुत्री से विवाह किया था। वह अपने ससुर के देश में रहकर उसकी भेड़-बकरियॉ चराता था। वहॉ होरेब पर्वत (सिनाई प्रायद्वीप) पर ईश्वर ने उसे दर्शन दिए और अपना नाम याःवेह बताया। कहानी के अनुसार इससे पहले यहूदी ईश्वर को किसी अन्य नाम से पुजते थे| इससे ऐसा माना जा सकता है कि उसका आरंभ का पूजा स्थल सिनाई था।

3) संभवतः यह मूल रूप में किमानियों का स्थानीय देवता 'यादू' अथवा 'बाह' था। इसका उल्लेख केनान प्रान्त में प्राप्त लगभग 3000 ई.पू. के कुछ अभिलेखों में प्राप्त हुआ है। 1000 ई.पू. में इस देवता का नाम रूपांतर 'येहोबा' या 'येवोहा' के रूप में मिलता है।

आम तौर पर यह माना जाता है कि याःवेह आरंभ में केवल जूडा अथवा जूडिया के यहूदियों का जनजातीय देवता था। मगर बाद में यह सभी इजरायली यहूदियों का देवता बन गया। लेकिन कुछ इस विचार से असहमत है। उनके अनुसार याःवेह ने जिसे सबसे पहले दर्शन दिया और अपना दूत चुना वह जुडाई जनजाति का नहीं तो लेवीय जनजाति का था। आगे भी 'याःवेह' पुरोहितों के लिए लेवीय जनजाति का होना आवश्यक था| हां, यहुदी राजाओं का वंश जिसने याःवेह की पूजा को राजकीय पूजा का दर्जा दिया वह जूडिया जनजाति का था।

ऐसा प्रतीत होता है कि हजरत मूसा ने याःवेह की कल्पना अमूर्त चेतन सत्ता के रूप में की। कालान्तर में उसे मूर्त रूप दे दिया गया। उसको न्यायशील, कृपालू, सर्वशक्तिमान आदि गुण भी दे दिए गए। लेकिन केवल दैविक गुण ही क्यों, धीर-धीरे उसका स्वरूप मानवीय गुण-दोषों से युक्त हो गया।

ऐसा विश्वास किया जाने लगा कि वह प्रसन्न होकर कृपा करता है लेकिन यदि अप्रसन्न होता है तो सदाचारियों को भी दंड देने का अधिकार रखता है। वह किसी भी प्रकार के अपराध के लिए क्षमा नहीं करता। चाहे अपराध जानबूझकर किया हो या अनजाने में। याःवेह को मनमौजी और चंचल माना गया था| यहॉ तक की उसके सारे कार्य, उसकी सनक पर निर्भर करते हैं, ऐसा भी चित्र मिलता है।

शताब्दियों तक चले यहूदियों और फिलिस्तीनियों के संघर्ष के दरम्यान याःवेह की युद्धदेवता के रूप में भूमिका सबसे महत्वपूर्ण हो गयी। इसी कारण उसके लिए 'सवाओत' या 'सबाओत' विशेषण उपयोग में लाया जाने लगा। इसका अर्थ होता है सेनाओं का देवता। इस

देवता का आदेश था कि फिलीस्तीन की मूल आबादी का निमर्मतापूर्वक संहार कर दिया जाए| हिब्रुओं ने यहॉ नृशंस संहार जारी रखा। बाइबिल में कहा गया है कि अमोतियों के रब्बा नगर की विजय के बाद डेविड ने उसके रहनेवालों के आरे से दो-दो टुकड़े करवाए और लोहे के हेंगे उनपर घुमवाए| लोहे की कुल्हाड़ियों से उन्हें कटवाया और ईंटों के भट्टों में झोंका । यह हुआ याःवेह के आदेश से। इससे ऐसा लगता है कि घीर-घीरे उसका स्वरूप असीरियनों के देवता असुर की भांति ही नृशंस, गर्विला और प्रशंसा का भूखा हो गया। आत्मतुष्टि के लिए, उसे किसी के विनाश से परहेज नहीं था और अन्य देवताओं से ईर्ष्या थी। उसके दस आदेशों में प्रथम आदेश यह है कि :-

"तूं मेरे सामने किसी अन्य देवता की पूजा नहीं करेंगा।

दूसरे आदेश में उसने स्पष्ट किया कि -

"वह ईर्ष्या रखने वाला है और जो लोग दूसरे के देवताओं की पूजा करते हैं उनका पीछा वह चार योनियों तक नहीं छोड़ता।"

हॉ, एक मानवोचित गुण का भी उल्लेख मिलता है कि वह गलतियॉ भी करता है लेकिन उसके लिए पीछे पछताता भी है।

ईरान द्वारा कब्जे के बाद येरूसलेम का पुरोहित वर्ग शक्तिशाली बन गया। उन्हें ईरानी शासकों का वरदहस्त प्राप्त था। येरूसलेम के अलावा अन्यत्र मंदिर या तीर्थस्थल नहीं बनने दिया गया। प्राक फिलीस्तिनी काल में ही हलके से शुरू हुई थी 'या:वेह' की पूजा । लेकिन आगे चलकर यह यहूदियों के लिए सर्वोच्च और एकमात्र पूजा का बिंब बन गया। वह विश्व का स्रष्टा और नियंता हो गया। जहां मिस्र बेबीलोन, ईरान में एकेश्वरवादी प्रवृत्ति बढ़ने का कारण राजनीतिक केंद्रीकरण और राजा की एक तांत्रिक सत्ता की स्थापना की प्रवृत्ति थी। वही हिब्रू संस्कृति में इसके पीछे येरूसलेमी पुरोहितों की एकाधिकार प्रवृत्ति थी। यह बात एक और वस्तुस्थिति से स्पष्ट होती है। यहूदी परंपरा के अनुसार या:वेह के लिए बलि केवल येरूसलेम के मंदिर में ही दी जा सकती थीं, अन्यत्र नहीं।

<u>तार्किक विरोधाभास</u>

यदि या:वेह सारे विश्व का स्रष्टा और नियंता है तो एक विशिष्ट जाति यहूदी उसकी कृपा की विशेष पात्र क्यों है? ईश्वर विषयक विश्वासों में एक ओर तो कहा गया है कि वह सारी सृष्टि को समदृष्टि से देखता है तो दूसरी ओर वे मानते थे कि अन्य जातियों की अपेक्षा यहूदी ईश्वर के अधिक प्रिय और कृपा पात्र है।

इसकी कारणमीमांसा एक ही हो सकती है कि याःवेह शुरू में मात्र एक जनजातीय देवता था जो अपने ही लोगों को संरक्षण प्रदान करता था। अधिकतर विद्वान यह मानते हैं

कि इस कड़े एकेश्वरवादी सिद्धान्त के प्रभाव काल में ही बाइबिल की पुस्तकों का, विशेषतः पहली पॉच पुस्तकों का संपादन किया गया है। मूसा की पांच पुस्तकें। उन्हें उनका अन्तिम रूप ई.पू. पांचवीं शताब्दी में ही मिला। पहले की पुस्तकों से यहूदियों द्वारा याःवेह के अतिरिक्त अन्य देवताओं की पूजा के सभी उल्लेख पूरी तरह हटा दिए गए। याःवेह के स्वरूप में उपर्युक्त दोषों के बावजूद यहूदी उसे अपना संरक्षक, मुक्तिदाता, असहायों का रक्षक मानकर उसकी पूजा करते थे। उसे न्याय, प्रकाश, सदाचार का स्रोत माना जाता था।

परंपराएं :-

खतना

बाइबिल में नवजात शिशुओं का खतना करने के रिवाज का जनक अब्राहम को बताया गया है और यह भी कहा गया है इस संबंध में उसे ईश्वर से निर्देश मिला था कि सभी यहूदियों ने अपना खतना करवाया हुआ हो।

निश्चित ही यह रिवाज पुराना है। मगर विद्वान मानते हैं कि यह अत्यंत प्राचीन दीक्षा अनुष्ठानों का अवशेष है। ऐसा माना जाता है कि यह अरब की सेमेटिक जनजातियों में अत्यंत प्राचीन काल से मौजूद था। यहूदी भी उन्हींमें से एक जाति है। कुछ अन्य विद्वानों का कहना है कि यहूदियों ने उसे मिस्त्रियों से सीखा था। वहॉ यह रिवाज अफ्रीका के अन्य जनों की तरह ही बहुत पहले से ही प्रचलित था।

दीक्षाओं की अधिष्ठात्री प्रेतात्मा को समर्पण

एक आदिम कालीन प्रथा थी, किशोरों को दीक्षा समारोहों की अधिष्ठात्री प्रेतात्मा को समर्पित करने की। बाइबिल के अनुसार याःवेह भी मांग करता है कि पूजक अपने पहले बच्चे को उसे समर्पित करें।

जीवनदृष्टि -

प्राचीन यहूदियों की जीवनदृष्टि धार्मिक विश्वासों पर आधारित थी। लेकिन वे धार्मिक समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न नहीं करते थे। बल्कि प्राचीन चली आयी परिपाटियों पर ही चलने में विश्वास करते थे।

यहूदी धर्म पूरी तरह पार्थिव जीवन से जुड़ा हुआ था और वह वैसा बना भी रहा। वह ईश्वर की सृष्टि का उपभोग करने की वकालत करता है। लेकिन बात केवल इतनीही नहीं है। इसके साथ कई विरोधाभास भी जुड़े हुए हैं| इसके अतिरिक्त दूसरी ओर कहा गया है कि मनुष्य को सुख-दुख की प्राप्ति होना संयोग की बात है। अच्छे आदमी कष्ट पा सकते हैं और बुरे आदमी सुख प्राप्त कर सकते हैं। ज्ञान, अज्ञान से, श्रेष्ठ तो है लेकिन उससे मनुष्य त्राण नहीं पा सकता। ये निराशावादी विचार है। इन्हें 'बुक ऑफ ए बेल जस्टिज में' देखा जा

सकता है। 'बुक ऑफ जॉब' का मूल विषय है सुकर्मी लोग कष्ट क्यों पाते हैं? और सार है कि मनुष्य अपनी क्षुद्र बुद्धि के कारण ही ईश्वर की महिमा को नहीं समझ सकता। इसी कारण कष्टों के लिए उसे दोष देता है। यदि यहूदियों को कष्ट भोगने पड़ रहे हैं तो इसके लिए दोषी स्वयं वे है। वे पाप करते हैं, ईश्वर के आदेशों को नहीं मानते इसलिए ईश्वर उन्हें दंड देता है। मगर वे ईश्वर के विशेष कृपा पात्र फिर भी बने रहते हैं। एक समय आएगा जब याःवेह उन्हें क्षमा कर देगा। इस तरीके से यह धर्म कष्ट पीड़ित जनसामान्य को सांत्वना देता है।

<u>पापों से मुक्ति के लिए कर्मकांड</u>:-

अजाजेल को बकरे की बलि देने की प्रथा थी। लोगों के सभी पापों को इस बकरे के सिर पर थोपकर जिन्दा ही रेगिस्तान में खदेड़ दिया जाता था। इस कृत्य से मानो सारी जाति ही अपने पापों और अपराधों का प्रायश्चित कर लेना चाहती थी।

<u>मरणोपरांत जीवन और प्रतिफल</u> .

मरणोपरांत जीवन, आत्मा की अमरता, मरणोपरांत प्रतिफल इस विषयों पर प्राचीन यहूदी धर्म में धारणाओं का अभाव था। ईश्वर से जो भी दण्ड या पुरस्कार मिलना होगा, यहां इस पृथ्वी पर ही या इसी जीवन में मिलेगा। यदि किसी कारण उसका हकदार उससे वंचित रह जाता है तो वह उसके वंशजों को मिलता है ही। प्रत्येक व्यक्ति की मृत्यु होती है और पारलौकिक जीवन में सुख की कल्पना करना मूर्खता है। अच्छे-बुरे सभी व्यक्तियों का हाल एक सा होता है। उसने मरणोपरांत प्रतिफल के स्थान पर यहूदियों के ईश्वर का कृपा पात्र होने का सिद्धांत प्रतिपादित किया।

<u>विश्वोत्पत्ति संबंधी धारणाएं</u>

इस संबंध में हिब्रू धारणाएं कुछ उलझी हुई हैं| बाइबिल की पहली पुस्तक में विश्व और मनुष्य की उत्पत्ति की दो भिन्न-भिन्न कथाएं आपस में गूंथी हुई है।

ईश्वर ने विश्व की रचना छह दिनों तक की। पाँचवें दिन मछलियां, रेंगने वाले जीव और पक्षी बनाए। छठे दिन स्थलचर जीवों, मनुष्य नर और नारी दोनों को बनाया।

<u>अन्य कथा</u>

ईश्वर ने पहले पुरूष को बनाया। फिर उसके रहने के लिए स्वर्ग का बाग लगाया; ईडन का उद्यान । इसके बाद उसने आदम के लिए मददगार बनाने का निश्चय किया। तरह-तरह के जीव-जन्तु बनाए। आदम ने उस सबके नाम रखे। मगर उनके बीच उसे अपना

उपर्युक्त मददगार नहीं मिला। तब ईश्वर ने, जब वह निद्रावस्था में था, उसकी एक पसली निकालकर उससे स्त्री बनायी।

कुछ विद्वानों के अनुसार उत्पत्ति का दूसरा अध्याय 'जेहोविस्ट' का लिखा हुआ है। वह मिथकीय और लोक आख्यानों पर आधारित है। पहला अध्याय बाद का है। यह पुरोहितों की नियम संहिता से लिया गया है।

<u>कुछ बाइबिल और बेबीलोनी बिंबों में साम्य</u>

बाइबिल में पंखयुक्त केरुबिमों का उल्लेख है| वे बेबीलोनी केरूब अर्थात् मिथकीय पंखयुक्त वृषभों से अलग क्या हो सकते हैं।? बाइबिल में वर्णित मोर्दकाई तथा ईश्यर की कहानी में, ये यहूदियों को आसन्न विनाश से बचाते हैं। इसे असीरी-बेबीलोनी धर्म में वर्णित पूज्य मार्दूक और इश्तर की कथा का रूपांतर माना जा सकता है| यहूदियों का पुरीम नाम का त्यौहार है। उसका मूल भी बेबीलोनी त्यौहार में ढूंढा जा सकता है। बाइबिल में बेबीलोनी विश्वोत्पत्ति मिथकों के प्रभाव के चिन्ह मिलते हैं। बाइबिल के प्रथम मनुष्य-आदम-का नाम, बेबीलोनी मिथक के प्रथम पुरूष या मनुष्य 'आदप' से साम्य रखता है।

<u>मनुष्य के पतन की कल्पना और मृत्यु की उत्पत्ति</u>

बेबीलोनी मिथक में पहले मनुष्य की गलती और देवताओं के मतभेदों के रूप में मृत्यु की उत्पत्ति की कारण मीमांसा दी गयी है। इसी के बदले हुए रूप में बाइबिल आख्यान है, मनुष्य के पतन या पापी हो जाने का। उसमें ईश्वर मनुष्य को अमरता देता है और फिर छिन लेता है। लेकिन उसका कोई तार्किक स्पष्टीकरण नहीं दिया गया।

जेम्स जॉर्ज फ्रेजर का कहना है कि प्रारंभिक मिथक और अब अनुपलब्ध पाठ के अनुसार ईश्वर ने सर्प को लोगों से यह कहने भेजा था कि वे जीवन के वृक्ष के फल खाएँ तथा मृत्यु वृक्ष के फलों से दूर रहें। मगर सर्प बहुत धूर्त था। उसने जानबूझकर ईश्वर के संदेश को बदल दिया। इसके पीछे उसका उद्देश्य था कि जीवन के फल स्वयं चख सके। बाइबिल के पाठ में सर्प ईश्वर के दूत के तौर पर नहीं तो अपनी ही पहल पर काम करता है। हां, उसके कपट का उसे कोई खास लाभ नहीं मिलता।

<u>प्रलय की कहानी</u>

बाइबिल की प्रलय की कहानी और बेबीलोनी प्रलय का आख्यान इनमें बहुत ही साम्य है। नाव में बैठकर बचने वाला 'नूह' है। बाबिलोनी आख्यान में वह 'उत्नपिश्तिम' है। देवता 'एआ' सर्वोच्च देवता 'एनलिल' की उपेक्षा करते हुए अपने कृपा पात्र उत्नापिश्तिम को विनाश से बचाता है और पर्याय से सारी मानव जाति विनष्ट हो जाने से बचा लेता है। बाइबिल में

लोगों का संहार और उध्दार दोनों काम एक ही सर्वशक्तिमान ईश्वर के किए हुए बताए गए हैं अर्थात् बेबीलोनी कथा में उपस्थित तार्किक सूत्र बाइबिल की कहानी में उपलब्ध नहीं है।

यहूदी ऐहिक जीवन की कुछ महत्वपूर्ण बातें .

1) यहूदी ब्रह्मश्चर्य को पाप समझते थे।

2) पत्नी को पति की अधिनता में रहना पड़ता था।

3) कर्ज तो दिया जाता था लेकिन उस पर ब्याज लेना निषिद्ध माना जाता था।

4) यहूदी कानूनी व्यवस्था में जनतांत्रिक प्रणाली को अपनाया गया था। न्यायाधीशों का निर्वाचन जनता द्वारा होता था।

5) राजा को आवश्यकता से अधिक धन एकत्र करने का अधिकार नहीं था और वह निरंकुश सैनिक सत्ता स्थापित नहीं कर सकता था।

<u>कर्मकाण्ड और पुजारियों का स्थान</u>

एकदेवपूजा या मूसा युग में धर्म के नाम पर कर्मकाण्डों एवं बलि आदि को इतना अधिक महत्व प्रदान किया जाने लगा था कि धीरे-धीरे यहूदी धर्म एक नैतिक या आध्यात्मिक धर्म प्रतीत नहीं होने लगा। बाइबिल में लिखा है कि कर्मकाण्ड की रूपरेखा एवं धर्म और पुजारियों का स्थान स्वयं हजरत मूसा ने निश्चित किया था। जैसे-जैसे समय बीतता गया पुजारी वर्ग अधिक प्रबल ओर विलासी होता गया। पुराने जूडा के राजा जोसाई (ई.पू. 621)के काल में धर्म और कर्मकाण्डों का केंद्रीकरण बहुत अधिक बढ़ गया। ५८६ ई.पू. में बेबीलोनी राजाओं द्वारा यरूसलेम पर अधिकार और यहूदियों को बेबीलोन ले जाना, तत्पश्चात ईरान के सम्राट कुरूश के शासन काल में 536 ई.पू. में इन बंदियों का लौटना और येरूसलेम मंदिर का पुनर्निर्माण आदि घटनाएं हुई| साथ-साथ इस काल में पूर्ण एकेश्वरवाद, कर्मकाण्ड का केंद्रीकरण और बाइबिल के संकलित पवित्र पुस्तकों को अपौरुषेय मानना ये बातें भी हुईं। इस काल को यहूदी धर्म के प्राचीन इतिहास का तीसरा काल समझा जाता है| वैसा तो यहूदी धर्म ई.पू. सातवीं सदी में ही एकेश्वरवादी धर्म बन गया था। **पुरोहितों के प्रबल प्रभाव के काल में याःवेह के भक्तों से लगभग हर कदम पर चढ़ावे की मांग की जाती थी। मंदिर के गोदाम दान और चढ़ावे में आयी संपति से पट गए।** मंदिर के पुरोहित उसकी संपत्ति को सुदखोरी के लिए इस्तेमाल करते थे। **यहॉ यहूदी समाज के उस विशेषता की ओर ध्यान खींचा जा सकता है जिसमें सुदखोरी निषिद्ध थी।** सारा कर्मकाण्ड वंशानुगत पुरोहित वर्ग के हाथों में केंद्रित हो गया जो अपनी उत्पत्ति लेवियों की जनजाति से बताता था।

सोलोमन के शासन काल में यहूदी धर्म का इतना पतन हो गया कि धर्म में नैतिकता नाम की कोई चीज नहीं बची। अतः इस पार्श्व भूमि पर धर्म सुधार या परिवर्तन की मांग उठने लगी।

धर्म सुधार

अन्धविश्वासों और आडम्बरों से मुक्ति के लिए धर्म सुधारों की आवश्यकता अनुभव होने लगी। इस सुधार का प्रयत्न करने वाले यहूदी, नबी अथवा पैगंबर थे।

यहूदी नबी

आठवीं सदी ई.पू. से ही एक विशिष्ट श्रेणी के धार्मिक कार्यकताओं के अस्तित्व का प्रमाण मिलता है| हो सकता है वे पहले भी रहे होंगे। ये तथाकथित पैंगबर या नबी थे। शुरू में वे संभवतः निजी तौर पर कार्यरत पुरोहित या और अधिक उचित ढंग से कहें तो सगुनिया तथा भविष्यवक्ता थे।

सोलोमन की मृत्यु के बाद यहूदी राज्य जूडा और इजरायल दो भागों में बंट गया। उनमें वर्ग विरोध बहुत बढ़ते गए। **इस समय ये नबी मानो जनअसंतोष को व्यक्त करनेवाले प्रवक्ता बन गए। बहुत सारे नबी गडरिए और किसान वर्ग से ही आए थे। उन्होंने समाज को भ्रष्टाचार और विलासिता से दूर करने का प्रयत्न किया।** वे ऐसा भी दावा करते थे कि इस कार्य की प्रेरणा स्वयं ईश्वर ने उन्हें दी है। वे नगर के चौराहों पर जनता को इकट्ठा कर उच्च वर्ग में व्याप्त बुराइयों, इतना ही नहीं तो राजाओं के अन्यायपूर्ण शासन के विरूद्ध भी आवाज उठाते थे। इन नबियों ने धर्म के नैतिक पक्ष पर बहुत बल दिया और कहा कि याःवेह को प्रसन्न करने के लिए बलि और अनुष्ठानों की आवश्यकता नहीं। आवश्यकता है दया, प्रेम, पवित्र आचरण और न्यायपूर्ण कार्यों को पुर्नस्थापित करने की। वे दुखी इसलिए थे कि यहूदियों में सामाजिक न्याय की कमी थी । उनका धार्मिक पतन हो रहा था, आर्थिक शोषण हो रहा था। याःवेह उन्हीं लोगों से प्रसन्न होता है जो आपस में प्रेम रखकर सच्चे हृदय से उसकी आराधना करते हैं| वे उसकी शक्ति को सीमित इसलिए मानते थे कि वह अन्याय और कूरता का कारण नहीं हो सकता। याःवेह बुराई से रहित हैं। मनुष्य उसके नाम पर हिंसा का सहारा लेता है यह उसे पसंद नहीं। वे राष्ट्रीय देवता याःवेह की पूजा को पुनर्स्थापित करने के लिए संघर्ष करते थे। कैनानी देवताओं की पूजा का विरोध करते थे। प्राचीन धार्मिक अनुष्ठानिक नियमों के उल्लंघन को पाप कहते थे। यह नया स्वर था| इसके फलस्वरुप समाज में नये विचारों का पदार्पण हुआ। कुछ नबियों के पुस्तकों को बाइबिल संकलन में भी स्थान मिला। इन नबियों में एलिजा, एलिशा, ओमोस, होमिया, आईसेया, माइका, जेरेमिया आदि प्रसिद्ध नबी हुए हैं।

<u>नाजिर</u>-

यहूदी समाज में नाजिरों के नाम से पुकारे जाने वाला एक वर्ग भी था। ये लोग थे, जिन्हें देवताओं को नजर किया जाता था। या फिर लोग स्वयं को भी ऐसा कर लेते थे। इसमें स्त्री और पुरूष दोनों होते थे। समाज में उन्हें संत, भविष्यवक्ता, और असामान्य क्षमताओं से सम्पन्न माना जाता था। उन्हें आनुष्ठानिक शुद्धता और आहार संबंधी वर्जनाओं का काफी कड़ाई से पालन करना पड़ता था। महाबली सैमसन का नाम तो आम तौर पर सभी ने सुना है। उसे आजीवन नाजिर बताया जाता है। बड़ा होकर वह असामान्य बलवान निकला। लड़ाइयों में उसने यहूदियों का नेतृत्व भी किया। लेकिन उसके साथ एक किंवदन्ती जुड़ी हुई है। उसकी सारी शक्ति उसके बालों में थी। ज्यों ही धोखे से उसके बाल काट दिए गए उसकी सारी शक्ति जाती रही।

<u>भौतिक स्थितियों के साथ बदलते विचार-</u>

यहूदी पहले से ही एक बहुत लम्बे अन्तराल तक राजनीतिक स्वतंत्रता से वंचित रहे। वे भिन्न-भिन्न शासकों की अधीनता में रहे। उन्होंने कई बार विद्रोह करने का प्रयत्न भी किया। लेकिन सफलता बहुत सीमित रूप में मिली और वह भी अल्पकालिक रही। दरम्यान भौतिक जीवन की स्थिति के अनुरूप उनके मध्य अलग-अलग विचारों का उद्भव होता रहा। इसमें उनका भिन्न-भिन्न शासन के दौरान भिन्न-भिन्न संस्कृतियों के साथ संपर्क भी एक महत्वपूर्ण कारण रहा।

<u>बेबीलोनियन बन्दी जीवन का युग-</u>

बेबीलोनियन जीवन दर्शन से प्रभावित होकर यहूदी मानने लगे कि ईश्वर सर्वशक्तिमान है| हम उसके कार्यों के रहस्य को नहीं समझ सकते। अतः हमें उसकी इच्छाओं को, बिना किसी विरोध के मान लेना चाहिए।

<u>ईरानी अधिनता</u>-

छठीं-चौथी शताब्दी ई.पू. में, ईरानी सम्राटों की अधीनता के कारण यहूदियों का ईरानी धर्म के संपर्क में आना अनिवार्य ही था।

बाइबिल में बुराई के विषय में जो विचार है उसके अनुसार यहूदियों द्वारा पराए देवताओं की पूजा करने पर उन्हें वास्तविक देवता-ईश्वर दंड देता है| स्वर्ग में वर्जित वृक्ष का फल मनुष्य द्वारा खाने के लिए कारण सर्प है।

लेकिन उत्तरकालीन ईसाई कल्पनाओं के अनुसार मनुष्य को बहकाकर इस वर्जित फल को खाने के लिए प्रवृत्त करने का काम शैतान करता है।

यहूदी घर्म में अब तक एक दुष्ट आत्मा या ईश्वर की कल्पना का सर्वंकष दृष्टि से विरोधी बिंब नहीं था और बाइबिल की शुरू के पाठों में भी उसका अभाव है। विद्वानों के अनुसार इसका आविर्भाव मजदा धर्म के प्रभाव का ही परिणाम होना चाहिए। केवल **'जॉब की पुस्तक' में शैतान का जिक्र है, जो जॉब की अटल धर्मनिष्ठा को तोड़ना चाहता है। लेकिन यह सब वह केवल ईश्वर की आज्ञा से ही करता** है। कहीं ऐसा उल्लेख भी मिलता है कि लोगों को कभी-कभी अपने वश में कर लेने वाली दुष्टात्माएं ईश्वर से ही पैदा होती हैं।'न्यायियों के वृतान्त' में ईश्वर एक बुरी आत्मा को यहूदियों के बीच भेजता है। वह बार-बार राजा साल के पास आती थी और उसे सताती थी। **भिन्न-भिन्न किताबों में भिन्न-भिन्न कहानियॉ मिलती हैं।**

लेकिन **विद्वान, पूरे साहित्य पर गौर करने के बाद इसी नतीजे पर पहुॅचते हैं कि ईश्वर की विरोधी दुष्टात्मा का विचार, बुराई के राज्य का विचार यहूदी धर्म के लिए एक बाहरी चीज है। इस तरह इस युग में उनके धर्म में एक द्वैतवादी भावना का समावेश** हुआ।

<u>रोमन आधिपत्य-</u>

एक जाति के आधिपत्य से होते हुए, दूसरे के आधिपत्य में जाते-जाते वे रोम के आधिपत्य में भी रहे। इस लम्बे अन्तराल के दरम्यान उनका उत्पीड़न बढ़ता ही रहा। इस **सबका परिणाम यह हुआ कि उत्पिडकों से मुक्ति के लिए स्वयं के संघर्ष में विश्वास के स्थान पर किसी अलौकिक मदद में विश्वास उत्पन्न हुआ।** किसी उद्धारकर्ता, मसीहा जो परदेशी अत्याचारियों से यहूदी समाज को मुक्ति प्रदान करेगा, के प्रति आस लगाए बैठने की प्रवृत्ति ने जन्म लिया। **विशेष रूप से रोमन काल में यहूदियों के बीच फैला हुआ मसीहावाद का यह विचार भी यहूदी घर्म के लिए एक नयी बात थी।** अब वे विश्वास करने लगे कि शीघ्र ही संसार में एक मसीहा आएगा। तब ईश्वरीय राज्य की स्थापना होगी और समस्त संसार में ज्ञान का प्रकाश छा जायेगा।

मसीहावाद से ही घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ एक अन्य नया विचार भी उभरता है। पहले यहूदी लोगों का स्वप्न था, विदेशी शासन का अन्त और स्वतंत्र यहूदी राज्य की स्थापना। लेकिन बाद के साहित्य में परमानन्दी भावी जीवन की बात कही गयी है। आने वाले युग को 'ओलाम हब्बा' कहा गया है| । इस ओलाम हब्बा में सभी धर्मपरायण लोगों को उचित पुरस्कार मिलेगा। मरणोपरांत जीवन, मृतकों के पुनरूज्जीवन में विश्वास की घुधली छायाएं दिखना शुरू हो जाती हैं। यह एक नयी शुरूआत थी। अभी तक यहूदी धर्म शुद्ध लौकिक था। वे परलोक में अधिक विश्वास नहीं करते थे। परन्तु अब उनका धर्म धीरे-धीरे परलोकवादी हो गया।

विश्व के अन्त, मृतकों के पुनरूज्जीवन, मरणोपरांत प्रतिफल और अंतिम न्याय में विश्वास आदि ईरानी प्रभाव के परिचायक है।

इस प्रकार यहूदियों के धार्मिक विश्वासों में समय-समय पर अनेक परिवर्तन हुए।

<u>हेलेनेस्टिक युग-</u>

हेलेनिस्टिक काल में मिस्र, सीरिया, लघु एशिया और अन्य भूमध्य सागरीय देशों में काफी यहूदी रहते थे। समय के साथ यहूदी अन्य भागों में भी जा बसे। तीसरी-दूसरी शताब्दी ई.पू. में बाइबिल की सभी पुस्तकों का यूनानी में अनुवाद हो गया। बाइबिल (ओल्ड टेस्टामेंट) के यूनानी अनुवाद से यहूदी और अन्य घार्मिक दर्शनों के परस्पर समीप आने में मदद मिली। इस कारण कई समन्वयवादी और प्रत्ययवादी धार्मिक पद्धतियां उत्पन्न हुईं। इन्हीं विचार पद्धतियों ने ईसाई धर्म के सिद्धान्तों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

<u>तलमूद (यहूदी विधि संग्रह)-</u>

तीसरी-चवथी शताब्दी में बेबीलोन और फिलीस्तीन के यहूदियों ने तैयार की हुई यह एक धार्मिक रचना है। इसके दो संस्करण मिलते हैं, येरूसलेमी तलमूद और बेबीलोनी तलमूद। आगे चलकर अर्थात् छठीं-दसवीं शताब्दियों में तलमूद में और भी अनेक व्याख्याएं जोड़ी गयीं। तलमूद में यहूदियों के रोजमर्रा के जीवन के धार्मिक तथा विधिक नियमों को संकलित किया गया है। ईसवी की पहली शताब्दी से यह यहूदी समुदाय के धार्मिक विधियों, सामाजिक जीवन इतना ही नहीं, यह कहना अधिक उचित होगा कि वह पूरे यहूदी जीवन का आधार बन गया। यहूदियों का अपना कोई राज्य और लौकिक शासन नहीं था। वे बिखरे हुए समुदायों में भिन्न जातीय और भिन्न धर्मीय आबादी के बीच रह रहे थे। समुदायों के नेताओं ने इस स्थिति का लाभ उठाते हुए, उन पर अपना पूर्ण नियंत्रण कायम कर लिया। आगे चलकर इन नेताओं को रब्बी कहा जाने लगा।

तलमूद में यहूदियों के दैनंदिन जीवन के सभी पहलुओं के विषय में विस्तार से निर्देश और नियम बताए गए हैं। हर धर्मपरायण के लिए जो चीजें वर्जित होनी चाहिए उसकी लम्बी सूची भी दी गयी है। इन निर्देशों और प्रतिबंधों की संख्या 613 है। विश्व के किसी और धर्म में जीवन के विविध पहलुओं के विषय में इतने विस्तृत और सूक्ष्म निर्देश नहीं दिए गए हैं। लेकिन समय के साथ बदलती परिस्थितियों में इन सभी बातों पर प्रत्यक्ष अंमल होना मुश्किल और कभी-कभी तो असंभव होना अपरिहार्य है। अतः उन सबकी दूसरे ढंग से व्याख्या करना या फिर उन्हें सीधा-सीधा अनदेखा करना यह बात आवश्यक हो गयी। रब्बियों ने यह किया भी। रब्बी परामर्श दे सकता था। जब भी कोई कठिनाई उत्पन्न होती थी और आस्तिक यहूदी उनके पास जाते थे तो वे तलमूद के आधार पर उस कठिनाई का हल बताते

थे। अधिकतर इसका स्वरूप यह होता था कि नियम के पालन का दिखावा करते हुए उनके बिना ही कैसे काम चलाया जाए। हमारे यहॉ पंडित से विशेष अनुरोध करने पर वह तुम्हारी सुविधा के अनुकूल विवाह आदि का मुहूर्त आदि उपलब्ध करा देता है| वेसे ही यह हल होते थे। इस सलाह का महत्व आदेश इतना ही होता था। प्रत्यक्ष में इस सबके लिए रब्बी आर्थिक अपेक्षा रखता था। अर्थात् समाज के सम्पन्न तबके के हित में ही आम तौर पर निर्णय होते थे। लेकिन यहॉ ध्यान में रखने लायक बात यह है कि रब्बी, ईसाई पादरी के समान कोई धार्मिक पदाधिकारी नहीं होता था। उसका दर्जा केवल एक विद्वान का था।

हर आस्थावान यहूदी का सारा जीवन धार्मिक और कर्मकांड विषयक निर्देशों तथा वर्जनाओं से जकड़ा हुआ रहता था। इससे यहूदी लोगों का अन्य धर्मों के लोगों के साथ अलगाव बना रहा। संकीर्णता और धार्मिक कट्टरता बनी रही।

निर्देशों के कुछ उदाहरण-

1) बच्चे के आठ दिन का होते ही खतना करना।

2) यहूदियों को केवल कोशेर (हलाल) का गोश्त खाने की अनुमति है। अन्य सभी प्रकार का गोश्त अशुद्ध माना जाता है।

3) पुरूष का पहनावा लंबा, एक ही कपड़े का बनाया हुआ और कमर के नीचे जेबोवाला होना चाहिए। सिर हमेशा यहां तक की सोते हुए भी ढंका हुआ रहना चाहिए।

4) स्त्रियों पर जो प्रतिबंध थे उसमें प्रमुख थे-

I) वह अदालत में गवाह नहीं बन सकती थी।

II) सड़क पर नंगे सिर नहीं निकल सकती थी।

<u>यहूदी संप्रदाय-</u>

मध्य युग के आरम्भ में, यहूदी भूतपूर्व रोमन साम्राज्य के सभी प्रान्तों में और उसकी सीमाओं से भी दूर-दूर तक बस गए। स्पेन और आगे चलकर जर्मनी में भी उनकी बडी आबादी थी। यहॉ भी भिन्न-भिन्न यहूदी संप्रदायों का आविर्भाव हुआ।

<u>माइमोनिद(Moimonides)</u>

मुस्लिम तर्कबुद्धिवादियों के विचारों से सहमत एका बड़ा चिंतक मिस्र में हुआ। उसका काल 1135-1204 ईस्वी था। उसका नाम था मूसा बेन माइमुन । उस पर अरस्तूवाद का प्रभाव था। उसके अनुसार, संज्ञान का अंतिम ध्येय परम सत्य के लिए तर्कबुद्धिमूलक

आधार प्रदान करना है। धार्मिक कठमुल्लाओं ने उसके विचारों के कारण उसे काफी सताया। 'द्विविधाग्रस्त का पथ प्रदर्शक' नामक उनकी कृति यूरोप में काफी लोकप्रिय हो गयी थी।

<u>कबालावादी प्रवृत्ति-</u>

यह स्पेन में विशेष प्रबल थी और इस्लामी रहस्यवाद से प्रभावित थी। उसकी जड़ें नवप्लेटोपंथ में थीं। हिब्रू में कबाला का अर्थ है परंपरा। इस संप्रदाय की प्रमुख कृति थी 'जोगार' जिसकी रचना तेरहवीं सदी में हुई| इस संप्रदाय के विचारों का सार था-

1) ईश्वर अनंत अनिश्चित, निर्गुण है।

2) विश्व ईश्वर का ही रूप है।

3) मनुष्य केवल नामों, इन नामों के अक्षरों और उनके समानुरूप संख्याओं के गूढ़ अर्थ के सहारे ही ईश्वर ज्ञान के निकट पहुँच सकता है। कबालावादी, संख्याओं को मानो ईश्वर की गूढ़ शक्तियॉ मानते थे। वे जादुई मंत्रों, आदि का अध्ययन करते थे। वे मानते थे कि बुराई नाम की कोई चीज नहीं है। जिसे हम बुराई कहते हैं वह वास्तव में नेकी का, अर्थात् ईश्वर का बाहय आवरण मात्र है। यह एक तरह से सामाजिक अन्यायों का औचित्य स्थापन का प्रयत्न था।

उनका पुनर्जन्म में विश्वास था| मरे हुए पापी की आत्मा फिर से किसी मनुष्य अथवा जीव के रूप में जन्म लेती है और जन्म-मरण का यह सिलसिला तब तक चलता रहता है जब तक आत्मा पापों से पूरी तरह मुक्त नहीं हो जाती। इसके बाद वह पवित्र आत्माओं के लोक में पहुँच जाती है।

उनका दुष्ट प्रेतात्माओं में भी विश्वास था। वे बीमारों के शरीरों से इन दुष्टात्माओं को भगाने के लिए स्वयं तरह-तरह के कपटी तरीके उपयोग में लाते थे।

<u>हसीदी आंदोलन-</u>

18 वीं सदी के मध्य में हसीदी आंदोलन को संगठित रूप प्राप्त हुआ। इसका प्रभाव क्षेत्र दक्षिण पश्चिमी रूस था। यहॉ यहूदियों के गरीब तबकों की स्थिति बहुत ही दयनीय थी। इसकी स्थापना 'इजरायल बेश्त' ने की थी। उसका कहा था-

रब्बियों की पंडिताई और बहुसंख्यक आनुष्ठानिक नियमों का पालन अनावश्यक है। मनुष्य को प्रार्थना और भक्ति में स्वयं खोकर ईश्वर के प्रत्यक्ष साक्षात्कार के लिए प्रयत्न करना चाहिए। लेकिन ईश्वर से साक्षात्कार केवल धर्मपरायण या सादिक या सन्त लोगों को ही हो सकता है।

आगे हसिदों में सादिकों के यानी सन्तों के पूरे के पूरे खानदान पैदा हो गए। जो अपने आशीर्वाद के बदले में आस्तिक लोगों को बेशर्मी से ठगते थे।

कुछ समय तक रब्बियों और हसीदियों में आस्था रखने वाले अनुयायियों में अच्छा खासा संघर्ष चलता रहा।

<u>जर्मनी-</u>

आधुनिक काल में एक आंदोलन ने, जर्मनी में (हस्काला) प्रबोधन का रूप लिया। इसका उद्देश्य था धार्मिक कायदे-कानूनों में नरमी लाना| लेकिन आगे चलकर वह भी कट्टर यहूदीवाद में बदल गया। यह फिलीस्तीन में राष्ट्रीय यहूदी राज्य के पुनर्स्थापना की मांग करता था।

सद्दुकी : ये मरणोपरांत जीवन में विश्वास नहीं करते थे।

फरीसी : ये मरणोपरांत जीवन में विश्वास करते थे।

एस्सेनो : इसके अनुयायी सादगीपूर्ण जीवन बिताते थे। अनुष्ठानों में विश्वास नहीं करते थे। सामुदायिक संपत्ति और उपभोक्ता कम्युनिज्म का पुरस्कार करते थे। उनका मरणोपरांत जीवन में विश्वास था। यहॉ धर्मपरायण लोगों को उनके सुकर्मों का पुरस्कार मिलता है।

<u>इजरायल का राष्ट्रीय धर्म-</u>

आज इजरायल यहूदी धर्म को अपना राजकीय धर्म मानता है और रूढ़िवादी यहूदी धर्म को पुनरूज्जीवित करने के प्रयत्न हो रहे हैं। फिर भी बहुसंख्यक यहूदी, विशेषतः गरीब तबकों के लोग, दस्तकार, व्यापारी और मजदूर आदि के भौतिक जीवन के उत्थान में इन प्रयत्नों का कितना योगदान है, यह अनुसंधान का विषय हो सकता है| आज इस धर्म का प्रमुख पीठ 'सिनमॉग' है और दर्शन मसीही रहस्यवाद से ओतप्रोत है।

<u>यहूदी धर्म का अन्य धर्मों पर प्रभाव-</u>

यहूदी समय-समय पर विभिन्न धर्मानुयायियों के नियंत्रण में रहे। फलस्वरूप जैसा अन्य धर्मों का प्रभाव उनपर पड़ा वैसा ही यहूदी धर्म का प्रभाव अन्य धर्मों पर पड़ा। यहूदी धर्म के अनुयायी काफी बड़े भूभाग में फैल गए।

यहूदी नबियों ने जिस नैतिक धर्म का विकास किया, उसे बाद में ईसाइयों ने अपने धर्म की पृष्ठभूमि के तौर पर स्वीकार किया। ईसाइयों ने ओल्ड टेस्टामेंट को अपनी बाइबिल का अन्तिम अंग स्वीकार कर लिया। यहूदियों के दस आदेश कानून, जलप्लावन और जगत उत्पत्ति की कथाएं तथा ईश्वर का विश्वनियामक और संरक्षक का स्वरूप आदि बातें ईसाइयों द्वारा अपना ली गयी। ईसा मसीह स्वयं यहूदी थे। फर्क इतना है कि यहूदी नबियों का मत

था कि एक दिन दैवीय राज्य की स्थापना होगी और उस राज्य के अधिकारी केवल यहूदी होंगे। ईसाइयों के अनुसार इस दैवीय राज्य का अधिकारी मनुष्य मात्र होगा। ईसाई, ईसा को ही मसीहा मानते हैं लेकिन यहूदियों के विश्वास के अनुसार अभी इस मसीहा ने जन्म नहीं लिया है। यहूदी धर्म के प्रभाव के कारण ही ईसाई और इस्लाम धर्मों ने एकेश्वरवाद में विश्वास प्रकट किया ऐसा कहा जाता है| विश्व के इन समकालीन दो सबसे बड़े धर्मों का, यहूदी धर्म का एक बड़ा भाग अभिन्न अंग समझा जाता था।

<u>यहूदियों की विशेष देन-</u>

साहित्य और धर्म के क्षेत्र में यहूदियों ने काफी उन्नति की थी। 39 अध्यायवाली 'ओल्ड टेस्टामेंट' या पुरानी बाइबिल को सर्वोत्तम साहित्यिक कृति और विश्व के श्रेष्ठतम ग्रंथों से एक माना जाता है। इसे ही यहूदी धर्म का स्रोत भी माना जाता है। इसके साथ-साथ 'एक्झोडस' यहूदियों की पवित्र पुस्तक है। इन धार्मिक पुस्तकों में यहूदियों का इतिहास और धार्मिक, नैतिक नियमावली है। यहीं किताबें ईसाइयों के लिए भी पवित्र है।

कला के क्षेत्र में यहूदियों की देन बहुत कम है। राजनीति के क्षेत्र में तो लगभग शून्य है। सामाजिक दृष्टि से मिस्त्रियों और बेबीलोनियों का समाज यहूदियों से प्रगत था।

<u>यहूदियों के पर्व-</u>

1) **रोशहसन**

यह नववर्ष का पर्व है जो शरद में आता है ।

2) **योम किपूर**

यह पाश्चाताप दिवस है जो नववर्ष के दसवे दिन आता है।

यह दिन यहूदी पंचाग का सबसे पवित्र दिन है।

इस दिन वे प्रार्थनाएं, उपवास आदि रखते हैं।

3) **पास्का**

यह पर्व पुराने यहूदी पंचांग के निसान महीने की चौदहवीं तारीख को मनाया जाता है।

4) **सैबथ**

यह योम किपूर के बाद सबसे महत्वपूर्ण पर्व है| यह पास्का के बाद पचासवे दिन मनाया जाने वाला त्यौहार है। प्राचीन काल में यह अनाज बटोरने का त्यौहार था।

वैसे सैबथ यहूदियों के सप्ताह का अंतिम दिन होता है| इस दिन उनके यहॉ अवकाश होता है । यह शुक्रवार को सूर्यास्त से प्रारंभ होकर शनिवार के सूर्यास्त के समय समाप्त होता है।

5) **सुक्कोथ**

यह शरद में मनाया जाने वाला सात दिवसीय पर्व है। धार्मिक परंपरा के अनुसार इस दरम्यान विशेष झोपड़ी में रहना चाहिए।

6) **पुरीम**

बाइबिल में वर्णित ईस्थर और मोर्दकाई की कहानी की याद में मनाया जाने वाला बसंतकालीन त्यौहार है।

प्रकरण-छह

फिनीशिया

फिनीशिया एक संकरी सी पट्टी पर स्थित था। अनेक पश्चिमी सामी कबीले वहॉ रहा करते थे। फिनीशिया स्वतंत्र नगरों और बस्तियों का समूह था। **प्राचीन काल में फिनीशिया के लोग व्यापारियों और निपुण नाविकों के रूप में विख्यात** थे। उन्होंने व्यापार के दौरान कई जगह अपनी बस्तियॉ या उपनिवेश बसाएं। अफ्रीका के उत्तरी तट पर फिनीशियाइयों ने ही कार्थेज जैसा नगर बसाया था। जिसे अन्त में रोम ने नष्ट कर डाला। **फिनीशियाई संस्कृति की सबसे बडी उपलब्धि एक वर्णमाला का विकास है**। यह बात ई.पू. तेरहवीं सदी की है। इस वर्णमाला को आगे चलकर यूनानी वर्णमाला के लिए और इस प्रकार लेखन के अनेक उत्तरवर्ती स्वरूपों के लिए आदर्श का काम देना था। यह निःसंदेह व्यापार के तीव्र विकास और व्यापारिक दस्तावेजों को बार-बार और शीघ्रता से तैयार करने की आवश्यकता का परिणाम था। इस वर्णमाला में 22 अक्षर थे और इसका आधार मिस्री चित्रलिपि तथा बाबुली कीलाक्षरों की लिपि थी।

देवता-

फिनीशियाई एशिया मायनर की एक प्रसिद्ध समुद्रयात्री जाति थी। लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि उनके धर्म में समुद्र से सम्बद्ध कुछ भी नहीं है। उनके देवता स्थलीय थे। वे बहुत करके पशुपालक जीवन से संबंध रखते थे। इसी कारण देवताओं को वृषभों की आकृति का चित्रित किया जाता था। प्राचीन उगारित (फिनीशिया का उत्तरी भाग) में 1929 के बाद मिले लेखों और अन्य सामग्री से फिनीशियाई धर्म के एक और प्राचीन संस्तर का पता चलता है। यह अलेयिन-एलीउ-.एडोनिस आदि देवताओं की पूजा से सम्बन्ध रखता है। ये सारे देवता उर्वरता के देवता है। कृषि जीवी समुदायों के देवता हैं| इससे एक अनुमान किया जा सकता है कि फिनीशियाई कभी देश के भीतरी भाग में रहते थे।

नृशंसता-

फिनीशियाई नगरों में देवताओं की पूजा में जितनी नृशंसता देखने को मिलती है उतनी शायद दुनियॉ के किसी अन्य सभ्यता में न मिले। देवता के भक्त से उसकी सबसे प्रिय चीज मांगी जाती थी। माता पिता से उनके नवजात बच्चे छिन लिए जाते थे और देवताओं की मूर्तियों के सामने उन्हें बलि चढ़ा दिया जाता था। इस खूनी रिवाज का उल्लेख तत्कालीन लेखकों ने तो किया ही है, उसकी पुष्टि पुरातात्विक प्रमाणों से भी हुई है। मंदिरों की खुदाई में वेदी के अवशेषों के करीब बड़ी मात्रा में बच्चों की हड्डियॉ मिली हैं । फिनीशियाई देवता 'मोलोख' का नाम एक नृशंस देवता का पर्यायी बन गया जिसका प्रिय काम मनुष्यों का भक्षण था। कुछ विद्वानों का कहना है कि स्वयं मोलोख नाम 'मौल्क' शब्द से निकला है इसका अर्थ है बच्चों की बलि।

प्रकरण-सात

मिस्र

प्राचीन मिस्र की आबादी विभिन्न कबीलों से मिलकर बनी थी। ये कबीले नील की घाटी में बहुत पहले से रहते आये थे। आबादी का मुख्य उद्यम कृषि था।

नील दक्षिण से उत्तर की ओर बहने वाली नदी है। अन्तिम हिमयुग के समाप्त होते समय सहारा में मरूभूमि की जगह घास का मैदान होना चाहिए ऐसा अनुमान किया गया है। फल-फूल संचय और शिकार अवस्था से आगे बढ़कर मनुष्य सर्वप्रथम नील उपत्यका में ही आबाद हुआ ऐसा माना जाता है। (लेकिन कुछ अन्य पुरातात्विक उत्खनन कार्यों के कारण कुछ शंका उपस्थित होने लगी है।) इन खानाबदोशों को पशु पालन आरंभ करने के लिए यहाँ चारागाह की सुभीता थी। पशुपालन अवस्था में मनुष्य का घुमन्तुपन कम हुआ। कृषि के लिए सर्वप्रथम जिस जौ की ओर उसका ध्यान गया वह यहाँ जंगली जौ के रूप में उपलब्ध था। यहीं जौ पशु के चारे के बाद, मनुष्य के भोजन में रूपांतरित हो गया। खेती के बाद तो मनुष्य स्थायी घर बनाकर रहने लगा। जौ के खेतों को बढ़ाने के साथ-साथ उसने पानी की छोटी-छोटी नहरें निकालकर सिंचाई शुरू की। नीलवासी इस प्रकार कृषि के ही नहीं, सिंचाई के भी आदिम आविष्कारक हुए ऐसा माना जाता है।1

(मानव-समाज:राहूल सांस्कृत्यायन:पृष्ठ ४९)

इस इलाके में कृषि के लिए सिंचाई प्रणालियों का निर्माण आवश्यक था। यह निर्माण कार्य अलग-अलग परिवार और गोत्रों की क्षमता के बाहर था। जमीन के छोट-छोटे टुकड़ों के लिए नहरें खोदना लाभदायक भी नहीं था। इसलिए कई-कई गोत्र समुदायों से निर्मित अधिकाधिक बड़े समुदाय अस्तित्व में आने लगे। प्राचीन यूनानी इतिहासकारों के अनुसार यह समुदाय 'नोम' कहलाते थे। धीरे-धीरे नोम भी आपस में मिलने लगे। नोमपतियों अर्थात् शासकों का उदय हुआ। मिस्र में दो राज्यों दक्षिणी और उत्तर का उदय हुआ। दोनों में संघर्ष चलता रहा। अन्त में दक्षिण की विजय और मिस्र का एकीकरण हुआ। राज्यसत्ता की स्थापना हुई।[1] उत्तर-पूर्वी अफ्रीका में नील घाटी संस्कृति का केन्द्र बनी।

(1:संक्षिप्त विश्व इतिहास भाग1:पृष्ठ.20)

मिस्र संस्कृति के प्रति दुनियॉ को जो कुतूहल है वह, वहॉ के पिरामिडों और उससे संबंधित रहस्यपूर्ण किस्सों के कारण। मिस्र के पिरामिड अपनी भव्यता और कलात्मकता के फलस्वरूप आज भी संसार के आश्चर्यों में गिने जाते हैं।

पुरातन राज्य में पिरामिड बनाने की अद्भुत प्रथा विद्यमान थी। ये पत्थर के विराटकाय समाधि गृह थे जिनका मिस्र के सम्राट फराहों और उनके दरबारी अपने जीवनकाल

में ही अपने लिए निर्माण करवा लेते थे। इजिप्त की राजधानी काहिरा से लगभग 300 किमी पर एक जगह है, जिसे 'व्हॅली ऑफ किंग्ज' कहा जाता है। वहॉ 61 समाधियॉ खोज निकाली गयी थीं। मिस्र का सबसे बड़ा पिरामिड काहिरा के निकट गिजेह में है। इसे मिस्त्री सम्राटों के चतुर्थ वंश के प्रसिद्ध शासक 'खूफू' ने बनवाया। इसकी ऊँचाई 146.5 मीटर और आधार पर प्रत्येक बाहु 230 मीटर है। इसके निर्माण में दो-दो टन या अधिक भार के 23,00,000 पाषाण खंड लगे हुए हैं| इस पिरामिड को बनाने में इसके बावजूद भी बीस साल लगे थे कि मिस्र की सारी देहाती आबादी को प्रति तीसरे महीने, एक-एक लाख के हिसाब से जबरन इस काम पर लगा दिया जाता था। पुरातन राज्य में शाही परियोजना का काम इसी तरीके से करवाया जाता था। लेकिन कुछ समय पूर्व दूसरे रामसेस नामक सम्राट की कब्र ढूंढ निकाली गयी। वह व्याप्ति की दृष्टि से सबसे बड़ी कब्र है। इस विशाल कब्र में 62 कमरे मिले। ऊपर जिसका उल्लेख किया गया है या खूफू या चिऔप्स के पिरामिड की एक अन्य विशेषता यह है कि उसकी दीवारों की लम्बाई में केवल 7.9 इंच का अंतर है। चिओप्स का कालावधि 2545-2520 ई.पू. का है।

वैसे तो पिरामिडों का निर्माण 2686-2181 ई.पू. के दरम्यान प्रारंभ होकर अपने स्वर्णिम युग में पहुंचा। पहला पिरामिड तीसरे वंश के राजा 2606-2613 ई.पू. जोसर के युग में बनाया गया। इसे 'स्टेप पिरामिड' कहा जाता है| इस पिरामिड की रचना का श्रेय राजा के मुख्यमंत्री, वास्तुकला और विभिन्न अन्य कलाओं के आचार्य 'इम्होटेप' को है। पिरामिड पर इम्होटेप का नाम खुदा हुआ भी है।

गीजा का दूसरा पिरामिड चिफ्रेन के नाम से जाना जाता है| इसी के पास चिफ्रेन के अंतिम संस्कार का मंदिर तथा उसके रक्षक 'स्फिंक्स' की मूर्ति है । गीजा का स्फिंक्स यह मानवी चेहरेवाला पत्थर का सिंह है। गीज़ा का तीसरा पिरॅमिड 'मायसीरिनस' का एक छोटा पिरामिड है। इसी के बाद गीजा में पिरामिडों का निर्माण बंद हुआ।

ऐसी कहानियॉ प्रस्तुत हुई थीं कि फराहों की कब्रें खोदनेवाले, मृत्यु को प्राप्त होते हैं। ऐसा शाप कब्रों पर लिखा हुआ होता है, ऐसा भी कहा जाता था। अमेरिकी पुरातत्वविदों को सफलता मिलने के पूर्व 20 अन्य व्यक्तियों ने भी तूतेनखामेन के सिंहासन की लालच में उसके मकबरे में घुसने का प्रयत्न किया था| लेकिन वे रहस्यमय स्थितियों में अपनी जानें गंवा बैठे, ऐसा कहा जाता है| लेकिन प्रत्यक्ष में मकबरे में न कोई जानलेवा वस्तु मिली न माहौल में ऐसे किसी बात को अनुभव किया गया।

प्रश्न यह है कि पहिए का आविष्कार भी उस युग में नहीं हुआ था तो इतने बडे-बड़े पिरामिड कैसे बने? चिओप्स के पिरामिड में लगे लगभग 6500000 टन वजन के पत्थर, बिना किसी यांत्रिक मदत के इतनी ऊँचाई पर कैसे चढ़ाए गए होंगे? पुरातत्वशास्त्रियों में इस

पर आज भी बहस जारी है। उस समय के वास्तुकारों को कुछ ज्यामितीय ज्ञान होगा, लेकिन अभी तक यह पता नहीं चल पाया है कि पिरामिडों को इतने सही समकोण पर खड़ा करने में वे कैसे सफल हुए? कई जगह इनकी दीवारों की जोड़ों में बाल तक घुसाने की जगह नहीं है। इसी को लेकर कुछ विद्वानों को शंका होती है कि वे संभवतः किसी अन्य ग्रह से आयी विकसित सभ्यता द्वारा, लेसर किरणों से काटे गए होंगे। पिरामिडें की आकृति ऐसी है कि जैसे सूर्य से पृथ्वी पर किरण गिर रही हो। इस कारण कोई इसे खगोलीय वेधशालाएं, समझते हैं| कोई अनाज की कमी से बचने के लिए बनाए गए अनाज के भंडार मानते हैं| यह बात ज्ञात है कि पिरामिड शैली के किसी भी भवन में, चीजें बहुत समय तक खराब नहीं होती।

मिस्र का सबसे पुराना पिरामिड बना तब, तांबा तो मिस्रियों को मालूम था। लेकिन प्राचीन मिस्र, मेसोपोटामिया और सिन्धु उपत्यका के लोग लोहे से बिल्कुल अपरिचित थे। खुदाई में जितने घातु के सामान वहॉ मिले वे तांबे के हैं| (ई.पू. 2000 में जब हिन्दी आर्य अफगानिस्तान पहुॅचे, ऐसा समझा जाता है तब उन्हें लोहा ज्ञात नहीं था। लौह शब्द तो संस्कृत में ई.पू. चवथी-तीसरी शताब्दी में भी तांबे के लिए ही उपयोग में लाया जाता था।[1] तांबे के आविष्कार का समय ठीक-ठीक बताना संभव नहीं । ज्यादा से ज्यादा हम यही कह सकते हैं कि वह ई.पू. 4 थी सहस्राब्दि में ज्ञात था। वैसे तो दुनियॉ के सभी भागों और जातियों में ताम्रयुग, एक ही समय आरंभ नहीं हुआ| अमेरिका की सभ्य जातियॉ इन्का, अजतेक, और माया 16 वीं सदी तक ताम्र और पीतल युग में थीं। पिछली शताब्दी तक आदिम आस्ट्रेलीयन, धातु का प्रयोग नहीं जानते थे। ऐसा अनुमान किया जाता है कि पीतल के आविष्कार का समय 1500 ई.पू. है, तो लोहे का 1200 ई.पू.।[2] पुरातत्व खोजों से ऐसा लगता है पिरामिडों में चीने गये विशाल पाषाण खंड, तांबे की छिन्नियों के सहारे ही काटे गए थे। छिन्नी से केवल लकड़ी का पच्चर डालने भर के लिए अवकाश बनाया जाता था। बाकी पत्थर फोड़ने के लिए लकड़ी के भीगने-फूलने से उत्पन्न शक्ति उपयोग में लायी जाती थी। (मानव.समाज १. पृष्ठ63, २.पृष्ठ95)

मिस्री कब्रों में मृतको के संभालकर रखे हुए शरीर यानी ममियॉ हैं। मृतदेह को लपेटकर रखने के लिए जो कपड़ा उपयोग में लाया जाता था, वह भारत से ही वहॉ पहुंचता था। 'ममी' इस शब्द की व्युत्पत्ति 'मुमिया' से होनी चाहिए| मुमिया याने अंबर, शिलाजीत और राख। ईरानी भाषा में मोम को मुमियॉ कहते हैं| ये सारी चीजें उपयोग में लाकर मृतदेह को सुरक्षित रखने की प्रक्रिया की जाती थी इसलिए उसे मुमिया या ममी कहा जाता था। ममी कैसे की जाती थी इसका विवरण किसी भी इजिप्शियन ग्रंथ में उपलब्ध नहीं है। लेकिन हिरॉडॉटस ने सुनी बातों से कुछ टिप्पणियॉ लिखी हैं । उन्हें बाद के परीक्षणों से ठीक पाया गया है| संक्षेप में वह पद्धति इस प्रकार होनी चाहिए–.

मृतदेह की ममी बनाते समय शुरू में शरीर के अंदर से नरम अंग निकाल लिये जाते थे। नथुनों के मार्ग से मस्तिष्क भी निकाल लिया जाता था। शरीर की बायी बाजू काटकर, जठर, फुफ्फुस और आंत दूर की जाती थीं। हृदय तथा मुत्रपिंड शरीर में ही छोड़ दिए जाते थे। बाहर निकाले अवयवों को सुखाकर, कपड़े में लपेटकर एक अलग बर्तन में रखा जाता था। खाली जगह में वनस्पति के रसों में भिगोए गए कपड़े के फाये व लकड़ी का बुरादा भरा जाता था। मसाला भरा हुआ शरीर सोडियम कार्बोनेट में रखकर बाद्र में सुखाया जाता था। इसके बाद उसे साफ करके तेल लगाया जाता था। मिस्र की प्राचीनतम ममियॉ हरे रंग से रंगी हुई मिलती है। शरीर के सारे अंग कपड़े में अच्छी तरह लपेटे जाते थे। नाखुन न गलें और चेहरे का रूप बिल्कुल न बिगड़े इसलिए खास मेहनत की जाती थी। यह सारी प्रक्रिया पूरी होने कई हफ्ते लग जाते थे। मृत्यु के 70 दिन बाद मृतदेह को दफना दिया जाता था। ममी बनाने की यह पद्धति लगभग 3000 सालों तक अस्तित्व में थी। ई.सन् की 4 थीं सदी में इजिप्त में ख्रिस्ती धर्म के प्रभाव में वृद्धि हुई और उपरोक्त पद्धति लुप्त होती गयी।

<u>तूतेनखामेन की कब्र-</u>

सबसे महत्वपूर्ण समझी जाने वाली खोज है, तूतेनखामेन की कब्र की । पुरातत्वविद् हावर्ड कार्टर ने इसे 1922 में खोज निकाला। उसमें जो बेशकीमती खजाना मिला उसे देखकर और सुनकर सारी दुनिया की आखें चौधियॉ गयीं। अन्य कई कब्रों की अमूल्य चीजें समय के दरम्यान, चोरों द्वारा लूट ली गयी थीं। कब्र से सोने के पलंग, कुर्सियां, रथ सिंहासन आदि प्राप्त हुए। इन सारी चीजों में हीरे बिठाए हुए थे। इस मकबरे में चार कब्रें थीं। इसमें एक कब्र पर सोने की अति कलात्मक नक्काशी थी। अन्य दो पर मृतक की रक्षा के लिए देवी-देवताओं के चित्र बनाए गए थे। चौथी में, पत्थर के ताबूत में सोने के एक चमचमाते पूर्णाकृति आवरण में तीन कफनों के अन्दर लिपटी हुई तूतेनखामेन की साडे तीन हजार वर्ष पुरानी ममी थी। शव को भव्य रूप से सजाया गया था। ताबूत में अन्य बेशकीमती आभूषण थे। जिनमें सबसे खास था, हरे कांच, नीलम तथा कार्नेलियन से, मिस्र की दक्षिणी देवी के प्रतीक के रूप में बना नेकलेस। तूतेनखामेन के पूरे शरीर पर 143 बहुमूल्य वस्तुएं थीं।

इस मकबरे से संबंधित दो रहस्य आज तक नहीं सुलझ सके। प्रथम यानी ममी के साथ 150 ताबीज पाये गए थे। ये ताबीज उत्कृष्ट कलाकृतियॉ हैं । इनमें सबसे प्रसिद्ध ताबीज है 'स्कैरब'। इसे जीवन का प्रतीक समझा जाता था और वह सूर्य देवता 'रा' को समर्पित था। शवों को दफनाने के संस्कार के समय स्कैरब को भंवरे की शक्ल के आधार पर बनाया जाता था। उसे हृदय की जगह रखा जाता था। इस ताबीज की पीठ पर एक जादुई मंत्र खुदा होता था, जिसमें देवताओं से अमरता प्रदान करने की प्रार्थना की जाती थी। धीरे-धीरे भंवरा-स्कैरब को शक्ति का प्रतीक माना जाने लगा। बांझ औरतें इस कीट को सुखाकर उसका चूर्ण बना लेती थी और उसका पेय बनाकर पीती थीं। ताकि उनका बांझपन दूर हो। इस ताबीज पर वह एक आंख, एक क्रॉस, एक छल्लेदार शीर्ष के साथ बना हुआ है। ये तीनों

चीजें भी अमरता की प्रतीक थीं। अन्य दो ताबीज हैं 'आई ऑफ होरूस' तथा 'बकल ऑफ इसिस' । होरूस और इसिस ये भी देवता ही हैं। होरूस एक ऐसा देवता माना जाता था जो मृतक के हृदय को अंतिम फैसला देते समय तोलता था। इस धारणा से संबंधित कलाकृतियॉ पुरातत्वविदों को काफी संख्या में मिली हैं| लेकिन अन्य ताबीजों का संकेतार्थ अभी तक ज्ञात नहीं हो सका। अन्य ताबीजों पर बनी आकृतियों का अन्वयार्थ अगर ज्ञात हो सका तो मिस्री समाज की कई प्रथाओं के संबंध में जानकारी प्राप्त हो सकेगी।

दूसरा रहस्य यह है कि ममी की त्वचा जगह-जगह फट चुकी थी और वह सुरक्षित अवस्था में नहीं थी। अगर मिस्र की अन्य कई ममियॉ हजारों वर्षों से सुरक्षित अवस्था में है तो तूतेनखामेन की ममी ही क्यों खराब हुई? कुछ कारण गिनाए गये हैं| लेकिन उनके लिए संशयातीत वैज्ञानिक प्रमाण उपलब्ध नहीं है। तूतेनखामेन 3500 वर्ष पूर्व आयु के केवल दसवे वर्ष में सत्ता पर आया और आयु के इक्कीसवें वर्ष में उसका देहान्त हुआ था।

<u>मिस्र की स्थिति-</u>

<u>वर्ग विभाजन-</u>

मिस्र का समाज पांच वर्गों में विभाजित था।

1)राज्य परिवार

2) सामन्त वर्ग

3) पुजारी वर्ग

4) मध्यम वर्ग

5) दास वर्ग

मिस्र का वर्ग विभाजन भारत की जातिप्रथा इतना कठोर नहीं था। राजपरिवार छोड़कर हर व्यक्ति, कोई भी पेशा अपना सकता था। अर्थात् सामाजिक व्यवस्था लचीली थी। लेकिन उच्च वर्ग और निम्न वर्ग के जीवन स्तर में बहुत बड़ा अन्तर था। दास वर्ग की स्थिति तो बहुत ही दयनीय थी।

<u>मिस्त्री-समाज-</u>

<u>स्त्रियॉ-</u>

मिस्र में स्त्रियों को बड़ा सम्मान प्राप्त था। वहॉ उस समय पर्दे की प्रथा नहीं थी। स्त्रियॉ आर्थिक, सामाजिक, राजकीय कार्यों में भाग लेती थीं । अठारहवें वंश में 'हतशेपसुत' नामक महिला हुई, जिसने अपने देश की बागडोर संभाली थी। वह इस तरह की शासन

संभालनेवाली दुनियां की प्रथम महिला मानी जाती है। वह लोकप्रिय थी और वीरता के लिए प्रसिद्ध थी। उसने स्त्रियों की वेशभूषा का त्याग कर पुरुषी वेशभूषा अपनायी थी। राजवंश को छोड़कर मिस्र में बहुविवाह प्रचलित नहीं था। वेश्यावृत्ति का प्रमाण बहुत कम था। मैक्समूलर ने लिखा है-

"नील नदी की घाटी की सभ्यता के समान, स्त्रियों का ऊँचा स्थान किसी भी सभ्यता में न था। "

कृषि-

मिस्र की भूमि उपजाऊ थी। अतः वह कृषि प्रधान देश था। सिंचाई के लिए वहॉ तालाबों और नहरों का जाल बिछाया गया था। खेती की अधिकतर भूमि, सम्राटों, सामन्तों और पुरोहितों के पास थी। वे श्रमिकों और दासों द्वारा खेती करवाते थे।

पशुपालन-

आय का अन्य साधन पशुपालन था।

उद्योग-

लकड़ी और खनिजों की कमी के कारण उद्योगों के लिए उतना सुविधाजनक माहौल नहीं था।

लेकिन उन्होंने पैपिरस नाम के वृक्ष से कागज का निर्माण किया था। कागज का आविष्कार सर्वप्रथम शायद मिस्र में ही हुआ।[1]

मिस्र में जो भी कारखाने थे, उनमें दासों से मजदूरों का कार्य लिया जाता था।

विज्ञान-

मिस्र में विज्ञान के क्षेत्र में अत्यधिक उन्नति नहीं हुई। वे जोड, घटाना अच्छी तरह जानते थे, लेकिन गुणा से परिचित नहीं थे।[2]

(1+2विश्व की प्राचीन सभ्यताएं:पृष्ठ १४४)

लेकिन एक जगह बस जाने पर, प्राकृतिक परिवर्तनों को समझने का उन्हें अच्छा मौका मिला। उन्होंने देखा कि नील नदी की बाढ़ एक निश्चित समय के बाद लगातार आती रहती है। उन्होंने यह भी देखा कि बाढ़ हमेशा उस समय आती है जबकि लुब्धक तारा कितने मासों तक अस्त रहने के बाद फिर उगना शुरू होता है। उन्होंने लुब्धक के लुप्त होने और उगे रहने के दिन को गिनकर सौर वर्ष का परिमाण जान लिया होगा। अब बाढ आने की भविष्य वाणी पहले की जा सकती थी। जिसने शुरू-शुरू में यह बात खोज निकाली होगी उसे

आसानी से सर्वज्ञ, सर्वशाक्तिमान समझ लिया गया होगा| मानव तत्वज्ञों का कहना है कि कृषि, सिंचाई, वर्ष गणना तथा कितनी ही और विद्याओं का आविष्कार सर्वप्रथम नील तट पर हुआ। (मानव समाज: पृष्ठ ४९)

चिकित्सा-

चिकित्सकों के वर्ग का उदय हो चुका था। लेकिन ओझाओं की लोकप्रियता और अंधविश्वासों के कारण चिकित्सा शास्त्र प्राथमिक अवस्था में ही रहा।

आकाशीय पिंडों की गतियों के प्रेक्षण के आधार पर एक पंचांग बनाया गया था| इसमें वर्ष को बारह महिनों और ३६५दिनों में विभाजित किया गया था|

(संक्षिप्त विश्व इतिहास भाग 1: पृष्ठ 26)

शिक्षा-

प्रारंभिक शिक्षा के स्थान, मंदिरों में स्थित पाठशालाएं थीं और शिक्षक थे पुजारी। आगे की शिक्षा के लिए सरकार की ओर से पाठशालाएं खोली जाती थीं। योग्य विद्यार्थियों के लिए शिक्षा व्यवस्था निःशुल्क थी।

लिपि-

आरंभ में चित्राक्षर लिपि का प्रयोग होता था। इसमें अंदाजन 2000 चित्र थे। कालान्तर में आयी 'हाइरेटिक लिपि' जिसका उपयोग कर पत्र आदि लिखे जाते थे। आठवीं शताब्दी ई.पू. के लगभग एक प्रकार की शॉर्टहैण्ड लिपि 'डिपॉटिक' का विकास हुआ।

साहित्य-

पिरामिड युग का साहित्य अधिकतर धार्मिक है।

मिस्र के सम्राट

ई.पू. तीसरी सदी में मानेथो नाम के इतिहासकार ने ग्रीक भाषा में इजिप्त का इतिहास लिखा। उसमें इजिप्त राज्यों के तीस शासनों के वंशों को गिनाया है वह सूचि आज भी प्रमाणभूत मानी जाती है।

सम्राट को फराओ भी कहा जाता था। मिस्र की शासन प्रणाली में जनतांत्रिक व्यवस्था के लिए स्थान नहीं था। साम्राज्य की सारी शक्ति राजा के हाथ में केंद्रित रहती थीं। उसे सूर्यदेव का प्रतिनिधि समझा जाता था। वहीं सबसे बड़ा पुरोहित और धार्मिक क्षेत्र में भी सबसे सम्मानित व्यक्ति होता था। मिस्र के निवासी बड़े धर्मभीरू थे और धर्म का सबसे बड़ा पुरोहित होने के कारण उसके विरूद्ध किसी प्रकार के विद्रोह को घोर पाप समझते थे।

संक्षेप में मिस्र के राजनीतिक दर्शन को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है|. संसार की उत्पत्ति के समय सूर्यदेव रा ने अव्यवस्था को समाप्त किया। देव व्यवस्था मात की स्थापना की। सूर्य देवता के उत्तराधिकारी सम्राट फराओं ने इस व्यवस्था को निरन्तर बनाए रखने का प्रयत्न किया।

मिस्र की राजनीति में धर्म का बहुत प्रभाव था और पुजारियों का हस्तक्षेप ।

प्राचीन धर्म : लेकिन हम अगर और पीछे गए तो धर्म के प्राचीनतम रूप का हमें पता चलेगा। यह रूप था 'नोमों' के स्थानीय संरक्षक देवताओं की पूजा। नोम उन प्राचीन जनजातियों के अवशेष थे, जो चौथी सहस्राब्दि ईसा पूर्व के अन्त में एक राजा की सत्ता तले एकजुट हो गए थे। लेकिन इन स्थानीय संरक्षक देवताओं की पूजा आगे भी काफी समय तक मिस्री देवताओं की पूजा के साथ बनी रही।

कुछ नोमीय विश्वास बेहद पुराने थे। हर नोम का एक पवित्र जीव होता था। यह किसी न किसी रूप में स्थानीय देवता से जुड़ा होता था। जैसे भेड़, गाय, गीदड़, आइबिस, मोर, मगरमच्छ, बिल्ली आदि। देवता को इस जीव के रूप में या मनुष्य और पशु के मिलेजुले रूप में चित्रित किया जाता था। यह प्राचीन टोटमवाद का ही अवशेष है।

वास्तेत देवी - बिल्ली के सिखाली

होरूस देवता - बाज से संबंधित

टोथ देवता - आइबिस के सिरवाला

अनुबिस - कुत्ते का सिर

सेबेक - घड़ियाल का सिर

सेख्मेत - शेरनी का सिर

हाथोर - गाय का सिर

स्थानीय देवताओं में स्त्री देवताओं की संख्या काफी अधिक है जैसे नैखेब्त, हाथेर, नेइत, नेप्थिस, सेख्मेत । इसे मातृसत्ता का प्रबल अवशेष माना जा सकता है।

आगे ज्यों ही कोई नोम मिस्र के राजकीय एकीकरण का केंद्र बनता था, उसके संरक्षक देवता की सारे राज्य में पूजा होने लगती थी। इनमें से ही कुछ देव मंडल के सर्वोच्च स्थान पर पहुंचे। देवपूजा का केंद्रीकरण साथ-साथ राज्य सत्ता के केंद्रीकरण का भी साधन बन जाता था। सबसे प्राचीन अखिल मिस्री देवता 'बाज होरूस' था। इसकी पूजा करनेवाले राजाओं ने ही सबसे पहले मिस्र का एकीकरण किया था। यह बात चौथी सहस्राब्दि ईसा पूर्व के अंतिम

कालावधि की है। उन्होंने अपने जनजातीय देवता को अखिल मिस्री सूर्य देवता में परिवर्तित कर दिया। आगे लगभग 3000 वर्ष ई.पू. साम्राज्य की राजधानी 'मेंफिस' में स्थानांतरित हो गयी (तीसरा राजवंश), तो मेंफिस का देवता 'प्ताह' मिस्र का मुख्य देवता बन गया। और आगे ई.पू. 2700 वर्ष, पांचवे राजवंश का संबंध 'ओन' नगर से था। (हेलियोपोलिस) । वहॉ का एतोम(रा) मिस्र का सर्वोच्च देवता बन गया। ग्यारहवें और बारहवें राजवंश (2100-1800 वर्ष ई.पू.) के कालावधि में 'थ्रीब्ज' नगर का उत्कर्ष हुआ। तब वहॉ का स्थानीय और अल्पज्ञात देवता 'आमोन' मिस्री देवता मंडल में सर्वोच्च स्थान पर आ गया। सातवीं शताब्दी ई.पू. में (26 वे राजवंश का समय) स्थानीय देवी, संभवतः लिबीयाई मूल की देवी, 'नेइत' को सर्वोच्च महत्व प्राप्त हो गया। कभी-कभी दो देवताओं का परस्पर तादात्मीकरण भी हो जाता था। जैसे एतोम और 'रा' को एक ही देवता बताया जाता था| मध्य राज्ययुग में उसी रा से थ्रीब्ज के ओमोन तथा सेबेक की एकरूपता स्थापित की गयी।

<u>सूर्य पूजा</u>

अधिकांश देवताओं को किसी न किसी रूप में सूर्य से जोड़ा जाता था।

हेलियोपोलिस का एतोम ''रा''

हिरोरा कोनपोलिस का होरूस

थीब्ज का आमोन

बुसीरिस का ओसिरिस

अबीदोस का अन्हेर

फैयूम का सेबेक

हेर्मोत का मेंत

पांचवे राजवंश काल से सरकारी घर्म में सर्वोच्च स्थान, सूर्य से संबंध रखने वाले देवताओं को दिया जाने लगा। राज्य सत्ता के सर्वोच्च फराऊन का दैवीकरण इसी समय किया गया। पांचवे राजवंश काल से ही फराऊनों को सूर्यदेवता रा के पुत्र घोषित कर दिया गया। फराउन सभी महत्वपूर्ण धार्मिक अनुष्ठान स्वयं सम्पन्न करता था। सूर्यपूजा मिस्र के राजकीय धर्म का मुख्य अंग बन गयी। सूर्य के मंदिर बनाए जाने लगे। उनमें सूर्य के प्रतीक स्तंभ स्थापित किये जाते थे। पुरोहित जो कुछ भी करते थे फराऊन की तरफ से ही करते थे। वहॉ के धर्म का प्रमुख लक्षण हो गया राजा का अंतहीन महिमागान। ऐसा प्रतीत होता है कि मध्य राज्य युग में सूर्य देवता की एकेश्वरवादी प्रवृत्ति भी पनपी। इसके सम्मान में वृद्धि का कारण मूलतः राजनीतिक था।

<u>पशुओं और पक्षियों को देवत्व</u>-

मिस्री धार्मिक विश्वास का एक महत्वपूर्ण रूप है पशुओं और पक्षियों को देवत्व प्रदान करना।

मेंफिस नगर से वृषभदेव 'अपिस' की उपासना की जाती थी। तांनिस और बूतों नगरों में होरूस और श्येनमुख की उपासना होती थी। यह आकाश का देवता था। भेड़ को 'एननरा' देवता कहा जाता था।

कितने ही नोमों के नाम पशुओं पर थे। हिरन नोम, मकर नोम आदि।

पशु को देवता का रूप उसकी उपयोगिता के आधार पर दिया जाता था। बिल्ली, बाज, आइबिस और मगरमच्छ जाति को सारे मिस्र में पवित्र माना जाता था। गाय मिस्री देवताओं की पवित्र बलि थी।

<u>बहुदेववाद : प्रकृति पूजा</u>

मिस्र के निवासी बहुदेववादी थे। वे प्रकृति के विभिन्न रूपों की अपने देवी-देवताओं के रूप में पूजा करते थे। देवताओं में सूर्य का महत्वपूर्ण स्थान है यह ऊपर लिखा जा चुका है। इसको वह अधिष्ठाता तत्व समझते थे। उनका विश्वास था कि सूर्य ही संसार का नियामक है। मंदिरों में सूर्य की प्रतिमाएं बहुत अधिक मात्रा में पायी गयी हैं। सूर्य के अतिरिक्त आकाश, जल, सरिता, अग्नि, वायु की भी पूजा होती थी।

चंद्रमा से जुड़े देवता - टोथ, आइरिस और खोंस

आकाश से जुड़े देवता - हाथोर तथा नुत

पृथ्वी से जुड़े देवता - मीन और गेब

मानव कार्यकलापों से जुड़े देवता.

जैसे कि अन्य जगहों पर भी हुआ है, मानव ने अपने कार्यकलापों के एक-एक विधा के संरक्षक के रूप में विशिष्ट देवता को एक-एक भूमिका सौंप दी।

हर्मोपाल का देवता --टोथ (आइबिस)

सीउत का अनुबिस - मृत्यु लोक का देवता

लातोपालिस की सेख्मेत - युद्ध की देवी

कोप्टोस का मीन

इनमें आइबिस को विद्वानों का संरक्षक, लेखनकला तथा ज्ञानविज्ञानों का आविष्कार और पवित्र ग्रंथों का लेखक आदि माना गया है।

मिस्र के सांस्कृतिक नायकों को भी कई जगह देवता का दर्जा दिया गया है।

<u>कृषि व्यवसाय से जुड़े देवता-</u>

कोप्टोस का मीन, थीब्ज का आमोन, एलिफेन्टाइन का ख़्नुम, डेल्टा प्रदेश की देवी आइसीस आदि किसी न किसी समय उर्वरता के देवता थे। मगर कृषि संबंधित लोकधर्म में मुख्य स्थान था ओसिरिस का। वह प्रारंभ में डेल्टा प्रदेश में स्थित बुसीरिस का संरक्षक देवता था। मध्य राज्य युग में रा के साथ ही ओसिरिस की प्रतिष्ठा में भी वृद्धि हुई। परन्तु ओसिरिस की प्रतिष्ठा का कारण उसकी साधारण जनों में लोकप्रियता थी, अत्यधिक श्रद्धा थी| उसे सदा वनस्पतियों के साथ और वनस्पतियों के बीच चित्रित किया जाता था। उदाहरणतः हाथ में कमल लिये हुए, अंगूरों की लताओं की बीच। खुदाई में ओसिरिस के चित्र प्राप्त हुए हैं। इन्हें लकड़ी की विशेष चौखटों में बिछी हुई मिट्टी में, बोए गए बीजों से बनी मनुष्य की आकृति के रूप में बनाया गया है। एक चित्र में लेटे हुए ओसिरिस के शरीर से गेहूं की बालियॉ उग रही हैं। एक पुरोहित उन्हें सींचता हुआ दिखाया गया है| मिस्र के लोग प्रतिवर्ष ओसिरिस के मरण और पुनरूज्जिवन का उत्सव मनाते थे। यह 18 दिन चलता था। इसमें आनुष्ठानिक बोआई, जोताई की जाती थी। मिट्टी तथा अनाज के दानों से निर्मित ओसिरिस की मूर्ति के साथ विभिन्न अनुष्ठान किये जाते थे। इसमें ओसिरिस के साक्षात अनाज ही माना जाता था| एक मिथक के अनुसार ओसिरिस मिस्र का राजा था। उसके भाई 'सेत' ने विश्वासघात से उसे मार डाला और उसके टुकड़े-टुकड़े कर चारों दिशाओं में फेंक दिए। तब ओसिरिस की बहन तथा पत्नी आइसिस ने बड़ी मेहनत से इन टुकड़ों को एकत्र किया और फिर ओसिरिस के एक पुत्र को जन्म दिया। यह होरूस था। उसने सेत को युद्ध में हराया और अपने पिता को पुनजीर्वित कर दिया। यह निश्चित ही बोए और उगे हुए अनाज के दानों के रूपांतरण की रूपकात्मक कथा है।

प्राचीन काल में कृषिजीवी जनों के बीच व्यापक रूप से प्रचलित मरने और फिर पुनर्जीवित होने वाली वनस्पति की प्रेतात्मा की पूजा की जाती थी| उपरोक्त कथा उसका एक मिथकात्मक रूपांतर है।

आइसिस भी सारे मिस्र में उर्वरता की सबसे लोकप्रिय देवी थी। आगे तो इसकी पूजा सारे भूमध्यसागर क्षेत्र में फैली गयी, जबकि मूलतः वह एक स्थानीय देवी थी।

वृक्षों की भी पूजा होती थी। खजूर को सबसे अधिक सम्मान प्राप्त था।

प्राकृतिक परिघटनाओं के मिथकीय रूपांतरण

ये मिथक कई प्रकार के थे। चंद्रमा, वायु, पृथ्वी, रेगिस्तान नील आदि भिन्न-भिन्न आकाशीय तथा पार्थिव घटनाओं और वस्तुओं में व्यक्तित्वारोपण किया जाता था। नील घाटी की वरदान रूपी प्रकृति की कल्पनाएं, मनुष्य का हित करनेवाले देवताओं के रूप में की जाती थीं। वहॉ रेगिस्तान की विनाशकारी शक्तियों से जुड़ी दुष्ट राक्षसी देवताओं की कल्पनाओं का भी जन्म हुआ था। मिस्री पुराण कथाओं के दुष्टों में 'सेत' का स्थान प्रमुख है।

एक मिथक के अनुसार वह ओसिरिस का ईर्ष्यालु भाई है और उसकी मृत्यु के लिए षडयंत्र रचता है। ओसिरिस के उत्तराधिकार के लिए ओसिरिस के पुत्र के साथ उसका संघर्ष होता है। ओसिरिस के उत्तराधिकार पर, चाचा के दावे की वैधता को होरूस चुनौती देता है। इस मिथक में गोत्रीय सिद्धान्त के स्थान पर पारिवारिक उत्तराधिकार की स्थापना का संकेत मिलता है।

आगे देवी देवताओं के बीच धार्मिक मिथकीय संबंध स्थापित हो गए, जैसे मेंफिस की देवत्रयी में प्ताह, उसकी पत्नी सेख्मेंत और उनका पुत्र ।

दार्शनिक संकल्पना

पिरॉमिड युग के मिस्त्रियों के दार्शनिक विचार मेम्पिफस के धर्मशास्त्र में देखने को मिलते हैं। मेम्पिफस देवता 'टा' का आवाहन करते हुए उसे देवताओं का हृदय और जीभ कहा गया है। अर्थात् टा को जगत का कारण और निर्माता माना गया है। नैतिक दर्शन का केन्द्रबिंदु 'मात' का सिद्धान्त माना जाता था। मात शब्द का निश्चित अर्थ क्या अभिप्रेत था इस विषय पर कुछ नहीं कहा जा सकता। कहीं इसका अर्थ न्याय होता है तो कहीं नियम , कहीं व्यवस्था, और कहीं सत्य। ऐसा लगता है संस्कृत शब्द 'ऋत' के समान ही उसका उपयोग होता था। मिस्र के निवासियों के अनुसार समस्त देवता मात पर निर्भर है। इसके कारण ही समाज में न्याय और सत्य स्थापित होते हैं।

मध्य राज्ययुग में जब मिस्र का साम्राज्य विस्तार हुआ तब वह अन्य देशों व जातियों के संपर्क में आया| मिस्री देवी मंडल में कई विदेशी मूल के देवता भी शामिल कर लिए गए। न्यूबिया का बेस नामक देवता और लीबिया की नेइत नामक देवी इसके उदाहरण है। अर्थात् यह आदान-प्रदान एक तरफ से ही नहीं था। अन्य देशों में भी मिस्री देवी देवताओं को पूजा जाने लगा। फिनिशिया, सीरिया तथा यूनान में आमोन, ओसिरिस, आइसिस आदि की पूजा आरम्भ हुई ।

मिस्री सभ्यता का मध्य अर्थात् सामन्तवादी युग और बाद का साम्राज्यवादी युग

प्राचीन पिरामिड युग में राजा की सत्ता सर्वोच्च थी। परंतु मध्य युग में स्थिति बदल गयी। उस समय तक सामन्तवादी व्यवस्था स्थापित हो चुकी थी। यहाँ भी यूरोप की भांति सामन्तवाद का प्रचलन रहा। मिस्र छोट-छोटे राज्यों में विभाजित हो गया। राज्यों में सामन्त शासन करने लगे। इस दरम्यान सामन्तों के प्रभाव के कारण फराओं की स्थिति बड़ी दयनीय थी। लेकिन आगे के साम्राज्यवादी युग में फराओं की प्रतिष्ठा में बहुत अधिक वृद्धि हुई। 18 से लेकर 20 वे वंश के शासन तक साम्राज्यवादी युग चला| उन्नीसवें वंश अथवा दूसरे साम्राज्य का संस्थापक तूतेनखामेन था।

अख्नाटन की धार्मिक क्रांति

साम्राज्यवादी युग में अख्नाटन नाम का एक प्रसिद्ध सम्राट हुआ। अख्नाटन की धार्मिक क्रांति मिस्र के इतिहास का महत्वपूर्ण अध्याय है।

अख्नाटन के पूर्व की धार्मिक स्थिति अत्यंत दयनीय थी। साम्राज्य युग में भी राजपुरूषों, सैनिकों के साथ-साथ पुजारियों का प्रभाव भी काफी बढ़ता गया। राजकीय आय या कोष से मंदिरों को मिलने वाली भेंट और लोगों की तरफ से मिलने वाले चढ़ावों के कारण पुजारियों की आय बहुत अधिक थी। मध्य राज्ययुग में धर्म और सदाचार में जो घनिष्ठ संबंध स्थापित हो गया था उसका ह्रास होता गया। धर्म के संरक्षक भोग-विलासमय जीवन में डूब गए। भ्रष्टाचार का बोलबाला हो गया। जादू-टोने पर लोगों का बहुत अधिक विश्वास हो गया। धर्माचार्य साधारण जनता को परलोक का भय दिखाकर धन की दृष्टि से ठगने लगे। 'पाप मोचक प्रमाण पत्र' बड़ी संख्या में बेचे जाने लगे। ऐसा विश्वास किया जाने लगा कि ऐसे पापमोचक पत्र खरीदने पर पापों के कारण परलोक में अपेक्षित कष्टों से मुक्ति मिल जाएगी।

इन परिस्थतियों में एमनहोतेप चतुर्थ उर्फ अख्नाटन ने,१४२४-१३८८ई.पूर्व मिस्र की राजनीतिक एवं धार्मिक क्षेत्र में एक क्रांति ला दी। शुरूआत पुरोहितों में व्याप्त भ्रष्टाचार के विरोध से हुई। ऐटन नामक एक नये देवता की उपासना के लिए जनता को प्रोत्साहित किया गया। एटन देवता की प्रशंसा करते हुए ही सम्राट ने अपना नाम अख्नाटन रख लिया था अर्थात अतोन का प्रिय।

एटन वास्तव में सूर्य देव रा या रे का दूसरा नाम था। परन्तु अख्नाटन, उसे केवल मिस्र का ही नहीं तो अखिल विश्व का एकमात्र देवता मानता था। उसकी कल्पना का स्वरूप बौद्धिक सूर्य का न होकर जीवनदायी प्रकाश का था। अख्नाटन के अनुसार वह एक निराकार शक्ति है और किरणों के रूप में समस्त संसार में व्याप्त रहती है।

अख्नाटन के एटनवाद में पुराने अंधविश्वासों को स्थान नहीं है। उसने धर्म में नैतिकता का समावेश किया। एटन को न्यायप्रिय और हिंसापूर्ण विजयों का विरोधी बताया गया। वह निराकार है, समस्त मनुष्यों का पिता और संसार का नियामक है। सूर्यचक्र उसका प्रतीक है।

एटन की उपासना का समय सूर्योदय और सूर्यास्त था। उपासना में अधिक चढ़ावें, कर्मकाण्ड, तंत्र-मंत्र और पुजारियों की आवश्यकता नहीं होती थी। केवल हृदय में एटन का ध्यान करना होता था। उसकी स्तुति एवं श्रद्धा के प्रतीक के रूप में कुछ पुष्प, पत्र और फल चढ़ाए जाते थे। जो सच्चे हृदय से एटन की स्तुति करता वह उसी पर प्रसन्न होता है| इस प्रकार यहॉ सादगी, पवित्रता, आडंबरहीनता और नैतिकता का महत्व है।

अख्नाटन ने शुरू में अन्य देवताओं के प्रति सहिष्णुता का रूख अपनाया और अपने धर्म का प्रचार किया। अपने देवता का भव्य मंदिर बनवाया। लेकिन हित संबंध बाधित होनेवालों ने इसका विरोध शुरू किया। परिणामतः अख्नाटन ने अन्य सभी देवताओं के मंदिरों को बन्द करवा दिया। इस प्रकार अख्नाटन ने एकेश्वरवाद का प्रचलन शुरू किया। लेकिन इसके विचार समय के अनुकूल नहीं थे। परिणाम यह हुआ कि उसकी मृत्यु के बाद उसका धर्म समाप्त हो गया। पुनः प्राचीन बहुदेववादी धर्म प्रचलित हो गया।

एटन मंदिर बनने के पहले थीब्ज में अमोन-रा का मंदिर विशेष महत्वपूर्ण और अति शक्तिशाली था।

<u>पारलौकिक जीवन</u>

प्राचीन काल में ही मिस्त्रियों की यह धारणा बन गयी थी कि मनुष्य के मृत्यु के बाद, कुछ विशेष देवता उसकी रक्षा करते हैं| उनकी संख्या बड़ी थी। मिस्र निवासी पारलौकिक जीवन में विश्वास करते थे। वे आत्मा में विश्वास करते थे। पुनर्जन्म में भी उनका विश्वास था। उनका कहना था कि मृत्यु के बाद भी मनुष्य सुख-दुख का अनुभव करता है। इसी कारण वे मृतक के साथ खाने-पीन की वस्तुएं वस्त्र, आभूषण आदि सामग्री रखते थे जो जीवित व्यक्ति के लिए आवश्यक होती है। यहॉ के मत के अनुसार मनुष्य में एक विशेष शक्ति 'का' होती है। यह जन्म के साथ आती है। जीवन भर रहती है और मृत्यु के बाद भी उससे अलग नहीं होती। इस 'का' को मिस्रवासियों ने मानव शरीर का प्रतिरूप कहा है। उनमें यह भय रहता था कि यदि मृतक के साथ खाद्य सामग्री नहीं रखी गयी तो कही का अपने मल का भी भक्षण न करने लगे। इस का के अतिरिक्त उनके विश्वासों में आत्मा का भी स्थान था। शरीर में आत्मा उसी प्रकार निवास करती है जैसे वृक्ष पर पक्षी। आत्मा और का में क्या संबंध है इस विषय पर काई विवेचन नहीं मिलता।

मिस्र के निवासी अपने मृतकों को मानो इसी दुनियॉ का निवासी मानते थे। परिणामतः उनकी आवश्यकताएं भी इसी दुनियादारी के अनुसार होती थीं। लेकिन 'पिरॅमिड

टेक्ट्स' में विभिन्न स्थलों पर मृतकों की दुनिया की कल्पना मिलती है। वहॉ प्रतिदिन सूर्य देवता संध्या के समय जाते है और रात गुजारते है। इसी रहस्यमय अधोलोक में मृतकों की आत्माएं रहती हैं। हेलियोपोलिस' सूर्य पूजा का केन्द्र था। यहींसे यह प्रचार हुआ कि मृतकों के लोक का, सूर्य से संबंध है। मृतकों की आत्माएं रा की नौका पर सवार होने तथा रा के साथ प्रतिदिन आकाश की यात्रा करने को उत्सुक रहती हैं। माना जाता था कि मृतकों का लोक पश्चिम में है और डूबता हुआ सूर्य अपनी किरणों से इस लोक को प्रकाशित करता है । एक जगह पाताल का उल्लेख भी हुआ है। वहॉ मृतक आत्माएं सूर्य देव की नाव की प्रतीक्षा करती हैं| जहॉ पुण्य आत्माएं आनंदमय जीवन व्यतीत करती हैं ऐसे ''यारूलोक' का उल्लेख है। इससे स्पष्ट है कि मिस्रवासियों का पाप और पुण्य में भी विश्वास था। एक विश्वास के अनुसार मृत्यु के बाद मनुष्य को असेरिस नामक देवता के सामने जाना पड़ता है। वहॉ उसके कर्मों का ब्यौरा लिखा जाता है। अच्छे कर्म करने वालों को स्वर्ग की और बुरे कर्मों वालों को नर्क की प्राप्ति होती हे। इस प्रकार वे कर्मवादी थे| आत्मा को अमर और शरीर को नश्वर मानते थे| मृत्यु केवल मनुष्य के शरीर की होती है| मनुष्य के अस्तित्व के अन्य घटक पूर्ववत जीवित रहते हैं| एक कल्पना मिलती है कि इन घटकों में एक है आत्मा (बा) जो पक्षी के रूप में शरीर से निकालकर आकाश में उड़ जाती है। ''का'' आत्मा मनुष्य का एक ढंग का अदृश्य प्रतिरूप है। इसकी मरणोपरांत नियति स्वयं शरीर की नियति से रहस्यमय ढंग से जुड़ी हुई है। ''का'' अमर नहीं है। दफनाते समय मृतक के लिए अगर खाद्य पदार्थों की व्यवस्था नहीं की गयी तो ''का'' भूख-प्यास से नष्ट हो सकता है। यदि मंत्र-तंत्र द्वारा उसकी रक्षा की व्यवस्था नहीं की गयी तो मृत्युलोक के दैत्य उसे खा सकते हैं। उलटा इस व्यवस्था से मृतक की ममी भी सुरक्षित रह सकती है और ''का'' भी।

''का '' की नियति के बारे में और परलोक के विषय में मिस्रियों के विभिन्न कालों में अलग-अलग विचार थे।

प्राचीन राज्यकाल में ऐसा माना जाता था कि मृतक तथा उसका ''का'' किसी ऐसे लोक में पहुंच जाते हैं, जो कहीं दूर पश्चिम में है। वहॉ उसी ढंग से रहना जारी रखते हैं जिस तरह इस लोक में रहते थे। मरणोपरांत जीवन लौकिक जीवन का ही सिलसिला है।

मध्य राज्ययुग में : पिरामिड युग में ओसेरिस को परलोक का न्यायाधीश स्वीकार किया गया था। परन्तु मध्यराज्य युग में उसका महत्व और बढ़ गया। वहीं परलोकवाद का आधार 'का' बन गया। यह मान्यता प्रचलित हुई कि प्रत्येक मृतात्मा ओसेरिस के न्यायालय में जाती है। ओसेरिस अपने 42 न्यायाधीशों की सहायता से उनके कर्मों की जांच करता है। उसके अनुसार मृतात्मा को यातनाएं सहन करनी होती हैं। पारलौकिक जीवन विभिन्न प्रकार संकटों से पूर्ण माना गया। परलोक में भी मृतात्मा को सर्प, घड़ियाल आदि भयभीत करते हैं। यही कारण था कि इस युग में मृतक की शवपेटिका पर सुखी जीवन के चित्र तथा जादुई मंत्र

लिखे जाते थे। इससे सुखी पारलौकिक जीवन की मानो गारण्टी हो। एक ढंग से इस युग के मिस्रवासियों का जीवन निराशावाद की ओर झुका हुआ था। इसकी प्रभावशाली अभिव्यक्ति 'विणावादक के गान' नाम कृति में देखने को मिलती है। पांचवे और छठे राजवंशों के काल के अभिजातों के मकबरों पर ऐसे सुखी जीवन के चित्र अंकित है।

अख्नाटन का परलोकवाद

मृत्यु के पश्चात कुछ समय तक मनुष्य की आत्मा स्वर्ग में निवास करती है या उन स्थानों में चली जाती है जो स्थान उसे अच्छे लगते हैं। वहॉ उसे अतीव आनंद की प्राप्ति होती है। अख्नाटन, नरक की कल्पना नहीं करता। उसके अनुसार दयालु एटन किसी को नारकीय पीड़ा नहीं दे सकता। दुष्टात्माओं को वह केवल यह दंड देता है कि मृत्यु के बाद इसके अस्तित्व का पूर्ण विनाश हो जाता है।

अंत्येष्टि संबंधी कर्मकांड

वर्गों की उत्पत्ति से पहले के युग में मिस्रियों के शवाधान अन्य देशों के, इस तरह के स्मारकों जैसे ही थे। भूमि में छोटे अंडाकार गढढे खोदकर मृतकों को, घुटने वक्षस्थल से सटाकर, गाड दिया जाता था और साथ में कुछ वस्तुएं भी रख दी जाती थीं। कभी-कभी गाड़ते समय शरीर के टुकड़े भी कर दिए जाते थे। लेकिन क्रमशः समाधियों का (कम से कम राजाओं के) स्वरूप विशाल से विशालतम होता गया। तीसरे राजवंश के जमाने से उन्होंने पिरामिड का रूप ले लिया। मृत फराउनों के शरीरों पर लेप लगाकर उन्हें ममी बनाया जाने लगा। सम्पन्न व्यक्तियों का भी ममीकरण होने लगा। इस प्रक्रिया को पुरोहित सम्पन्न करते थे। इसका उद्देश्य होता था शव को सड़ने से रोकना और काफी समय तक सुरक्षित रखना। फिर भी गरीब लोगों के शवों को सीधे-सीधे रेत में गाड़ दिया जाता था। मरणोपरांत नियति के विषय में विश्वासों के कारण शवों का ममीकरण और अन्त्येष्टि जटिल होती गई।

प्राचीन मिस्री धर्म में मृतक पूजा तथा अंत्येष्टि संबंधित अनुष्ठानों का भारी विकास हुआ। इसके पीछे इजिप्शियन लोगों में कई विचित्र धारणाएं थीं। मनुष्य की प्रवृत्ति अपने जीवनकाल में ही अपने मरणोपरांत नियति की चिन्ता कर लेने की थी। शरीर अचेतन होने के बाद फिर जी उठा तो! यह एक आशा भरी कल्पना थी। ऐसा माना जाता था कि मनुष्य के मृत्यु के बाद उसकी आत्मा सूर्यदेव की ओर जाती है। वहॉ उसके पाप-पुण्य का हिसाब होता है और कालान्तर से वह अचेतन देह में लौट आती है। इस कारण मृत्यु के बाद आत्मा की आवश्यकताएं पूरी करने के लिए साथ में वस्तुएं तो क्या जीवन्त दासदासियों को भी दफना दिया जाता था। परलोक के मार्ग में आने वाली नदी पार करने के लिए किश्ती भी गाड़ दी जाती थी। मनुष्य को मृत्यु के बाद इहलोक की वस्तुओं की आवश्यकता होती है, यह धारणा केवल इजिप्शियनों में ही नहीं तो असीरिया, सुमेरिया, मय, इन्का, इण्डोनेशिया, चीन आदि संस्कृतियों में भी थी। हिन्दुओं में भी मृतात्मा को सद्गति मिले इसलिए ब्राह्मण को

गाय दान की जाती थी। ऐसा समझा जाता था कि मृतात्मा इस गैय्या की पूंछ पकड़कर वैतरणी पार कर स्वर्ग में पहुॅचेगा। शव को सुरक्षित रखने की विशेष चिंता (ममीकरण), हर तरह की वस्तुओं से परिपूर्ण समाधियॉ और देवताओं तथा मनुष्यों के मिले-जुले रूप, फराओं के लिए पिरामिडों का निर्माण, इनसे ऐसा लगता है जैसे उन्हें अपने विद्यमान जीवन से ज्यादा चिंता मरणोपरांत जीवन की थी। एक लेखक ने पिरामिडों को बनवाने के प्रति मिस्र निवासियों के उद्देश्य को इस तरह लिखा है-

"ये पिरामिड मिस्र निवासियों ने जीवन की अमरता को सिद्ध करने के लिए बनवाए थे। पिरामिडों की आकृति बताती है कि उनके निर्माताओं पर निश्चित रूप से सूर्य पूजकों का प्रभाव था। मिस्रवासी बाज के सिर की आकृति वाले 'रा' नामक, सूर्य के प्रतीक एक देवता के पुजारी थे।"

अंत्येष्टि से संबंधित मिस्री विश्वासों और कर्मकाण्डों में ओसीरिस के बिंब का बड़ा महत्व है। वास्तव में आरंभ में उसका मृतक संस्कारों तथा विश्वासों से कोई संबंध न था। पॉचवे राजवंश के पिरामिडों पर खुदे लेखों में उसका नाम पहली बार अत्येष्टि मंत्रों में पढ़ने मिलता है। आगे चलकर तो वह जैसा कि अन्यत्र बताया गया है मृत्युलोक का शासक और न्यायाधीश बन गया। ओसिरिस के विषय में मिस्रियों में यह विश्वास था कि वह मरकर पुनर्जीवित होने वाला देवता है। उत्पत्ति और लय के बिंब में मिस्त्र धारणाओं के अनुसार सर्वप्रथम मरने वाला ओसिरिस ही था। इसलिए उसे मृतकों का स्वामी माना जाने लगा और मरणोपरांत जीवन की भलाई के साथ उसकी पूजा जुड़ गयी। उसके हर वर्ष पुनर्जीवित होने की कल्पनाएं, जनों को यह दिलासा देने में समर्थ थी कि उसकी सहायता से मरे हुए मनुष्य की आत्मा पूर्णतः नष्ट होने से बच सकती है। ओसिरिस से मृतक की रक्षा करने की प्रार्थना की जाती थी।

ओसिरिस पूजा का सबसे बड़ा केंद्र बुसीरिस था। उसके बाद अबीदोस में 'ओसिरिस की समाधि' बहुत पवित्र स्थल था। वास्तव में यह समाधि पहले राजवंश के एक फराऊन की थी। लेकिन उसको ओसिरिस के साथ जोड़ दिया गया और वह इतना महत्वपूर्ण स्थल हो गया कि हर आस्तिक मिस्री मरने के बाद, इसके जहॉ तक हो सके अधिक से अधिक निकट दफनाए जाने की या कम से कम वहाँ अपने नाम का पत्थर लगवाने की अभिलाषा रखता था। धीर-धीरे ओसिरिस का राजाओं के साथ तादात्म्य बताया जाने लगा। पिरामिडों पर अंकित लेखों में मृत राजा को ही ओसिरिस कहा जाने लगा। समाधि लेखों में मृतक को अमुक ओसिरिस कहा जाता था।

मृतक संबंधित कर्मकांड और जादुई मान्यताएं

मध्यराज्य युग में विश्वास उत्पन्न हो गया था कि ओसिरिस अपने 42 सहायक न्यायाधीशों की सहायता से मृतक का न्याय करता है| मृतक के पाप-पुण्य के आधार पर उसका भाग्य निश्चित होता है| वहॉ नरक पिशाच भी रहते हैं। वे पापी आत्माओं को खा जाते हैं| यहॉ यह ध्यान देने लायक बात है कि पूर्ववर्ती काल में मरणोपरांत जीवन, इस जीवन की अगली कड़ी ही माना जाता था। लेकिन बाद में मरणोपरांत प्रतिफल में विश्वास उत्पन्न हो गया। फिर भी इस आम विश्वास में कोई खास कमी नहीं आयी कि जादुई तरीकों से परलोक में आत्मा की कुशलता निश्चित की जा सकती है । इसके लिए मंत्रों का उपयोग किया जाता था। इतना ही नहीं तो कुछ वस्तुओं का भी इसी उद्देश्य से उपयोग होता था। मंत्रों का उद्देश्य मृतात्मा को विभिन्न जीवों का रूप धारण करने की क्षमता प्राप्त करवाना होता था। अर्थात् नैतिक विचारों की अपेक्षा जादुई मान्यताओं का प्राधान्य था। ‘‘मृतकों की पुस्तक” में इन मंत्रों का संकलन है। यह एक बड़ा संकलन है जिसमें 180 से अधिक अध्याय हैं। इनमें सबसे पुराने मंत्र पांचवे और छठे राजवंशों के पिरामिड लेखों में भी पाये जाते हैं| इन अध्यायों में कई अंतविरोध भी हैं। कहीं मृतक की ओर से विभिन्न देवताओं के प्रति प्रार्थनाएं हैं, तो 125 वे अध्याय में इस जन्म में किए गए कर्मों के मरणोपरांत फल पाने का विचार, नैतिक उत्तरदायित्व की कल्पना को आगे रखता है। यह विचार 18 वीं शताब्दी ई.पू. हुए दासों और उत्पीडित किसानों के विद्रोह के समय विशेष रूप से देखने को मिलता है। ईसाई और इस्लामी कयामत की धार्मिक अवधारणा के बीज, मिस्री कयामत की कल्पना में ढूंढे जा सकते हैं।

देवताओं द्वारा मनुष्यों को दंड देने की कल्पना, लोगों के कष्टों और विपदाओं को देवताओं के और स्वयं लोगों के पापों के मत्थे चढ़ाकर उचित ठहराती है और समाज के शासकों को उनके उत्तरदायित्व से मुक्त कर देती है।

मंदिरों का निर्माण, मूर्तियॉ और पूजा विधियॉ -

मिस्र में मंदिरों को देवगृह माना जाता था और इस कारण उनका निर्माण उसी तरह किया जाता था जैसे अन्य घरों के गर्भगृह में लकड़ी की मूर्ति स्थापित की जाती थी। उसे सुंदर आभूषण पहनाए जाते थे। मूर्ति को भोग लगाया जाता था और उसे गायन-वादन से संतुष्ट किया जाता था। भक्तों को प्रसाद भी बांटा जाता था। मंदिरों की आय के दो साधन थे-

1) राज्य की ओर से

2) भक्तों द्वारा दान से

बाद में पाषाण और धातु, दोनों की मूर्तियॉ बनीं। पत्थर की बनीं मूर्तियॉ विशाल थी लेकिन उनमें भाव प्रदर्शन की कमी पायी जाती है। खेफ्रे के पिरामिड के समक्ष स्थित विशाल स्फिंक्स भव्य है। यूनान की कहानियों के अनुसार यह एक दानवी है, इसका सिर स्त्री का और धड पंख लगे हुए शेर जैसा है| इसकी लम्बाई १८७ फीट और उंचाई ६६ फीट है|

प्रारंभ में मिस्र में कर्मकाण्ड का महत्व नहीं था| बाद में पूजन में कर्मकांड की प्रधानता हो गयी। कर्मकाण्डों के कारण पुजारी वर्ग का महत्व काफी बढ़ गया। अंधविश्वास और जन्तर-मन्तर में जनता का विश्वास बढ़ता रहा और उसका सम्पादन पुजारी वर्ग करता रहा। पुजारी वर्ग में स्वार्थ भावना की अधिकता हो गयी। धर्म में नैतिकता का स्थान जाता रहा।

मंदिरों में देवदासियॉ रहती थीं। जिन्होंने आगे वेश्याओं का रूप ले लिया।

साम्राज्यकाल के मंदिरों में "कार्नाट का मंदिर", "आबूस्मिबेल का मंदिर" और लक्सोर का मंदिर विशेष रूप से उल्लेखनीय है| कार्नाट का मंदिर संभवतः प्राचीन विश्व का विशालतम भवन था|[1] लक्सोर का मंदिर अपने सौंदर्य के लिए विख्यात था। थट्मोस तृतीय और रेमेसिस द्वारा गगनचुंबी पाषाणमूर्तियों का निर्माण किया गया।

(विश्व की प्राचीन सभ्यताएं:पृ. १९७) ..

<u>पुरोहित वर्ग-</u>

प्राचीन राज्य में पुरोहित खास हैसियत के धनी न थे। लेकिन कई उतार-चढ़ाव के बाद सोलहवीं सदी ई.पू. में मिस्र एक बड़ी सैनिक शक्ति बन गया। कई सैनिक अभियान चलाये गए। इससे देश में लुट का अपार माल आया। फराउनों ने मंदिरों को और पुरोहितों को मूल्यवान उपहार और विशेषाधिकार प्रदान किए। इससे उनकी शक्ति में भारी वृद्धि हुई। आगे तो पुरोहित वर्ग के प्रमुख सदस्य अपने को राजा से पूरी तरह स्वतंत्र समझने लगे। इसी बीच मुख्य पुरोहित का पद पुश्तैनी हो गया। मंदिर विशाल संपत्ति के मालिक बन गए। पुरोहित उनके नियंत्रक| स्थिति यहॉ तक आ गयी कि स्वयं राजा उनसे डरने लगे। थीब्ज मंदिर की सम्पत्ति की ओर दृष्टि डालने से इस बात का कुछ अंदाजा लग सकता है-

रामसेज तृतीय फराउन के शासनकाल के अन्त में (ई.पू. 11 वीं सदी) अकेले थीब्ज मंदिर के पास जो संपत्ति थी, उसमें 2393 वर्ग किलोमीटर भूमि, 81322 दास अथवा भूदास किसान, 490000 मवेशी थे।[2] मंदिर में प्रतिवर्ष 60 धार्मिक समारोह सम्पन्न किए जाते थे। ऐसे शक्तिशाली केन्द्र की मिस्र के समाज पर कितनी पकड़ होगी, इसका अन्दाजा लगाया जा सकता है। थीब्ज का पुरोहित-तांत्रिक शासन बीच का अल्प कालावधि छोड़कर कोई 400 वर्षों तक यानि 671 ई.पू. (असीरियों द्वारा मिस्र पर विजय) तक जारी रहा।

इस पुरोहितशाही से लड़ने का क्रांतिकारी काम आमेनहोतेप चतुर्थ या अख्नाटन द्वारा किया गया।

<u>जादू टोना-</u>

मिस्री धर्म में जादू-टोने की महत्वपूर्ण भूमिका थी। टोना-टोटका, झाड़-फूंक, चिकित्सा प्रणाली के अभिन्न अंग थे। 'ईबर्स पेपायरस' यह कोई ई.पू. 2000 का सबसे अधिक विज्ञान सम्मत चिकित्सा ग्रंथ समझा जाता है। उसमें विभिन्न बीमारियों के लिए दवाओं के नुस्खे दिए गए हैं| इसके अतिरिक्त उसका काफी हिस्सा मंत्रों से भरा हुआ है।

तरह-तरह के मारण टोटके भी थे। मृत्युलोग में मृतक के सुखपूर्वक रहने के लिए जादुई अनुष्ठान किए जाते थे। अन्य ढंग के जादुई अनुष्ठान भी थे।

<u>विश्वोत्पत्ति मूलक मिथकें</u>-

मिस्र में इन मिथकों की संख्या बड़ी है। सृष्टि के आरंभ के बारे में हर प्रदेश के अपने मिथक थे। अर्थात् इनमें मुख्य भूमिका स्थानीय देवताओं की थी। इस सारी पार्श्वभूमि पर उनमें विरोधाभास होना कोई आश्चर्य की बात नहीं।

ऐसे ही एक सबसे प्राचीन मिथक में सृष्टि रचना का श्रेय 'प्ताह' नामक देवता को प्रदान किया गया है। प्ताह का महत्व बढ़ने क बाद होरूस तथा टोथ जैसे देवता पार्श्व में चले गए। इतना ही नहीं तो प्ताह इन देवताओं का जन्मदाता भी बन गया।

हेलियोपोलिस के पुरोहित विश्व रचना का श्रेय अपने सूर्य देवता 'रा' या एटोम को देते थे। स्वयं 'रा' का पिता था 'नून| 'रा' ने इसके ही अलग तत्वों को अपने में मिलाकर देवताओं, मनुष्यों और जीवों का निर्माण किया। 'रा' ने वायु देवता 'षू' तथा उसकी पत्नि 'तेफूनू' और नौ देवताओं को उत्पन्न किया| बाद में ये ही अन्य देवताओं के जनक बने| मनुष्यों की उत्पत्ति का स्त्रोत रा| के आंसू थे| सूर्य और चंद्रमा 'रा' की दो आंखें हैं|

एक अन्य मिथक के अनुसार गेब (पृथ्वी) और नूत (आकाश) आरंभ में आलिंगनबद्ध थे। उन्हें वायु देवता 'शू' ने अलग कर दिया।

एक उल्लेखनीय बात यह है कि विश्व की अधिकांश जातियों के विपरीत मिस्री लोग पृथ्वी और आकाश के जोडे में आकाश को स्त्री तथा पृथ्वी को पुरूष मानते थे। शरीर कमान की तरह ऊपर उठाकर हाथों-पावों की उंगलियों के सहारे पृथ्वी पर खड़ी हुई अवस्था में उसे चित्रित किया जाता था। कुछ जगह उसकी गाय के रूप में भी कल्पना की गयी थी।

दक्षिण मिस्र में एक विश्वास था 'ख्नुम' नामक देवता ने मनुष्यों को अपने चक्र पर बनाया। यह मान्यता कुम्हारी के विकास के प्रभाव का द्योतक है।

<u>प्रलय का मिथक : अभाव-</u>

मिस्रियों के लिए नील की बाढ़ एक वरदान थी। बाढ़ को विद्वंसक मानना उनके लिए कल्पना के बाहर की बात थी। अतः मिस्र में प्रलय विषयक मिथक नहीं मिलता। अफ्रीका की जातियों में भी प्रलय विषयक कहानियों का अभाव है ऐसा माना जाता है।

<u>धर्म विरोधी विचार</u>-

मिस्र में धर्म का कितना प्रभाव था इस विषय में काफी चर्चा की गयी है। लेकिन इन मान्यताओं की वास्तविकता विषयक शंकाएं उत्पन्न होने से नहीं रोकी जा सकीं। यह वस्तुस्थिति है। मध्यराज्य युग में एक ओर तो धार्मिक विचार अपने उभार पर थे। तो दूसरी ओर आत्मा के मरणोपरांत अस्तित्व में जबरदस्त संदेह भी व्यक्त किया जा रहा था। इसे इस समय की एक साहित्यिक रचना 'हार्पवादक का गीत' में देखा जा सकता है।

जहॉ तक पीड़ित जनता, दासों, किसानों के विरोध का संबंध है, वह कभी-कभी धर्म से शत्रुता का रूप ले लेता था। लीडन पेपायरस' नामक कृति में 18 वीं शताब्दी ई.पू. के जबरदस्त सामाजिक उथल-पुथल का वर्णन किया गया है। इसमें धर्म की पुनर्स्थापना करने, देवताओं को तर्पण देने, भेटें और बलि चढ़ाने तथा प्रार्थनाएं करने का आवाहन किया गया है। इसका सीधा अर्थ है कि इन बातों में बहुत भारी कमी आ गयी थी।

भाग-तीन

देवताओं की ममियॉ (II)

प्रकरण एक

सिंधु घाटी की सभ्यता

प्राचीन भारत के विषय में जानने के लिए अगर हम भूतकाल की छानबीन करते हुए चलें और पूर्व प्राचीन पाषाणयुग में पहुंचे तो उस समय के पत्थरों के हथियार बड़ी संख्या में मिलते हैं। सबसे प्राचीन हथियार प्राप्त होने का स्थान काश्मीर के पास सोहन नदी की घाटी है। अनुमान के अनुसार इनका समय दूसरे हिमयुग का या सवा चार लाख वर्ष पूर्व का है। दक्षिण भारत में, हाथ से खोदने के लिए काम आने वाले औजार काफी मिलते हैं। इनमें सबसे प्राचीन औजार उपलब्ध हुए हैं, मद्रास के पास 'बडाई मदुरा' में| जमीन के जिस स्तर मे वे मिले हैं, उसका भी संबंध द्वितीय हिमयुग या प्लेस्टोसीन युग' के मध्यकाल से जोड़ा गया है। इसके अतिरिक्त मूलप्रभा, कृष्णा, गोदावरी, नर्मदा, साबरमती, मही, चंबल आदि नदियों की उपत्यकाओं में, ओरिसा के मयूरभंज जिले में, राजस्थान में, बम्बई के पास कांदिवली में ऐसे औजार मिले हैं। इससे यह बात साफ होती है कि लाखों साल पहले भी भारत में जगह-जगह मनुष्य की बस्तियॉ थीं। लेकिन इन उपकरणों के साथ मनुष्य की अस्थियॉ कहीं भी प्राप्त नहीं हुईं। इस कारण भारत के इन प्राचीनतम आदिवासियों का हुलिया कैसा होगा इस विषय में अन्दाजा नहीं लग सका। एक और रहस्य स्पष्ट नहीं हो सका कि दक्षिण भारत के प्राचीन पाषाण युगीन औजारों की अफ्रीका के समकालीन औजारों के साथ इतनी समानता क्यों हैं?

वैसा तो भारत एक खंडप्राय देश है। इसके भिन्न-भिन्न भागों में सांस्कृतिक और तांत्रिक विकास की गति भिन्न-भिन्न थी। हड़प्पा की ताम्रयुगीन संस्कृति सिंधुघाटी में अपने चरमोत्कर्ष पर थी| तब अन्य सभी हिस्से पाषाण युग के मध्य या उत्तर अवस्था में थे। आगे आर्यों द्वारा गंगा की उपत्यका में कृषि और पशुपालन संस्कृति का विकास किया गया तब भी नर्मदा की उपत्यका के दक्षिण में पाषाणयुग ही फैला था। जब हम उत्तर प्राचीन पाषाण युग में पहुंचते हैं तब इस युग के सबसे उल्लेखनीय अवशेष उत्तर गुजरात में 'लांघणज' नामक स्थान में प्राप्त हुए हैं। यहॉ छोटे उपकरणों के साथ-साथ सांबर, भैंस, कुत्ते, गैडों आदि की हड्डियों की राशियॉ मिली हैं। इन अवशेषों के साथ ही डॉ. सांखलिया को गड़ी हुई अवस्था में मानवी कंकाल भी मिले हैं। भारत में सबसे पुरातन विश्वासार्ह मानवी अवशेष यही हैं। उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर यह कहा गया है कि यह समाज या तो आगे की कृषि अवस्था के दहलीज पर होगा या वह अधिक विकसित संस्कृति के संपर्क में आया होगा।

इसके काल निर्धारण के विषय में अभी एकमत नहीं है। फिर भी आम तौर पर यह माना गया है कि ई.पू. 4000-5000 साल के ये अवशेष हैं| अर्थात् लांघणज की यह बस्ती हड़प्पा संस्कृति से 1000-2000 साल पुरानी है।

<u>सिंधु घाटी की सभ्यता-</u>

पहले पाश्चात्य विद्वानों का यह मत था कि भारतीय सभ्यताएं विशेषकर नागरी सभ्यताएं ई.पू. 1500-2000 से अधिक पुरानी नहीं हैं। लेकिन 1925 ई. में पुरातत्ववेत्ताओं को सिंधु घाटी की उपत्यकाओं में कुछ मुद्राएं मिलीं। ये बहुत ऐतिहासिक महत्व की पायी गयीं। 'मोहन जो दड़ों' (अर्थ मुर्दों का टीला, पश्चिमी पंजाब) और 'हड़प्पा' नामक स्थान पर (सिंध लरकाना जिला) योजनाबद्ध खुदाई की गयी। खुदाई के परिणाम विश्व के लिए आश्चर्यजनक थे। सर जॉन मार्शल, जिनकी देखरेख में मोहन जो दड़ो की खुदाई का काम हुआ था, ने कहा है-

" मोहन जो दड़ों और हड़प्पा की जो सभ्यता इन दो स्थानों पर मिलती हैं वह शैशवावस्था की सभ्यता नहीं है। इसलिए अब आगे ईरान, ईराक और मिस्र के साथ-साथ हमें भारत की गणना सभ्यता के उन महत्वपूर्ण क्षेत्रों में करनी चाहिए, जहॉ सभ्यता का अंकुर निकला और बढ़ा।

(विश्व इतिहास की झलक भाग १.पं.नेहरू पृष्ठ २६८)

खुदाई में दो नगरों के भग्नावशेष प्राप्त हुए, जो 2 किमी के क्षेत्र में वर्गाकार तथा आयताकार में बसाए गए थे। भारतीय विद्वानों को आश्चर्य इस बात का हुआ कि इन नगरों का उल्लेख किसी भी प्राचीन ग्रंथ में नहीं है। ये नगर 3000 ई.पू.. से प्राचीन नहीं है।

यहॉ जो मकान मिले हैं, वे बहुमंजिले, बड़े-बडे और अच्छी तरह पकी हुई ईटों से बने हुए थे। इमारतों की बनावट प्रायः आयताकार 200X400 गज क्षेत्र की है। इनमें बहुत अच्छे स्नानागार और शौचालय हैं। सीधी सड़कों से सटी हुई वर्षा के जल की निकासी योजना तथा नालियों को स्वच्छ रखने के लिए मलकुंडों की व्यवस्था देखकर इस निर्माण कला के विषय में सचमुच आश्चर्य होता है। इन नगरों में विशाल अन्न-संचय के लिए आगार मिले हैं। अर्थात् सिंधु सभ्यता में कृषि काफी उन्नत होनी चाहिए| यहाँ कपास की खेती के भी प्रमाण मिलते हैं।[1] कपास की खेती तो कदाचित इन्हीं लोगों से दुनिया ने सीखी। रूई के कपड़ों का व्यवहार उस युग में भारत तक ही सीमित था। पश्चिमी जगत में रूई के कपड़े का प्रचार इसके दो-तीन हजार वर्ष बाद हुआ।[2] सिघु घाटी की संस्कृति कांस्य युग की समझी जाती है। सिंधु घाटी की सभ्यता का निश्चित स्वरूप प्रस्तुत करने में सबसे बड़ी बाधा यह है कि उसके अभिलेखों की लिपि ठीक-ठीक अभी तक पढ़ी नहीं जा सकी। सिंधु संस्कृति को लेखनकला

ज्ञात थी लेकिन बड़े पैमाने पर लिखित सामग्री प्राप्त नहीं हुई। लिपि भी पूरी तरह पढ़ी नहीं जा सकी।

(1ऐतिहासिक भौतिकवाद:मन्मननाथ गुप्त:पृष्ठ २१४; 2:विश्व इतिहास की झलक१:पृष्ठ२६९)

सिमला की पहाड़ी की तलहटी में बसे 'रूपार' से लेकर तो कराची के पश्चिम में 480 किमी पर स्थित 'सुत्काजेन-दोर' और इधर सूरत तक सिंधु संस्कृति के अवशेष पाए गए हैं। रूपार और सुत्काजेन-दोर के बीच की दूरी 1600 किमी है। आज भला ही सिंधु का भारत से होते हुए बहने वाला हिस्सा 500 किमी के करीब ही हो, लेकिन 2880 किमी लम्बी सिंधु नदी की घाटी की इस सभ्यता की व्याप्ति काफी विस्तृत थी। सिंधु के किनारे का मोहन-जो-दड़ो और रावी किनारे का हड़प्पा इनके बीच की ही दूरी लगभग 720 किमी है। दोनों शहरों की योजनाबद्ध रचना में विलक्षण समानता है। उस समय इतनी दूरी पर स्थित दो स्थानों में पायी जाने वाली यह समानता निश्चित ही एक मजबूत मध्यवर्ती सत्ता का अस्तित्व दर्शाती है। इनका अस्तित्व लगभग 1000 साल तक बना रहा और ई.पू. 1500 के दरम्यान इसका ध्वंस हुआ। इसकी तुलना हम नाईल की घाटी में फैली सभ्यता से कर सकते हैं। मिस्र की प्राचीन संस्कृति उसके उद्गम से लेकर तो लगभग 1000 किमी तक संकरी पट्टी में फैली थी। सुमेर और बाद की संस्कृतियॉ भी युफ्रेटीस-टाइग्रीस नदियों के उद्गम स्थल से लगभग 1000 किमी प्रदेश में फैली थीं। अर्थात् सिंधु संस्कृति के फैलाव का दायरा और व्यापक लगता है।१

(1मानवाची कहाणी:प्रभाकर संझगिरी पृष्ठ १३२)

मोहन जो दरो संस्कृति के लोगों का नृजातिक निर्धारण अभी नहीं हो पाया है, यद्यपि ऐसा सोचने के लिए पर्याप्त प्रमाण है कि ये द्रविड़ जाति के लोग थे।२

(2धर्म का इतिहास:प्रगति प्रकाशन मास्को :पृष्ठ २१०)

जहॉ तक समाज व्यवस्था का प्रश्न है, यहॉ बड़े-बड़े घरों की तुलना में अनाज भंडारों के नजदीक के दरिद्री कमरे, श्रमिकों के दलित स्थान दर्शाते हैं। तत्कालीन समांतर इजिप्त और सुमेर की संस्कृति में, ये श्रमिक यानि गुलाम थे। इस आधार पर एसा तर्क किया गया है कि हड़प्पा के अवशेषों में पाए गए घुटनों पर हाथ टिकाकर बैठे मनुष्यों के चित्र गुलामों के होने चाहिए।

<u>सिंधु सभ्यता में धर्म-</u>

अभी तक सिंधु घाटी की खुदाई में कोई मंदिर अथवा सार्वजनिक पूजा स्थल नहीं मिला है। लेकिन हड़प्पा-मोहन जो दड़ों, दोनों नगरों में सबसे भव्य अवशेष प्राप्त हुए हैं, वे नगर सीमा पर स्थित प्रचंड गढ़ियों के हैं। इनके अंतर्गत इमारतों की रचना में समानता है।

उनमें चौड़ी और भव्य सीढ़ियॉ हैं। वहॉ बड़ी सावधानी से बांधे गए कुंड हैं। हो सकता है ये देवस्थान हो| अगर ऐसा हो तो इन नगरों की सत्ता, यह धर्मसत्ता होने की संभावना दृढ़ हो जाती है।

लेकिन इस सभ्यता के स्थानों से बड़ी संख्या में सेलखड़ी की मुद्राएं प्राप्त हुई हैं| इन पर पशुओं, अधिकांशतः वृषभ और कभी-कभी हाथी, बाघ, गेंडे के चित्र खुदे हुए हैं। यह बात शायद पशु पूजा के प्रचलन की ओर संकेत करती है। टोटमवाद की छाप भी इस पर है। आज भी द्रविड़ जनजातियों में टोटेमवाद के अवशेष पाए जाते हैं। इस संस्कृति के अवशिष्ट ताबीजाकृतियों में जो आकृतियॉ हैं उनमें से कुछ, पशु रूप देवताओं की होनी चाहिए।

खुदाई में मिट्टी की अनेक मूर्तियॉ भी मिली हैं| जिनसे अनुमान होता है कि इस सभ्यता में धर्म का वह प्रारंभिक रूप विकसित हो चुका था जिसमें मातृसत्ता को एक सार्वभौम शक्ति के रूप में पूजा जाता था। मातृदेवी की उपासना आदिम सभ्यता का एक प्रमुख लक्षण है।* देवी के रूप में मातृसत्ता की उपासना भारत के बहुत से परिवारों में आज भी विद्यमान है। प्रायः सारी मूर्तियॉ कमर के ऊपर नग्न हैं। इनके दोनों ओर प्याले की आकृति के पात्र भी हैं। हो सकता है ये धूप-दीप आदि जलाने के काम में लाए जाते हो।

(*भारतीय जीवन और संस्कृति:शंभूनाथ पांडे:पृष्ठ ३०-३४)

पुरूष देवताओं की मूर्तियॉ भी मिली हैं। एक मुहर पर तीन मुंहवाली एक नग्न आकृति चौकी पर पद्मासन की मुद्रा में बैठी हुई है। इसके चारों ओर हाथी, बैल तथा चौकी के नीचे हिरन बनाया हुआ है। यह लगभग मान्य हो गया है कि यह शिव का पशुपति रूप है। ध्यान मुद्रा से ऐसा भी प्रतीत होता है कि सिंधु घाटी के वासी योगाचार से भी परिचित थे। ऐसा भी माना जाता है कि शिवलिंग पूजा का वह प्रारम्भिक चरण था। मुहरों पर अंकित पीपल और नीम के वृक्षों से यह अनुमान लगाया जाता है कि उस समय किसी न किसी रूप में वृक्ष पूजा का चलन भी रहा होगा। कांस्य की नर्तकी की मूर्ति को विद्वान लोग देवदासी का प्रतीक मानते हैं। ध्यान से देखने पर ऐसा प्रतीत होगा कि यहॉ से प्राप्त कई आकृतियॉ अपने कम अधिक बदले स्वरूप में भारत के आगे के सांस्कृतिक इतिहास में जीवन्त रही हैं।

यहां सार्वजनिक स्नानागार मिला है। इससे ऐसा अनुमान किया जाता है कि नगरवासी यहॉ आनुष्ठानिक स्नान करते थे। यह प्रथा भारत में आज भी बड़े पैमाने पर विद्यमान है।

लिंग और भग पूजा-

ऐसा विश्वास किया जाता है कि सिन्धु उपत्यकावासी लिंग और भग की पूजा को अपने धर्म का अंग मानते थे। मोहनजोदड़ों और हड़प्पा की खुदाई में इनकी पत्थर

प्रतिमाएं मिली हैं। लिंग पूजा होने से ही, इन्हें वैदिक साहित्य में असुर कहा गया है। वैदिक आर्य उनका उपहास शिश्नदेव (लिंग जिसका देवता हो) कहकर करते थे।

लेकिन हम देखते हैं कि यही पूजा आगे हिन्दू, संस्कृति का अभिन्न अंग बन गयी। दक्षिण भारत में जो सबसे पुरानी लिंग प्रतिमा मिली है, उसकी आकृति हुबहू पुरूष के लिंग समान है। कौड़ी की आकृति भग से मिलती है| इसी कारण उसे चमत्कारी माना गया। आदिम जातियों से लेकर तो सभ्य हिन्दू परिवारों तक बच्चों को भूत-प्रेत और कुदृष्टि से बचाने के लिए उन्हें कौड़ी पहनाते हैं| फोड़े आदि निकलने पर काले धागे से कौड़ी बांधना प्राचीन चिकित्सा का एक महत्वपूर्ण कर्मकांड था।

शिवलिंग में नीचे का हिस्सा बिल्कुल स्त्री जननेंद्रिय की प्रतिकृति है जिसके बीच पुरूष का लिंग गड़ा हुआ है।

प्रकरण-दो

ईरानी सभ्यता

ईरान का मूल नाम 'एर्यान' है, जिसका अर्थ होता है आर्यों की भूमि। ईरान का पुराना नाम पर्सिया भी है। यह प्राचीन शब्द पार्स तथा फार्स से बना है। इसी शब्द से पर्सिस और बाद में फारसी शब्द की उत्पत्ति हुई।

तीसरी सहस्राब्दि ई.पू. के अन्त में भारत से लेकर यूरोप तक एक इण्डो-यूरोपियन अथवा आर्य जाति निवास करती थी। एकरिन, डोरियन, रोमन, केल्ट आदि इसी परिवार की शाखाएं थीं। पश्चिम एशिया के हित्ती, कसाइट और मितन्नी जातियों के शासक भी आर्य ही थे। संभवतः कसाइट और मितन्नी जाति के शासक आर्य जाति की ईरानी शाखा के थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि अति प्राचीन काल से ईरान में आर्य जाति का वास था।

'बोगजकुई' में प्राप्त एक शिलालेख से पता चलता है कि पश्चिमी ईरान में मितन्नी आर्यों का सबसे पहले ई.पू.1500 में मेसोपोटामिया की सभ्य जाति से मुकाबला हुआ था। लेकिन उन्हें अंतिम विजय प्राप्त करने के लिए ई.पू. 607 तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। इसी शिलालेख में वैदिक आर्यों के देवताओं के नाम आने से कितने ही विद्वान मितन्नी को ईरानियों की नहीं बल्कि हिन्दी आर्यों की शाखा मानते हैं| लेकिन बीच की ईरानी आर्यों की भूमि लांघकर एक हिन्दी आर्य कबीले का वहॉ पहुंचना तार्किक नहीं लगता। ईरानी प्रथम राजा दैअक्कु (देवक मृत्यु 655 ई.पू.) यह नाम सूचित करता है कि उस वक्त तक देव शब्द उसी अर्थ में लिया जाता था जिस अर्थ में हिन्दी आर्य उसे लेते थे। इन बातों के आधार पर कोई कहता है, आर्य ईराण से होते हुए भारत आए तो अन्यों के अनुसार आर्य मूलतः भारत के हैं और उनकी सभ्यता का ईरान पर प्रभाव पड़ा। लेकिन दोनों में काफी समानताएं हैं। उस आधार पर इतना तो कहा जा ही सकता है कि भारतीय और ईरानी आर्य एक ही पूर्वजों की दो शाखाएं हैं।

प्रारंभिक जीवन में आर्य लोग कबीले का जीवन व्यतीत करते थे। सेमेटिक जातियों के मेसोपोटामिया, बेबीलोन सभ्यता के प्रमुख केन्द्र थे। लेकिन ईरानी सभ्यता के रूप में आर्य जाति की सभ्यता, इन्हीं केन्द्रों के आसपास ही विकसित हुई। उनका असुरो और मेसोपोटामिया की भिन्न आर्य जाति से लम्बा संघर्ष भी हुआ और अन्ततः उन्हें विजय भी मिली। लेकिन ईरान पर सुमेरियन और असीरियन सभ्यता के प्रभाव को नकारा नहीं जा सकता। इन आर्यों ने सुमेरियन लिपि को ही अपनाया।

<u>प्रारंभिक आर्यों का धर्म-</u>

प्रकृति पूजा : आर्य जाति शुरू से ही प्रकृति पूजक थी। वे लोग वृक्षों, नदियों, पर्वतों इत्यादि की पूजा करते थे।

<u>देवतागण :</u>

'असुर' या 'अहुर' इनके ईश्वर हैं। अहुर ही वैदिक सुर तथा मज्दा वैदिक देव का पर्यायवाची शब्द है। अहूर-मज्दा इनका प्रमुख देवता था। उनके यहॉ हौम नामक वृषभ देवता, मित्र, वरूण, इन्द्र आदि पूज्य थे। जनता मिथर (मिथर-सूर्य-प्रकाश का देवता), अनाहिता (सृष्टि देवी या उर्वर शक्ति) तथा सोम आदि की पूजा करती थी। खास करके मीड़ और फारसी लोग। आर्यों का विश्वास था कि अहुर, रथों पर चलते हैं तथा मनुष्यों पर दया करते हैं। यज्ञ करने वालों को 'देवोजुस्तो|' (देवप्रिय) माना जाता था।

<u>भूतप्रेत-मंत्रतंत्र</u>

भूतप्रेतों से रक्षा के लिए तंन्त्र-मंन्त्रों की भी व्यवस्था थी। संक्षेप में प्राचीन ईरानियों का धर्म बहुदेववाद, यज्ञवाद, कर्मकाण्ड और अन्धविश्वास पर आधारित था।

<u>जरथुस्ट्र-</u>

उपरोक्त वातावरण में जरथुस्ट्र का जन्म हुआ। इस महान धर्मोपदेशक और सुधारक के कारण ईरानी आर्य धर्म में अनेक सुधार हुए। उसके कारण ईरान के धार्मिक जीवन में अमुलाग्र बदल हुए। लेकिन इस व्यक्ति के काल के विषय में काफी मतभेद है। इस व्यक्ति के साथ कई अलौकिक घटनाओं को भी जोड़ दिया गया है। इस कारण कुछ विद्वान इसकी ऐतिहासिकता पर ही संदेह व्यक्त करते हैं। उसे एक मिथकीय पैगंबर मानते हैं। कुछ मत इस प्रकार हैं-

1) उसका आविर्भाव अरजबैजान के 'उसमिया' नामक स्थान पर हुआ|

2) यूनानी दार्शनिकों के अनुसार जरथुस्ट्र का जन्म प्लेटो से 600 वर्ष पूर्व हुआ।

3) बेबीलोनियन इतिहासकार उसका जन्म ई.पू. 2000 के दरम्यान बताते हैं ।

4) विलियम्स जैक्सन के अनुसार जन्म वर्ष ई.पू. ६६0 है।

5) बिल ड्यूराण्ट भी उसे ई.पू. छठी सदी का मानते है।

जरथुस्ट्र के पिता का नाम 'पोमशश्पा'; और माता का नाम 'दुगेधा' बताया जाता है। ऐसा विश्वास है कि बीस वर्ष की आयु में उन्होंने संसार का परित्याग किया और पर्वत-

गुफाओं में वास करने लगे। तीस वर्ष की आयु में उन्हें ज्ञान प्राप्ति हुई। कुछ विद्वानों के अनुसार उन्होंने तीन विवाह किए। कुछ के अनुसार एशिया के तूरानी जातियों से हुए दूसरे धर्मयुद्ध में इनकी मृत्यु हुई।

<u>जरथुस्ट्र का धर्म : स्रोत सामग्री</u>

इस धर्म की जानकारी के लिए पर्याप्त सामग्री का अभाव है। जो है वह हेरोडोटस आदि प्राचीन यूनानी लेखकों की रचनाएं हैं। लेकिन इनकी विश्वसनीयता संदिग्ध है। अल्प सामग्री के रूप में छठी-चौथी शताब्दी ई.पू. के हरवाम्शी सम्राटों के कुछ शिलालेख मिले हैं। मुख्य स्रोत ईरानियों के स्वयं के धर्मग्रंथ ही हैं। अध्ययन की दृष्टि से अठारवीं सदी में पता चला कि भारत में पारसियों के यहॉ ईरानियों के प्राचीन धर्मग्रंथ उपलब्ध है।

<u>पारसी धर्म</u>-

सातवीं शताब्दी में अरबों द्वारा ईरान की विजय के बाद ईरान की लगभग पूरी आबादी को मुस्लिम बना लिया गया। लेकिन पुराने धर्म के कुछ अनुयायी भागकर भारत के पश्चिमी भाग में मुख्यतः बम्बई के आसपास बस गए। उन्हें पारसी कहा जाता है। पारसियों की संख्या 1 लाख और डेढ लाख के बीच होने का अनुमान है। यह संख्या 1 लाख 30 हजार दी गयी है।* केवल इस समुदाय के बीच यह प्राचीन ईरानी धर्म आज कुछ बदले हुए रूप में अपना अस्तित्व बनाए हुए हैं।

(*धर्म का इतिहासःपृष्ठ २८७)

<u>धर्मग्रन्थ</u>

धर्मग्रन्थों में प्रमुख अवेस्ता है। यह ग्रंथ ईरानी इतिहास जानने के लिए भी एक स्रोत हैं। जो स्थान वैदिक सभ्यता में वेदों का है, वही स्थान ईरानी इतिहास में अवेस्ता का है। इसका रचयिता जरथुस्ट्र को माना गया है। लेकिन इसके लिए कोई ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं है। दूसरी बात अब यह ग्रंथ अपने मूल रूप में उपलब्ध नहीं है । अनुश्रुतियों के अनुसार अवेस्ता में 21 पुस्तकें थीं लेकिन उनमें बहुत सी अब उपलब्ध नहीं है। अरबी लेखक तबारी और मम्दी के विवरणों के अनुसार जरथुस्ट्र की अवेस्ता 12000 पशुओं की खालों पर लिखी हुई थीं। ऐसा कहा जाता है कि उसमें 1200 अध्याय थे। लेकिन आज उपलब्ध ग्रंथ के अनुसार उसका रूप एक विशाल ग्रंथ का नहीं है।

आज उपलब्ध अवेस्ता को चार भागों में बांटा गया है। ऐसा लगता है कि इनका रचना काल अलग-अलग है।

1) **यस्न**: इसमें 72 अध्याय है। पुरोहितों के मंत्र, भजन, जरथुस्ट्र के उपदेश और सिद्धान्त इसमें संकलित हैं। इन्हें गाथाएं कहा जाता है। यह अवेस्ता की मुख्य पुस्तक है। इन सबसे

प्राचीन गाथाओं की रचना संभवतः अत्यंत प्राचीन काल में अरवाम्शी वंश से भी पहले हुई थी। वे प्राचीन ईरानी भाषा 'जेद' में लिखी हुई है। यह भाषा प्राचीन वेदों की भाषा से साम्य रखती है।

बाद में लिखे हुए भाग, मध्य ईरान की पहलवी भाषा में है जो तीसरी-सातवीं शताब्दी में बोली जाती थी। ये भाग हैं-

2) **वेंदीदाद:** इसमें ईरानी पुराहितों के लिए कर्मकांडीय नियम हैं|

3) **विस्पेरेद**: इसमें ईश्वर वंदनाओं के 24 अध्याय हैं।

4) **यष्ट:** यह भाग देवदूतों की प्रशंसा में लिखी गयी स्तुतियों का संग्रह है।

सबसे बाद में रचा गया भाग बुंदाहिश' नाम का है। इसमें जरथुस्ट्र की जीवन कथा और विश्व के अन्त की भविष्यवाणी है।

<u>धर्म का नामकरण</u>

इस धर्म को कई नामों से जाना जाता है-

1**) मजदा धर्म:** मुख्य देवता अहूर-मज्दा के नाम से ।

2) **जरथुस्ट्र धर्म:** पौराणिक संस्थापक पैगंबर जरथुस्ट्र के नाम पर।

3) **अवेस्ती धर्म:** मुख्य धर्म ग्रंथ अवेस्ता के नाम पर|

4) **पारसी धर्म**: पश्चिमी भारत में बसे पारसी समुदाय के धर्म के तौर पर।

5) **अग्निपूजक धर्म**: इस धर्म में अग्निपूजा का विशेष स्थान है।

आगे चलकर ईरानी धर्म की एक शाखा को मिथ्र देवता के नाम से 'मिथ्र धर्म' कहा जाने लगा।

<u>धर्म का उत्पत्ति स्थान-</u>

इसका भी स्पष्ट उत्तर नहीं मिलता। कुछ विद्वानों के अनुसार अवेस्ता की रचना उत्तर-पश्चिमी ईरान में, मीडो के देश में हुई थी। उसमें जिस धर्म का उपदेश है वह शुरू में मीडो का जनजातीय धर्म था। कुछ अन्य विद्वान इसका स्थान उत्तर-पूर्वी ईरान और 'बाख्त्री' (वर्तमान अफगानिस्तार तथा ताजिकीस्थान) को मानते हैं। अवेस्ता में जिन स्थानों और नगरों का उल्लेख हुआ है, वे केवल पूर्वी ईरान के है। इस आधार पर यह मत अधिक संयुक्तिक लगता है। ईश्वर प्रदत्त ज्ञान का दावा करने वाले धर्म स्रोत में केवल एक विशिष्ट भूभाग का उल्लेख होना, यह बात अजीब सी ही लगती है। एक मत यह भी है कि आरंभ में

दो अलग-अलग धर्म थे। जिनका हखाम्शी राजतंत्र के दौरान एकीकरण हुआ। ये धर्म थे पूर्वी ईरान और बाख्त्री में अवेस्ता और पश्चिमी ईरान में 'मग' धर्म। इनका हेरोडोटस और अन्य यूनानी लेखकों ने भी उल्लेख किया है।

ईरानी और भारतीय आर्यों की कल्पनाओं में समानता-

अध्ययन के आधार पर ऐसा समझा जाता है कि दूसरी सहत्राब्दी ई.पू. में प्राचीन ईरानी और भारतीय आर्य जनजातियॉ एक दूसरी से अलग हुईं। दोनों के धार्मिक विश्वास और भाषाओं में कुछ समानताएं हैं । वैदिक आर्यों की तरह ही प्राचीन ईरानी भी गाय, श्वान आदि कुछ जीवों को पवित्र मानते थे। वे अग्नि और पवित्र पेय 'हओम' (वैदिक सोम) को पूज्य मानते थे। वेदों में आर्यों के प्राचीनतम देवताओं को असुर कहा गया है। उन्हींकी इरानी, अहुरों के नाम से पुजा करते थे| बाद में असुर शब्द आर्यों के लिए दानव का पर्याय बन गया। इससे उल्टा आर्यों का देव शब्द ईरानियों के लिए दानव का पर्याय था। ऐसा दिखाई देता है कि जरथुस्ट्र सुधार के बाद कुछ वैदिक देवता ईरानियों में घृणा के पात्र माने जाने लगे। किन्तु इससे पूर्व काल में भी ऐसी बात रही हो, इसका कोई प्रमाण नहीं है।

कुछ अन्य देवताओं के नामों में भी समानता दिखाई देती है।

वैदिक	**ईरानी**
मित्र	सूर्य देवता मिथ्र
इन्द्र	अन्द्र
यम	यिम (यह पहला चरवाहा और प्रथम विधि निर्माता था)

जरथुस्ट्र धर्म की विशेषताएं-

सातवीं सदी ई.पू. तक यह धर्म पूर्ण रूप से विकसित हो चुका था। जरथुस्ट्र ने अपने देश में प्रचलित धर्म की बुराइयों को दूर करके, क्रांतिकारी धर्म की शुरूआत की।

एकेश्वरवाद(Monotheism)

पहले फारस के लोगों का बहुत सी देवताओं में विश्वास था। जरथुस्ट्र ने एकेश्वरवाद का समर्थन और बहुदेववाद का विरोध किया। उसने बताया कि सभी देवता अहूर-मज्दा की इच्छानुसार चलते हैं। इस धर्म में अहूर-मज्दा का स्थान प्रमुख है। मजदा शब्द का अर्थ ही बुद्धिमान है। अहूर मज्दा अमर है और सत् बातों की प्रतिमूर्ति है। उसकी कल्पना के लिए जो उदाहरण लिया गया, वह था विश्व का अपार शक्तिशाली सम्राट और यह सम्राटों का उपास्य देव भी था। उसे बस अदृश्य माना जाता था| फिर भी उसका एक बिम्ब विकसित किया गया था। विशाल पंखों वाले सूर्यबिंब के बीच एक पुरूष आकृति। संभवतः इस चिन्ह

को बेबीलोनिया से ईरानियों ने अपनाया। इस धर्म के अनुयायियों के विश्वास के अनुसार अहूरमज्दा ने जरथुस्ट्र को अपना प्रतिनिधि बनाकर लोक कल्याणार्थ अवेस्ता नामक धर्म ग्रंथ के सिद्धान्त प्रचार के लिए भेजा। **अहूरमज्दा के स्वरूप की एक विशेषता यह भी है कि उसमें प्राकृतिक देवता के लगभग कोई लक्षण नहीं है।**

द्वैतवाद-

अवेस्ता में प्रतिपादित धर्म का मूल सिद्धान्त द्वैतवाद है। अर्थात् विश्व में प्रकाशमय तत्व भी है और अंधकारमय तत्व भी। अच्छाई भी है जिसका साकार मूर्त रूप प्रकाश का देव है। और बुराई भी है, इसका साकार रूप अंधकार का देव है। जगत में इन दो विरोधी तत्वों के बीच निरन्तर संघर्ष चलता रहता है। **दैवीय और दानवीय शक्तियां| दैवीय शक्तियों का प्रतीक 'अहुरमज्दा' तो दानवीय का 'अहरिमन'। दोनों के लगातार संघर्ष में कभी इसकी जीत होती है तो कभी उसकी। लेकिन अन्तिम विजय अहूर मज्दा की ही होगी।** अहूर मज्दा के सात रूप, अमर शक्तियॉ (अमेश स्पेंता) अथवा गुण है। वे हैं ज्योति, सुन्दर ज्ञान, सत्य, आधिपत्य, पवित्रता, क्षेम और कल्याण। इनके अतिरिक्त अनेक सहायक फरिश्ते माने जाते थे जो मनुष्य को धर्म का उचित मार्ग दिखाते थे। ये देवदूत (यजात, इजेद आदि) एक ढंग से शुद्ध प्राकृतिक तत्वों (आकाश, सूर्य, वायु, अनिल, अग्नि, जल इत्यादि) या नैतिक गुणों के मूर्तरूप हैं।

आत्माओं की कल्पना भी की गयी है| इनका नेता अरहिमन था। ऐसी मान्यता थी कि इन दोनों शक्तियों में आदिकाल से संघर्ष चला आ रहा है। इसमें अंतिम रूप से विजय मंगलकारी शक्तियों की ही होगी। इस धर्म के जोरेस्टर का पुन्हा जन्म होगा। उसके बाद 'शायोशान्न' का जन्म होगा। जो असत्य का नाश करेगा। उसकी सहायता से अहूरमज्दा, अहरिमन पर हमेशा के लिए विजय प्राप्त कर लेगा। तब संसार में सुख, शान्ति और नैतिकता का साम्राज्य स्थापित हो जायेगा।

यह द्वैतवादी विश्वास ईरान की विचारधाराओं में लगातार दिखाई देता है।

ऊपर जो दुष्ट शक्तियों का उल्लेख किया गया है। उनमें अंद्र, एषमा आदि हैं। एषमा नाम का रूपान्तर 'एस्मोडियस' आगे चलकर यूरोप में शैतान का एक नाम बन गया। वैसे तो दोनों महान शक्तियों को समान रूप से सृष्टि का रचयिता माना गया है। मगर अहूरमज्दा ने जो सृजन किया वह उज्जवल, शुद्ध, विवेकसंमत और मानवोपयोगी है। उल्टा अरिहमन का सृजन दुष्टतापूर्ण, अशुद्ध और हानिकारक है। उदाहरण के तौर पर प्रकाश की प्रतीक देवता ने कृषि भूमि का निर्माण किया और अंधकार के देवता ने मरूस्थल का। एक ने दुधारू जानवर का तो दूसरे ने जंगली जानवर का । पृथ्वी, अग्नि, जल ये शुद्ध उत्पन्न तत्व है, तो रोग, मृत्यु, बंध्यता, अरहिमन की सृष्टि है।

इन दोनों तत्वों के बीच चल रहे संघर्ष में लोग भी भाग लेते हैं। **अवेस्ता सभी को पवित्र शक्तियों का साथ देने का आवाहन करता है और इसके पुरस्कार स्वरूप सुखी जीवन की आशा बंधाता है। इस दृष्टि से यह आशावादी धर्म है।**

उपरोक्त दो तत्वों का द्वैतवाद प्राचीन धर्मों के लिए एक बड़ी विशेष बात है। न वह उस समय के चीन, भारत के धार्मिक चिंतन में मिलता है, न इतने स्पष्ट स्वरूप में मिस्र और मेसोपोटामिया में, जो कि प्राचीन सभ्यता के केन्द्र थे। द्वैतवाद की कल्पना के उद्भव का विश्लेषण विद्वानों ने कई ढंग से किया है। उसमें एक यह भी है-

जिस समय ईरानी जनजातियों ने एक स्थानीय जीवन और कृषि व्यवसाय अपना लिया था उस दरम्यान भारतीय आर्य जनजाति में घुमन्तु पशुचारण जीवन पद्धति लम्बे समय तक बनी रही। इस तरह सजातीय लेकिन भिन्न जीवन पद्धति वाले दो समूहों के बीच का दीर्घ कलह ही वह कारण है जिससे एक दूसरे के अनुपूरक, जुड़वा भाईयों लेकिन शाश्वत शत्रु अहुरमज्दा और अरहिमन के बिंम्बों का उदय हुआ। पूर्वी ईरान के निवासियों को मध्य एशिया की स्तेपियाई जनजातियों से भी भीषण संघर्ष करना पड़ा । यह जो तर्क दिया गया है उसके संकेत स्वयं अवेस्ता में ही उपलब्ध है जैसे-

1.वेंदीदाद के पहले अध्याय में अहूरमज्दा, देवदूत जरथुस्ट्र को बताता है कि उसने किन-किन देशों और नगरों की रचना की। ये सारे ईरान के वे प्रदेश हैं, जहॉ कृषि की जाती थी।

2.तीसरे अध्याय में अहूरमज्दा से पूछा जाता है कि पृथ्वी पर सबसे अच्छे स्थान कौन से हैं? वह उत्तर में उन जगहों को गिनाता है, जहॉ खेत खलिहान और स्थायी बस्तियॉ हैं।

3.अहूरमज्दा, मज्दा धर्म का सार बताता है कि जहॉ व्यक्ति अन्न बोता है वह खेत 'अश' है| अश का अर्थ है प्रकाश तथा सत्य का लोक। ऐसा व्यक्ति मज्दा धर्म को आगे ले जाता है।

4.उन्नीसवें 'फरगर्द' अध्याय का उल्लेख दिलचस्प है। अरहिमन उत्तरी देशों यानि मध्य एशियाई स्तेपियों से आया था।

5.विस्पेरेद में कहा गया है कि देव माजेंदरान में अर्थात् उन्हीं मध्य एशियाई स्तेपियों की सीमा पर रहते हैं।

<u>सदाचार और नैतिक स्वरूप-</u>

यह धर्म सदाचार, कर्मपरायणता पर विशेष जोर देता है। इस दृष्टि से यह एक नैतिक धर्म है। उसके अनुसार मनुष्य स्वयं भी शुभ-अशुभ शक्तियों का संघर्ष क्षेत्र है। यह मनुष्य की अपनी इच्छा पर निर्भर है कि वह शुभ कर्म करके अहुरमज्दा का प्रिय बनना चाहता है या नहीं। हमें दूसरों से वैसे ही व्यवहार की अपेक्षा करनी चाहिए जैसा कि हम उनसे करते हैं। सर्वश्रेष्ठ गुण उदारता है। दया, वचन और सत्यता आवश्यक है। किसी उधार पर ब्याज लेना निषिद्ध है। शत्रुओं को मित्र बनाना चाहिए, दुष्टों को सत्यवादी और अनपढ़ों को पढ़ाना चाहिए। लेकिन ईमानदार बनो, सत्य बोलो, नेक काम करो जैसे नैतिक निर्देश अस्पष्ट सिद्धान्तों के स्वरूप के ही है।

नैतिक मान्यताएं और धर्म परायणता ऐतिहासिक परिस्थितियों से परे हटकर कोई अमूर्त, अलौकिक आदर्श या वरदान नहीं है, इसका उत्कृष्ट उदाहरण यहॉ हमें मिलता है। अवेस्ता के अनुसार, धर्मपरायण मनुष्य के लिए मुख्य सत् कार्य खेती करना और वनस्पतियॉ उगाना है।

जो तीन अक्षम्य पाप मनुष्य को हमेशा के लिए विनाश के गढ़े में ढकेल देते हैं वे हैं-

1) मृतक के शव को जलाना।

2) सड़ा गला मांस खाना

3) अप्राकृतिक मैथुन करना।

नैतिक आचरण के पुरस्कार के रूप में मरने के बाद स्वर्ग की आशा दिलायी गयी है।

धार्मिक बिंबों का यह नैतिक स्वरूप भी मजदा धर्म को प्राचीन विश्व के अन्य सभी धर्मों से एकदम भिन्न व्यक्तित्व प्रदान करता है।

<u>संसारिकता</u>

इस मत के अनुसार संसार में रहकर सुकर्म करने से ही स्वर्ग की प्राप्ति होती है। यह धर्म, संसार से पलायन नहीं सिखाता। इस दृष्टि से भी यह आशावादी धर्म है।

<u>मरणोपरांत : स्वर्ग और नर्क-</u>

जोरेस्टर धर्म स्वर्ग और नर्क में विश्वास करता है। 'अस्तिविहाद', मृत्यु का देवता माना जाता है और वह व्यक्ति को इस दुनिया से ले जाता है। इसके एक विश्वास के अनुसार मृत्यु के उपरांत मृत आत्मा को एक पुल पार करना होगा। उसपर से गुजरते हुए पापी नीचे गिर जाते हैं और अंधकार लोक में या अरहिमन के लोक में अपने कुकर्मों के

अनुसार अनेक प्रकार की यातनाएं भोगते हैं। कुछ समय पश्चात् वे भी स्वर्ग जाते हैं। परन्तु उनके खातों में मृत्यु के पूर्व अगर कोई भी सत् कर्म नहीं होगा तो उन्हें हमेशा नर्क में ही रहना पड़ेगा। दुष्टों के उद्धार के लिए संसार में तीन पैगंबर आएंगे और 1200 वर्ष बाद सभी का उद्धार हो जाएगा। जब विश्व का अन्त होगा तो पापियों की आत्माओं और स्वयं अरहिमन का भी पूर्ण संहार कर दिया जाएगा।

पुण्य आत्माएं पुल को सफलतापूर्वक पार कर दूसरे तट पर पहुॅच जाती हैं। वहॉ देवलोक की सुन्दरियॉ उनका स्वागत करती हैं। पुण्य आत्मा वहॉ अहूरमज्दा के साथ अनन्तकाल तक आनन्दपूर्वक रहती हैं। अर्थात् मृतक की आत्मा की नियति पार्थिव जीवन पर निर्भर है।

<u>मृतक संस्कार</u>-

जो कुछ भी मृत्यु से संबंधित है उसे अशुद्ध माना जाता था। शव को भी अशुद्ध ही माना जाता था। उसे भूमि, जल, अग्नि जैसे शुद्ध तत्वों के संपर्क में नहीं आने देना चाहिए। इसी कारण मृतकों की अंत्येष्टि का मजदा तरीका अन्य सभी धर्मों और समाजों से अलग और विशिष्ट है| **वे न शव को गाड़ते** थे, **न जलाते थे। शव को खुले में हिस्र पक्षियों को खाने के लिए छोड़ दिया जाता था।** इसके लिए विशेष गोल मीनारें बनायी जाती थीं। इन्हें 'दखमा' कहते हैं। दखमा का ऊपरी भाग बीच में एक गहरे कुंए से युक्त सीढ़ीदार गढ्ढे जैसे होता था। वहॉ शवों को रखने के लिए तीन संकेद्री वृत्तों में देवडियां बनी होती थीं। सबसे बाहरी पुरूष शवों के लिए, उसके बाद मृत स्त्रियों के लिए और अंदरूनी बच्चों के शवों के लिए। विशेष आदमी नग्न शवों को लाकर इन देवड़ियों में रख देते थे। गिद्ध उन्हें खा जाते थे। हड्डियॉ कुएं में फेंक दी जाती थीं। जरथुस्ट्र के अनुसार दखमा वह जगह है जहॉ देव इकट्ठे होते हैं और अपने खेल तमाशे करते हैं। आस्तिकों को इस अभिशप्त स्थान से हमेशा दूर रहना चाहिए। यह विरोधाभास ही है कि पवित्र देवता अपने खेल तमाशों के लिए ऐसी अभिशप्त जगह इकट्ठा होते हैं। मनुष्य के लिए मात्र ऐसे स्थान से दूरी रखने के लिए कहा गया है।

अहुरमज्दा के अनुयायी या भक्त मृत शरीर में कोई रूचि नहीं लेते थे।

<u>शरीर और आत्मा-</u>

इस धर्म के अनुसार शरीर के दो भाग होते हैंः-

1) शारीरिक (2) आध्यात्मिक: आध्यात्मिक भाग तर्क, भावना, अंतकरण, चेतना आदि का संगठित रूप है। मरने के बाद शरीर तो नष्ट हो जाता है परन्तु यह भाग जीवित रहता है।

प्रेतात्मा पूजा

अवेस्ता में मृत पूर्वजों की प्रेतात्माओं - फ्रवषि- (आगे अपभ्रंश फखर) की पूजा का उल्लेख मिलता है।

कर्मकाण्ड : आराधना

आरम्भ में इस धर्म में कर्मकाण्ड और आडम्बरों का स्थान नहीं था। वे निराकार रूप में अहुरमज्दा की आराधना करते थे और अग्नि को उसका प्रतीक मानते थे। हर घर में हमेशा अग्नि जलती रहती थी। लेकिन कालान्तर में कर्मकाण्ड का प्रवेश हो गया। आवेस्ता के निर्देशों का जो सार था कि मनुष्य को अशुद्ध वस्तुओं और बातों से दूर रहना चाहिए और शुचिता का पालन करना चाहिए, उसने आनुष्ठानिक शुचिता के कड़ाई से पालन करने का रूप ले लिया। शरीर, वस्त्रों आदि को शुद्ध करने के लिए मंत्रों आदि का प्रयोग होने लगा। कर्मकाण्ड की मात्रा इतनी बढ़ी कि उसने धर्म के मूल रूप में ही परिवर्तन कर दिया। इस एकेश्वरवादी धर्म के अनुयायी मिथ्र(सूर्य) और अनहिता देवी आदि की भी पूजा करने लगे। इस प्रकार बहुदेववाद की प्रथा इस धर्म के अंतर्गत फिर चल पड़ीं। पशुबलि की प्रथा भी थी ।

पुरोहित

बलि, आनुष्ठानिक शुद्धता, पवित्र अग्नि को प्रज्वलित रखना ये सब कार्य पुरोहितों- अथ्रवनों के जिम्मे थे। उनका सभी अनुष्ठानों को मूर्त रूप देने पर एकाधिकार था। उनके अतिरिक्त कोई बलि नहीं चढ़ा सकता था।

मूर्तिकरण या मूर्तिस्थान और पूजा का स्वरूप

प्राचीन ईरान में न तो मूर्तियॉ थीं और न ही देवालय। ऊँचे पिरामिडनुमा स्थलों पर खुले आकाश के नीचे पूजा की जाती थी। इन स्थानों को जगुरत कहा जाता है। उनकी पूजा पद्धति यानि हवन और प्रार्थना थी। ईरानियों की पूजा विधियों और ऋग्वेदकालीन आर्यों की विधियों में काफी समानता है। भला ही कई अंधविश्वास कालान्तर में उत्पन्न हुए लेकिन सूर्य तथा अग्नि की उपासना पारसियों में बनी रही। हां, यह बात जरूर हुई कि प्रार्थना के बाह्य ढंग पर जोर दिया जाने लगा।

सृजन विषयक विचार

इस धर्म के अनुयायी संसार की समस्त वस्तुओं को वायु, जल, अग्नि और पृथ्वी से निर्मित मानते हैं। ये चारों तत्व बहुत अधिक पवित्र है और इन्हें पवित्र रखने के लिए वे काफी चिन्तित रहते हैं। इसी कारण वे मानते थे कि मुर्दे को पृथ्वी पर रखने से या गाड़ने से या फिर जलाने से पृथ्वी और अग्नि अपवित्र हो जाएंगे। उनका पवित्र वस्तुओं की स्वयं को

पवित्र रखने की क्षमता में शायद विश्वास नहीं था। इसी कारण उन्होंने शवों के संस्कार की अपनी विशिष्ट पद्धति ईजाद की।

उनके अनुसार सृष्टि इन्हीं चार तत्वों से बनी है और इन्हीं में विलीन हो जाएगी। वे इन चार तत्वों को पूज्य मानते थे।

ईश्वर प्रदत्त धर्म की घोषणा

जरथुस्ट्र ने घोषणा की कि उसका धर्म ईश्वर द्वारा दिए गए ज्ञान पर आधारित है। इसके अतिरिक्त उस समय केवल भारतीय प्रचलित धर्म ही ऐसा था जिसने ऐसी ही घोषणा की थी। यहूदी धर्म ने भी इसका अनुसरण काफी बाद में किया।

<u>विश्व के अंत और अंतिम न्याय का सिद्धान्त</u>

प्राचीन विश्व के अन्य धर्मों की तुलना में मज्दा धर्म की भिन्नता एक और सिद्धान्त के कारण स्पष्ट होती है। यह सिद्धान्त है विश्व के अन्त और अन्तिम न्याय का सिद्धान्त । इसका विवरण अवेस्ता के एक अंतिम भाग 'बुंदाहिश' में मिलता है। उसके अनुसार विश्व के अन्त के समय एक नया परित्राता या मुक्तिदाता 'साओशियांत' प्रकट होगा। कुछ मिथकों के अनुसार यह जरथुस्ट्र का पुत्र या उसका नया अवतार होगा। वह एक कुमारी कन्या की कोख से जन्म लेगा और मानव जाति का उद्धार करेगा। दुष्ट अरहिमन की पूरी तरह पराजय होगी और अहूरमज्दा का शाश्वत राज्य स्थापित हो जाएगा।

<u>ईरानी इतिहास के विभिन्न काल</u>

<u>ईरानी समाज की विशेष बातें-</u>

ईरानी अधिकतर सुन्दर और बलिष्ठ होते हैं| उन्हें वस्त्रों और आभूषणों का शौक था। घर बसाना और सुखमय जीवन व्यतीत करना, जीवन का अत्यावश्यक अंग समझा जाता था। उनका रहन-सहन बड़ा सुन्दर था। वे उदार, सच्चरित्र, स्पष्ट वक्ता तथा अतिथियों के आदर सत्कार में तत्पर रहने वाले होते थे। उनमें बड़ों के प्रति श्रद्धा का भाव होता था। वे आचार-व्यवहार में भी कुशल होते थे। स्वच्छता की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था। उनका विश्वास था कि शरीर के स्वच्छ होने पर देवदूत उसमें प्रवेश करते हैं। प्रत्येक धार्मिक उत्सव के अवसर पर वे नहा कर, साफ कपड़े पहनकर एकत्र होते थे। उनके यहाँ उपवास को कोई विशेष महत्व प्रदान नहीं किया जाता था। **संक्षेप में इस जीवन को बहुत अधिक महत्व प्रदान किया जाता था।**

<u>स्त्रियों की दशा</u>-

जरथुस्ट्र के समय स्त्रियों की दशा बहुत अच्छी थी। उनको पर्याप्त स्वतंत्रता और आदर प्राप्त था। उनमें पर्दे की प्रथा नहीं थी। यह स्थिति डेरियस के समय तक थी। डेरियस के बाद, दिन प्रतिदिन समाज में स्त्रियों के प्रति आदर कम होता गया। उनके सार्वजनिक जीवन में हिस्सा लेने पर बंदिशें आती गयीं। पर्दे की प्रथा का इतनी कड़ाई से पालन किया जाने लगा कि स्त्रियों को अपने पिता और भाई से मिलने का अधिकार नहीं रहा। यही कारण है जो कि पारसी अभिलेखों में न कहीं स्त्रियों का नाम मिलता है और न किसी कलाकृति में स्त्रियों का चित्र मिलता है।

<u>कृषि व्यवसाय</u>

अधिकांश लोग खेती करते थे। उनके धर्मग्रंथों में कृषि कार्य को बहुत अधिक महत्व प्रदान किया गया है। इसको ही सर्वोत्तम पेशा माना जाता था। ऐसा विश्वास किया जाता था कि कृषि कार्य से देवता अहूरमज्द प्रसन्न होते हैं। लेकिन जमीन अधिकतर जमीदारों के पास थी। किसानों का जमीन पर कोई अधिकार नहीं था।

<u>विनिमय</u>

पहले लेन-देन का कार्य गल्ला और मवेशियों के द्वारा होता था। किसी भी प्रकार की मुद्रा का प्रयोग नहीं होता था। ईरानियों ने लिडिया से मुद्रा प्रणाली की जानकारी हासिल की और डेरिस महान ने डेरिक नाम की मुद्राएं चलायीं। डेरिक का अर्थ सोने का टुकड़ा ही होता है। डेरियस के इन सिक्कों का प्रचलन सिन्धु नदी के प्रदेश तक भी हुआ और इन्हीं के द्वारा आधुनिक भारतीय मुद्रा प्रणाली का आरंभ हुआ ऐसा माना जाता है।*

<u>कला साहित्य, विज्ञान शिक्षा आदि-</u>

ईरान ने कला और धर्म के क्षेत्र में तो काफी उन्नति की लेकिन साहित्य और विज्ञान में विशेष नहीं। शिक्षा या तो धार्मिक स्वरूप की होती थी या फिर युद्ध की।

<u>अंधविश्वास-</u>

बिमारियॉ और उनका निदान इनके संदर्भ में यहॉ आरम्भ में अंध विश्वास भी बहुत अधिक थे। इनके विश्वास के अनुसार दानवीय शक्तियों द्वारा ९९९९ रोग उत्पन्न होते हैं1** इनका निदान जन्तर-मन्तर द्वारा ही संभव है और ये जन्तर-मन्तर पुरोहित ही कर सकते हैं।

(*विश्व की प्राचीन सभ्यताएं: विनोदचंद्र पांडेय :पृष्ठ १३३; ** पृष्ठ १३५)

<u>हखाम्शी युग</u>

ई.पू. 300 तक ईरान के फार्स नामक प्रान्त में उदय हुए 'हखाम्शी' वंश का दबदबा रहा। इस वंश का संस्थापक हखामश था। इस वंश ने एक विशाल राज्य तथा संस्कृति का विकास किया। कुछ विद्धान हखामशी युग का आरंभ ई.पू. 650 मानते हैं। डेरियस या दारा महान 521 ई.पू. में सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। इसकी गणना हखाम्शी काल के महानतम सम्राटों में की जाती हैं। इस साम्राज्य की शासन व्यवस्था बड़ी दृढ़ थी। हखाम्शी साम्राज्य के अंतर्गत ईरान, बेबीलोनिया, मीडिया, फिनिशिया, फिलीस्तान, सीरिया, मिश्र, एशिया मायनर आदि हिस्से और वहॉ की संस्कृतियॉ, इतना ही नहीं तो भारतीय और यूनानी संस्कृतियों का भी सम्मिश्रण देखने को मिलता है| चीन को छोड़कर विश्व के सब संस्कृति सम्पन्न देशों का कुछ न कुछ भाग इसके अंतर्गत आता था। रोमन साम्राज्य के पहले इतनी अच्छी शासन व्यवस्था कहीं देखने को नहीं मिलती। सिकन्दर ने यहॉ आक्रमण किया था तो उसे 400000 टैलेण्ट सोना, ईटों की शक्ल में और 9000 टैलेण्ट, सिक्कों के रूप में मिला था। हखाम्शी सम्राटों का युग ईरानी कला के विकास की दृष्टि से भी विशेष था।

<u>इस युग के धर्म-</u>

1.**<u>जरथुस्ट्र धर्म</u>** : हखाम्शी सम्राट इसी धर्म के अनुयायी थे। उन्होंने इसे राजकीय धर्म घोषित किया था। उन्होंने अहूरमज्दा को सम्राट का दैवी संरक्षक बताया। उलटा सम्राट के शत्रुओं को देवों के आराधक के रूप में चित्रित किया जाता था। हो सकता है इसके पीछे राजकीय कारण रहा हो ताकि अहूरमज्दा की पूजा को महत्ता प्रदान कर, राजा की सत्ता को धार्मिक आभामंडल से युक्त बनाया जाए। इन शासकों का धर्म के प्रति आचरण चतुराई से परिपूर्ण था। उन्होंने ईरान में तो अहूरमज्दा से भिन्न देवों की पूजा को प्रतिबंधित कर दिया लेकिन पदाक्रान्त किए गए पश्चिम एशिया और मिस्र के सेमेटिक तथा अन्य राज्यों के धर्मों को नहीं छुआ। यह बात धार्मिक से अधिक राजनीतिक उद्देश्यों की ओर ही इंगित करती है। डेरियस महान ने लिखा है.

"वह अहूरमज्दा की कृपा से ही सम्राट हुआ।"

इस समय ऐसा भी मत प्रस्तुत था कि अहूरमज्दा को मनुष्यों के नेतृत्व की आवश्यकता है और यह कार्य सम्राट ही पूरा कर सकता है।

लेकिन शासन के प्रतिबंधों के होते हुए भी अन्य देवता पूरी तरह पार्श्व में नहीं चले गए। शासकों के इस धर्म के अतिरिक्त सामान्य जनता की अपनी अलग भी कुछ मान्यताएं थीं। लेकिन उस विषय में अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं है।

एक तीसरा धर्म 'मार्गी' लोगों का था। यह धर्म ऐलम के लोगों का भी था। इस पर सेमेटिक धर्म का प्रभाव था।

कला-

इस काल की कला में मंदिरों आदि का निर्माण न होकर राजमहलों और समाधियों आदि का निर्माण अधिक हुआ। सम्राट 'दारयवउश' के विशाल बेहिस्तून शिलालेख के ऊपर सूर्य के चिन्ह से युक्त अहूरमज्दा की मानवाकृति में मूर्ति बनी हुई है। अन्य स्मारकों पर भी ऐसी ही मूर्तियाँ मिलती हैं।

ससैनियन सभ्यता

दूसरी शताब्दी के अन्तिम काल में फार्स प्रान्त में ही ईरान के राष्ट्रीय राजवंश से संबंधित ही एक नए राजवंश का उदय हुआ। इसे ससैनियन नाम से पुकारते हैं । इसका संस्थापक ससैन था। लेकिन इस वंश के काल में ईरान ने जितनी उन्नति की उतनी किसी और काल में नहीं हुई। **यह एशिया के महानतम सभ्यताओं में एक थी। फिर भी इस दरम्यान समाज में निम्न वर्ग की संख्या सबसे अधिक थी। इनमें कृषि के श्रमिक दास भी थे। इनकी दशा बहुत ही खराब थी। आय का प्रमुख साधन कृषि था जिस पर सामन्तों का पूर्ण नियंत्रण था। इन सामन्तों द्वारा जनता का शोषण जारी** था। कुछ ससैनियन सम्राटों ने जनता की दशा सुधारने के प्रयत्न किए लेकिन उसमें कुछ उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली।

बँक प्रथा-

कहा जाता है कि सर्वप्रथम इस ढंग की प्रथा का आरंभ सीरिया के ईसाइयों ने ईरान में किया और तत्पश्चात् उसे अन्य देशों ने अपनाया। यह बॅक प्रथा ससैनियन शासनकाल में ही शुरू हो गयी। इन बॅकों में अधिकतर व्यापारी वर्ग अपना धन जमा करते थे और उन्हें सूद दिया जाता था। बॅकों से व्यापारियों को कर्ज भी मिलता था। इसके लिए कुछ निश्चित नियम बनाए गए थे।

ससैनियन काल में धर्मों का विकास-

1 **जोरेस्टर धर्म**

पार्थियन सम्राटों के शासन काल में जोरेस्टर घर्म का काफी पतन हो गया था । कुछ शासकों ने ही एकेश्वरवाद की जगह सूर्य, चंद्र और अन्य देवताओं का कद बढ़ाना शुरू कर दिया था। जोरेस्टर धर्म की अग्नि वेदियॉ नष्ट हो गयीं थीं। ससैनियन काल में इसके पुनःस्थापना का प्रयत्न किया गया। अहूरमज्दा को इस काल में 'ओरमज्द' के नाम से पुकारा जाने लगा। शापुर द्वितीय ने इस धर्म के उत्थान के लिए काफी प्रयत्न किए।

2.**<u>मनीच धर्म</u>**: इस धर्म को चलाने वाला 'मानी' नाम का एक विद्धान था। कहा जाता है कि वह एक पाव से लंगड़ा था। उसने शापुर प्रथम को इतना प्रभावित किया कि शापुर उसका अनुयायी बन गया। इस प्रकार मनीच धर्म का उदय शापुर प्रथम के शासनकाल में हुआ। मानी स्वयं को तत्कालीन युग की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु ईश्वर ने भेजा हुआ दूत मानता था। वह स्वयं स्वभाव से बहुत सहिष्णु था।

इस धर्म के मतानुसार संसार मायावी है और बुराई से युक्त है। ब्रह्म को छोड़कर बाकी सब असत्य है। संसार का जन्म दो तत्वों-सत्य और असत्य से हुआ है। सत्य प्रकाश का द्योतक है और असत्य अंधकार का। समस्त संसार में बुराई का साम्राज्य है और उससे मुक्ति का मार्ग है ज्ञान का प्रकाश, आचरण की शुद्धता।

इस धर्म का, आत्मा अमर होने और मोक्ष सिद्धान्त में विश्वास था।

लेकिन इसके अनुयायी दो वर्गों में बंट गए थे-

एलेक्ट : - ये ब्रह्मचर्य के साथ साधुओं की तरह जीवन व्यतीत करते थे अर्थात् घोर आदर्शवादी, नैतिकतावादी और अहिंसा के पुजारी थे। वे फूलों को तोड़ना भी अच्छा नहीं समझते थे। अपनी आवश्यकता इतनी ही वस्तुएं पास रखने के पक्षपाती थे।

हियरर्स :-

गृहस्थ जीवन व्यतीत करते थे। उपवास आदि तथा पूजा पाठ करते थे। अहिंसा और जीव हत्या के विरोधक थे। मूर्ति पूजा में उनका विश्वास नहीं था।

लेकिन बहुराम प्रथम के शासनकाल में मानी को मौत की सजा दी गयी। उसके बाद इस मत का प्रभाव धीर-धीरे समाप्त हो गया।

मज्दक धर्म

कहा जाता है कि इसका प्रवर्तक मज्दक नाम का व्यक्ति था। इसका जन्म 489 ई. में हुआ था। यह वस्तुतः ईरानी और पूर्वी विचारों का समन्वय था। इस धर्म पर ईसाई और हेलेनिस्टिक विचारों का प्रभाव देखा जा सकता है। **इस विचारधारा के अनुसार बुराई का स्रोत, व्यक्ति को उन्नति का उचित अवसर न मिलने में खोजना जाना चाहिए और सामाजिक व्यवस्था अच्छी करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए। शत्रु को मित्र बना लेना यही वास्तविक विजय है। यह विचारधारा मानवतावादी है। जनता ने इस धर्म को अपनाया और परिणामतः एक बड़ी क्रांति हुई जिसे मज्दकाइट के नाम से पुकारा जाता है। लेकिन यह क्रांति असफल हो गयी और धीरे–धीरे इस धर्म का पतन हो गया।**

देवालयों आदि का निर्माण

ससैनियम काल में अनेक देवालय बनवाए गए| पपैक ने अनहित देवता का मंदिर बनवाया। शापुर प्रथम ने भी विशपुर में एक मंदिर का निर्माण करवाया।

वास्तुकला के साथ मूर्तिकला ने भी इस काल में काफी उन्नति की। इसका सुन्दर उदाहरण उत्कीर्ण भाष्कर है। इसमें ईरानी देवसमूह को चित्रित किया गया था।

आम तौर पर ऐसा देखा जाता है कि जिन राजाओं ने महल, नगर आदि का निर्माण किया उन्होंने मंदिर आदि के निर्माण में विशेष योगदान नहीं किया। इससे उल्टा जिस काल में आध्यात्मिक कला की उन्नति हुई उस दरम्यान भौतिक कला अनदेखी रही। लेकिन कुछ इनी गिनी सभ्यताएं ही ऐसी हैं जिनमें दोनों तरह की कलाओं के विकास में सन्तुलन देखा जाता है। ससैनियन सभ्यता उनमें से एक है। भारत में मौर्य काल की कला ऐसी ही है।

अन्य देवता-

इस दरम्यान कुछ और देवताओं की पूजा भी आरंभ हुई। इनमें 'अनहिल' की पूजा उल्लेखनीय है| यह जल का प्रतिनिधित्व करता था। इसका एक मंदिर भी बनवाया गया जिसके चारों ओर जल की खाई बनाई गयी थी।

<u>कर्मकाण्ड और अंधकार</u>

ससैनियन काल में कर्मकाण्ड और अंधविश्वासों में और भी वृद्धि हुई। वैसे ही पुरोहित वर्ग के प्रभाव में भी। लोगों का पुरोहित वर्ग पर इतना विश्वास हो गया था कि वे बीमारी आदि को ईश्वरीय देन मानने लगे थे और उससे छुटकारे का मार्ग माना जाता था पुराहितों द्वारा मंत्र-तंत्र करना।

मज्दा धर्मों का अन्य धर्मों पर असर-

<u>पश्चिम एशिया में येजीदी संप्रदाय-</u>

पश्चिम एशिया में कुर्दों के एक हिस्से के बीच मज्दा धर्म के विचारों और अन्य धर्मों के विश्वासों के सम्मिश्रण से एक सम्प्रदाय उत्पन्न हुआ। इसका नाम 'येज्द' अथवा 'येजीदी' संप्रदाय है। मज्दा धर्म में देवदूतों को 'इजेद' कहा जाता है और इससे ही संप्रदाय का नाम येज्द पड़ा । इस संप्रदाय का आज भी अस्तित्व है।

काकेशिया की कुछ जातियों में मज्दा धर्म के प्रभाव के चिन्ह काफी अर्वाचीन युग तक बने रहे| विशेषतः अंतेष्टि क्रिया के। ओसेतियो और इंगुशों के शवकक्ष इसके प्रमाण है। बाकू में बीसवीं शताब्दी के शुरू तक अग्निपूजकों का मंदिर था।

सातवीं शताब्दी में मुस्लिमों द्वारा पदाक्रान्त होने तक मज्दा धर्म ईरान का राष्ट्रीय धर्म बना रहा। लेकिन आज एक जातीय धर्म के रूप में उसका अस्तित्व भारत के पारसी समुदाय में विद्यमान है। इनके समाज का नेतृत्व इनके पुराहित करते हैं। उच्च श्रेणी के पुराहितों को दस्तुर कहते हैं। इसमें द्वैतवादी मूल विचार कायम है और एक ही सर्वशक्तिमान ईश्वर का विचार भी|

ऐसा ही कुछ अनुसरण ईरान के गब्रों – अग्निपूजकों: शाब्दिक अर्थ काफिरों में किया जाता है। लेकिन गब्रों की संख्या बहुत ही कम रह गयी है।

यहूदी धर्म और ईसाई धर्म-

ऐसा माना जाता है कि यहूदी धर्म में शैतान की कल्पना का मूल जरथुस्ट्र धर्म में ही है।

जगत के अन्त, कयामत, परलोक में प्रतिफल मिलने, मृतक के पुनरूज्जीवन, परित्राता, कुमारी कन्या से जन्म आदि विचारों का यहूदी धर्म और ईसाई धर्म पर बड़ा प्रभाव पड़ा।*

(*दर्शन कोश: प्रगति प्रकाशन मास्को: पृष्ठ 212)

प्रकरण तीन

हित्ती सभ्यता

प्राचीन इण्डो-यूरोपीय जातियों में हित्ती समाज का बहुत महत्व है। हित्तियों का स्थल एशिया मायनर है जो आजकल की टर्की का एशियन प्रदेश है। एशिया मायनर एशिया महाद्वीप का आखरी, पश्चिम में स्थित हिस्सा है| यह टर्की का एक प्रायद्वीप है जिसके उत्तर में काला सागर, पश्चिम में इजियन समुद्र, दक्षिण में भूमध्य सागर है| उत्तर-पश्चिम की अंतिम सीमा पर वॉस्फरस और दर्रेदानियाल के मुहाने इसे यूरोप से अलग करते हैं| हित्ती, एशिया मायनर के मूल निवासी न थे। उनके आगमन का निश्चित काल बताना कठिन है। लेकिन यह निश्चित है कि वे वहॉ अठारवीं सदी ई.पू. पहुॅच चुके थे। हित्तियों का इतिहास छोटे-छोटे नगरों और इन नगर राज्यों से शुरू होता है। बाद में यह एक विशाल हित्ती साम्राज्य में रूपान्तरित हो गया। हित्तियों ने बाबीलोन और मिस्र को भी पराजित किया था । लेकिन इतिहास के दौर में जैसा कि होता आया है, इनकी शक्ति क्षीण होती गयी। हित्ती साम्राज्य का काल लगभग 17 से 13 शताब्दी ई.पू. तक माना जाता है। 1190 ई.पू. में असीरियन सम्राट 'तिगलथ पिलेसर प्रथम' ने हित्ती राज्य को पूरी तरह नष्ट कर दिया। वैसे तो हित्तियों ने एक शक्तिशाली सेना की रचना की थी। इस सेना की शक्ति का केंद्र रथ थे। ये रथ घोड़ों द्वारा खींचे जाते थे। ऐसा लगता है कि उनकी सेना में अश्वारोही सैनिकों की विशेष भूमिका नहीं थी। शुरू में राजा का निर्वाचन होता था। यह सामन्तों द्वारा किया जाता था।

लेकिन 'तेलपिनस' नाम के राजा के शासन काल से उत्तराधिकार की प्रथा शुरू हुई। राजा ही देश का मुख्य न्यायकर्ता, पुजारी और सेनापति हुआ करता था। बहुत से हित्ती राजाओं के स्मारकों में उन्हें पुजारी के रूप में दिखाया गया है। हित्ती राजा को पवित्र माना जाता था।

शुरू में नगर राज्यों का प्रशासन, नगर सभाओं द्वारा संचालित होता था| सभा में मंदिरों के पुजारियों की प्रमुख भूमिका होती थी।

ऐसा प्रतीत होता है कि हित्तियों में प्राचीन काल में मातृसत्तात्मक परिवार प्रथा अस्तित्व में थी जो ई.सा. पूर्व दूसरी सहस्त्राब्दि में पितृसत्तात्मक पद्धति में बदल गयी। इस समाज में दास प्रथा भी थी। शासक और शोषित दो वर्ग थे। प्रारंभिक काल में नारी को जो गौरव प्राप्त था वह समय के साथ लुप्त होता गया।

जहॉ तक न्याय व्यवस्था का प्रश्न है, शुरू में इसकी पीछे काम करने वाली प्रवृत्ति थी जैसे को तैसा। यदि कोई व्यक्ति किसी का दांत तोड़ देता तो पीड़ित व्यक्ति से उस व्यक्ति का दांत तुड़वा दिया जाता था। लेकिन बाद में शायद यह अनुभव किया गया कि यह

व्यवस्था उचित नहीं है। उसका स्थान क्षतिपूर्ति की व्यवस्था ने लिया। यदि कोई व्यक्ति किसी का पैर तोड़ देता तो क्षतिपूर्ति के रूप में उसे पीड़ित व्यक्ति को 50 शेकल चांदी देनी पड़ती थी। दास-दासी के लिए भुगतान की मात्रा 10 शेकल चांदी थी। आम तौर पर हित्ती शत्रुओं के साथ भी कठोर अमानुषिक व्यवहार नहीं करते थे।

हित्ती समाज में प्रमुख व्यवसाय कृषि और पशुपालन ही थे।

इन व्यवसायों के अतिरिक्त आरंभिक स्तर का लौह उद्योग भी था। खनिज पदार्थों की उपलब्धता की दृष्टि से यह प्रदेश समृद्ध है। इसी कारण पश्चिमी एशिया और मिस्र के प्रदेशों में लौह युग शुरू करने का श्रेय हित्तियों को जाता है।

हित्तियों ने भवन निर्माण कला, चित्रकला, मूर्तिकला आदि में भी विकास किया था। इनमें दो प्रमुख लिपियों का प्रचलन था। एक थी हित्तियों द्वारा विकसित चित्राक्षर लिपि और दूसरी बेबीलोनियन लोगों की किलाक्षर लिपि। चित्राक्षर लिपि का विकास करने के पीछे प्रेरणा मिस्री लिपि की ही थी। हित्ती कलाकृतियों में प्रयुक्त हुआ पदायुक्त सूर्य चक्र, मिस्रवासियों के प्रभाव को ही सूचित करता है।

हित्ती साम्राज्य पतन के बाद हित्ती जाति का एक हिस्सा पश्चिम दिशा में बढ़कर इटली तक पहुंचा और वहां एट्रस्कन जाति के नाम से प्रसिद्ध हुआ, ऐसा अनुमान किया जाता है| इस जाति का इटली और रोम सभ्यताओं के निर्माण में भारी योगदान है| ऐसा कहा जाता है कि पश्चिमी एशियायी सांस्कृतिक धाराओं में ईजियन सभ्यता के निर्माताओं तक पहुंचाने का श्रेय हित्तियों को है।

हित्तियों के देवता-

हित्ती जनजातियों के धर्म में, आरंभ से स्थानीय संरक्षक देवताओं की पूजा का महत्व था। ये जनजातीय, सामुदायिक नगरीय देवता थे।

आरंभ में अनातोलिया के निवासी जानवरों, प्राकृतिक शक्तियों जैसे और अन्य वस्तुओं की पूजा करते थे। जैसे पेड़ नदी आदि। दूसरी सहस्राब्दि ई.पू. में उनके देवताओं को मनुष्य योनि प्राप्त हुई। उन्होंने अपने देवताओं को मानवीय रूप दिया। अदृश्यता और अमरता इन दो बातों को छोड़कर अन्य बातों में ये देवता मनुष्य तुल्य ही थे। **देवताओं और मनुष्य के संबंध स्वामियों और दासों जैसे थे।** मनुष्य को उसके लापरवाही के कारण जो दण्ड मिलता था उससे तब तक छुटकारा संभव नहीं था जब तक कि देवता को संतुष्ट नहीं किया जाता। मनुष्य के ऊपर आयी विपदाओं का कारण मनुष्य की देवताओं के प्रति लापरवाही समझा जाता था। हित्तियों के विश्वास के अनुसार देवता अपनी इच्छाएं स्वप्न में मनुष्य को बताते हैं। इन्हीं में से कुछ देवताओं का आगे व्यापक प्रसार हुआ।

हित्ती धर्म का स्वरूप बहुदेववादी था। लेकिन 'मोसम का देवता' सबसे शक्तिशाली समझा जाता था। प्रत्येक व्यक्ति को धार्मिक स्वतंत्रता थी। **वैसे तो सूर्य देवी, अरिन्ना की पूजा प्राक् हित्ती युग में ही व्यापक रूप से की जाती थी।** आगे हित्तीय धर्म में मातृ देवी की उपासना को अधिक महत्व था। 'अरेन्न' नगर की 'अरिन्ना' सबसे प्रमुख देवी थी। उसे 'सूर्यदेवी' माना जाता था। राजा इसको त्रिलोकस्वामिनी और हित्तीय राज्य की संरक्षिका मानते थे। अरिन्ना का पति 'बुरूसेमु' तूफान का देवता था। उत्तर काल में 'हुर्री' जाति के प्रभावांतर्गत इसका तादाम्य हुर्री देवी 'हेफ्त' से कर दिया गया। तो उसके ऊपर उल्लिखित पति का या 'ऋतुदेव' का तादाम्य हेफ्त के पति 'तैशूब' से हो गया। ऋतुदेव को हित्तीय देश का, स्वर्ग का स्वामी समझा जाता था। हैफ्त को सिंहवाहिनी के रूप में चित्रित किया जाता था। तैशूब के चित्रण में, एक हाथ में परसे जैसा अस्त्र दूसरे हाथ में त्रिशूल और वाहन के रूप में वृषभ (बैल) दिखाया गया है। अर्थात् भारतीय आर्यों की भांति यहाँ भी वृषभ को धार्मिक पशु माना जाता था। तैशूब और हैफ्त की पूजा सारे हित्ती साम्राज्य में होती थी। देश के एकीकरण के बाद इनकी पूजा को राष्ट्रीय धर्म घोषित किया गया था। हिन्दू धर्म के शिव और हित्ती धर्म के ऋतुदेव में सादृश्य है। दोनों जगह मातृ शक्ति की पूजा प्रचलित है और पशुओं को देवताओं का वाहन माना गया है। दोनों धर्मों में अनुष्ठानों और पूजाओं को स्थान है। इस समानता के आधार के विषय में कोई ठोस सामग्री उपलब्ध नहीं है। अतः कुछ निश्चित विधान नहीं किया जा सकता। कुछ अन्य जगह तैशूब के वाहन के रूप में दो सिरों वाली चील मिलती है। आगे चलकर एक राज्य चिन्ह के रूप में यह प्रतीक कई यूरोपीय देशों में पहुंचा।

<u>उर्वरता की देवी</u>

वास्तव में राजकीय धर्म ने प्राचीन कृषि मूलक धर्म को आत्मसात कर लिया। इस प्राचीन धर्म में सबसे महत्वूपर्ण थी उर्वरता की देवी महा माता की पूजा। यह ज्ञात नहीं कि हित्ती उसे निश्चित किस नाम से पुकारते थे। लेकिन आगे चलकर लघु एशिया में मातृ देवी को मा, रेआ और सिबेला नामों से भी पुकारा जाता था। **बेबीलोनिया और मिस्र की ही तरह यहाँ भी उर्वरता की देवी का पुरूष साथी या पति कहिए, था। यह उर्वरता का युवा देवता था जिसे आगे 'अत्तीस' नाम दिया गया।** इन देवताओं की पूजा और अनुष्ठान रहस्य मूलक थे। **इसके अंतर्गत ही एक ढंग से मंदिर के अंदर वेश्यावृत्ति को अनुमति थी। तो दूसरी ओर पुरोहितों द्वारा आत्मवंधियाकरण को आवश्यक समझा जाता था। यह विरोधाभासात्मक स्थिति थी।** लगता है इस बर्बर प्रथा को उचित सिद्ध करने के लिए ही एक मिथक की रचना की गयी। इसके अनुसार मातृ देवी की प्रणयाराधना से तंग आकर युवा और सुंदर अत्तिस ने अपने आपको नपुंसक बना लिया। बाद में चीडवृक्ष के नीचे प्राण त्याग दिये। चीड को अत्तीस का पवित्र वृक्ष माना जाता था। मगर उसे प्रेम करने वाली देवी ने पुनरुज्जीवित कर दिया। अत्तीस की मृत्यु और पुनर्जीवन का पर्व बसंत में मनाया जाता था। आगे इस

अनुष्ठान को आरंभिक ईसाई समुदायों ने अपनाया। फलस्वरूप हमें ईसा के मरण और पुनः जीवित हो उठने की कहानी मिलती है| प्राचीन हित्ती राजधानी के निकट 'यजिलीकय' की चट्टान पर एक विशाल चित्र बना हुआ है जिसमें मातृ देवी के अपने प्रेमी, उर्वरता के देवता से मिलन का दृश्य है। 'तेलेपिनुस' नामक एक और वनस्पतियों तथा उर्वरता के देवता का मिथक भी मिलता है।

हित्ती साम्राज्य में राजा बहुत महत्वपूर्ण होता था। लोग उसे 'मौसम के देवता' का प्रतिनिधि मानते थे। हित्ती सम्राट 'सूर्य' की उपाधि धारण करने में गौरव अनुभव करते थे।

एक 'शोसक' नामक देवी की पूजा होती थी। 'हुर्तु सिलिस तृतीय' ने इसे अपनी व्यक्तिगत देवी बनाया था।

हित्तियों ने बेबीलोनियन और सुमेरियन देवताओं, जनु, एनलिल और इया आदि को भी अपना लिया। इस प्रकार साम्राज्य के विभिन्न प्रदेशों में विभिन्न देवताओं की पूजा होती थी। उसकी छूट भी थी। **कालान्तर में विभिन्न संप्रदायों के बीच एकसूत्रता निर्माण करने की आवश्यकता के फलस्वरूप एक राष्ट्रीय धर्म का विकास हुआ। विभिन्न भागों और संप्रदायों के देवी देवताओं के बीच तादाम्य स्थापित किया गया।** उसका उदाहरण हमने ऊपर देखा ही है।

<u>अनुष्ठान और कर्मकाण्ड</u>

हित्ती धर्म में भी हिन्दू धर्म के भांति पूजा-पाठ और कर्मकाण्ड की प्रधानता थी। कुछ-कुछ बातों में काफी समानता थी। जैसे पूजा के लिए देवालयों में जाना, देवताओं को स्नान कराना, भोजनपान कराना या भोग लगाना, देवताओं के मनोरंजन के लिए नृत्य-गान आदि कार्यक्रम आयोजित कराना। यज्ञ किए जाते थे और उनमें विधि-विधानों का कठोरता से पालन किया जाता था। पवित्रता का विशेष ध्यान रखा जाता था। देवी-देवताओं की रथ यात्राएं निकाली जाती थीं। हित्तीय देवताओं की इन यात्राओं में स्त्रियॉ भाग लेती थीं। देवदासियॉ जलती मशाल लिए जुलूस के आगे चलती थीं।

कर्मकाण्डों का संचालन पुजारी करते थे। पुजारियों को शारीरिक स्वच्छता और पवित्रता का बहुत अधिक ध्यान रखना पड़ता था। हित्तियों का विश्वास था कि पवित्र हृदय से मंदिर में प्रवेश करने से मनोकामनाएं पूरी होती हैं।

धार्मिक उत्सवों के स्थान थे मंदिर, पर्वत या फिर खुली जगह। उत्खनन में कई छोट-बड़े मंदिरों के अवशेष मिले हैं। छोटे मंदिरों में मूर्तियॉ तो कई देवताओं की होती थीं लेकिन पुजारी एक ही होता था| ऐसा प्रतीत होता है कि छोटे मंदिरों में देव मूर्ति के स्थान पर उसका प्रतीक जैसे ऋतुदेव के स्थान पर उसके वाहन वृषभ की मूर्ति रखना ही पर्याप्त समझा जाता था। बड़े मंदिरों में देवताओं की विशाल मूर्तियॉ स्थापित की जाती थीं। वहॉ पुजारी भी एक से अधिक होते थे।

बलि की प्रथा

पशु बलि की प्रथा थी। बकरियों की बलि देना अत्यंत पुण्य कार्य समझा जाता था। एक कलाकृति में राजा और रानी को एक पात्र में जल लिए और एक सेवक को पीछे एक पशु को पकड़े हुए बताया गया है। हो सकता है यह पशु बलि के लिए ही लाया गया हो। लेकिन नरमेघ का कहीं उल्लेख नहीं मिलता।

मृतक का संस्कार

शुरू में हित्ती मृतक को जमीन में गाड़ देते थे। किन्तु धीरे-धीरे इस प्रथा का स्थान दाह संस्कार ने लिया। ये संस्कार 13 दिन चलते थे। दाह संस्कार के उपरांत मृतक की हड्डियां एकत्र की जाती थीं। उन्हें शराब में डुबाकर गाड़ दिया जाता था। हिन्दुओं में अस्थियां किसी पवित्र नदी में विसर्जित कर दी जाती थीं।

परलोकवाद

हित्ती लोग परलोक में विश्वास करते थे या नहीं इस विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता । एक मुद्रा पर उच्च आसन पर बैठे न्यायाधीश को चित्रित किया गया है| सामने एक सेवक एक मृतक को प्रस्तुत कर रहा है। कुछ विद्वान इसमें पारलौकिक जीवन की झांकी होने का आभास मिलता है, ऐसा कहते हैं।

जादू

हित्ती धर्म में जादू का अत्यंत प्रमुख स्थान था। आसुरी शक्तियों से सहायता लेने, काला जादू उपयोग में लाया जाता था। लेकिन जिन आठ अपराधों के लिए मृत्युदंड का प्रावधान था उसमें शत्रु पर काला जादू करना भी एक था। पुण्यात्माओं की सहायता के लिए सफेद जादू का प्रयोग होता था। जादू विषयक अनुष्ठान भी किए जाते थे।

शामानी विश्वासों के अवशेष

भूत-प्रेतों, मंत्र-तंत्र में भी लोगों का काफी विश्वास था| भूत-प्रेतों से तथा अनेक तरह के असाध्य रोगों से राहत और रक्षा के लिए मंत्र-तंत्रों का सहारा लिया जाता था।

कुछ पक्षी ऐसे भी थे जिन्हें शकुन-अपशकुन, शुभ-अशुभ का प्रतीक माना जाता था। बलि दिए गये पशु-प्रकृति को देखकर भी भविष्य जानने का प्रयत्न किया जाता था।

प्रकरण चार

ईजियन सभ्यता

यूनान और एशिया मायनर के बीच के सागर को ईजियन सागर कहते है| अति प्राचीन काल में इस सागर के छोटे-छोटे द्वीपों पर उन्नत सभ्यता थी। विभिन्न द्वीपों पर विकसित सभ्यता के स्वरूपों में मामूली फर्क था और उनका काल भी कुछ-कुछ भिन्न था। फिर भी उनकी आत्मा एक थी ऐसा कहा जाता है और इसी कारण इस पूरे भाग में विकसित सभ्यता को 'ईजियन सभ्यता' के नाम से ही जाना जाता है| क्रिट के महान सम्राट 'मिनोअन' के नाम पर इसे 'मिनोअन सभ्यता' भी कहा जाता है। यह बेबीलोनियन और सिंधु-हड़प्पा सभ्यताओं के समकालीन थी। औसत तौर पर इस सभ्यता का काल ईसा से लगभग 3000 वर्ष पूर्व माना गया है। इतिहास की सर्वप्रथम जलसेना यहीं बनी। इसे युनानियों ने नष्ट कर दिया।1

1(विश्व इतिहास की झलक (१)पं नेहरू पृष्ठ.२१.२२)

इस सभ्यता के विषय में पहले कोई जानकारी नहीं थी। 1870 ई. में हेनरिक श्लीमेन द्वारा ट्राय की खुदाई के दरम्यान इसका पता चला। 1894 में आर्थर इवान्स द्वारा क्रिट की अति प्राचीन राजधानी 'नौसास' का पता लगाया गया। अब तक लगभग 100 नगरों का पता चला है।

जितनी भी प्राचीन सभ्यताएं विकसित हुई, वे सब नदियों के किनारे हुई हैं। लेकिन ईजियन सभ्यता समुद्र के बीचोबीच विकसित हुई। यहीं इसकी विशेषता है। ऐसा कहा जाता है कि यूरोप में सभ्यता का आरम्भ और विकास ईजियन प्रदेश में हुआ। इसी कारण इसे पाश्चात्य संस्कृति की जननी कहा जाता है। रेने ने इस सभ्यता के विषय में कहा है- .

"Greek civilization, the mother of civilization of west and Rome, the daughter of Aegean Civilization" - Reinach

यह भूभाग एशिया, अफ्रीका और यूरोप का एक तरह से संधी स्थल कहा जा सकता है। भौगोलिक विशेषताओं के कारण यह प्रदेश सामुद्रिक व्यापार की दृष्टि से अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुआ। इसी कारण यहॉ की सभ्यता का काफी अधिक विकास हुआ। इसमें कला का भी अंतर्भाव है। स्पेग्लर जैसे विद्वान इस सभ्यता को मिस्र की सभ्यता की ही एक शाखा मानते हैं, तो बिल ड्यूरॉट इसका आदि स्थल एशिया मानते हैं।

ईजिअन सभ्यता का विकास सबसे पहले क्रिट में हुआ। ईजियन प्रदेश की सबसे प्राचीन सभ्यता का समय उत्तर पाषाणकालीन है। यह समय ई.पू. 6000 से ई.पू. 3000 के

बीच का माना जाता है| इस काल तक पहुॅचत-पहुॅचते यहां के निवासी ताम्र में टिन मिलाकर कांस्य बनाना सीख गए थे। क्रिट के निवासी सर्वप्रथम नाविक थे।

यहां की सभ्यता को समय की दृष्टि से तीन भागों में बांटा जाता है।

1) पूर्व मिनोअन काल

2) मध्य मिनोअन काल

3) उत्तर मिनोअन काल

ईजियन नागरिकों का रहन-सहन काफी उच्च कोटि का था। स्वच्छता की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था। ईजियन लोग आनंदमय जीवन व्यतीत करने के पक्षधर थे। वे स्वतंत्रता और सौंदर्य के चहेते थे अर्थात् दुराग्रही न थे। समाज में स्त्रियों की दशा अच्छी थी। उन्हें बहुत ऊँची दृष्टि से देखा जाता था। पुरूष और स्त्रियों के नागरिक अधिकार समान थे।

ईजियन प्रदेश में कृषि के लिए वातारण अनुकूल नहीं था। इस कारण आय का मुख्य स्रोत उद्योग थे।

जहां तक कला का संबंध है, वहॉ कला की भी काफी उन्नति हुई थी। वहॉ की कला में विशालता के नहीं, बल्कि सजीवता के दर्शन होते हैं| वहॉ कला में प्रकृति के विभिन्न रूपों का चित्रण किया गया है।

<u>ईजियन लिपि</u>

ईजियन लोगों की लिपि को चित्राक्षर लिपि ही कहा जाएगा। इसमें लगभग 125 चिन्ह होते थे। इनमें 40 चिन्ह हित्ती लिपि से मिलते जुलते थे। जबकि कुछ मिस्री चित्राक्षरों जैसे थे। ईजियन भी मिट्टी की तख्तियों पर लिखते थे। १९०८ में वहॉ एक अभिलेख मिला है। साढ़े छह इंच व्यास की मिट्टी की तश्तरी पर वह लिखा है। इसमें 241 चित्राक्षर है। यह क्रिट में मिला सबसे महत्वूपर्ण लेख समझा जाता है। ऐसा अन्दाजा है कि वह कोई मंत्र है। लेकिन अभी तक उसे पढ़ा नहीं जा सका। मिनोअन काल में चित्राक्षर लिपि के साथ एक रेखालिपि का भी विकास हुआ था। इसमें लगभग 90 चिन्ह थे। इस लिपि में लिखते समय पहली पंक्ति बाये से दाये और दूसरी पंक्ति दाये से बायी ओर लिखी जाती थी। लेकिन ईजियन लिपियों की सबसे बड़ी समस्या यह है कि उन्हें आजतक भलीभांति पढ़ा नहीं जा सका।

ईजियन धर्म

लिपि पढ़ने में आ रही कठिनाई के कारण ईजियन लोगों के धर्म के विषय में अधिक विस्तार में जानकारी उपलब्ध नहीं है। फिर भी उत्खनन में प्राप्त सामग्री के आधार पर उनके धार्मिक विश्वासों की कुछ बातें ज्ञात हुई हैं।

सर्वप्रथम महत्वपूर्ण बात है| ये लोग बहुदेववादी थे। वे देवताओं के साथ-साथ पाषाण पूजा, आयुध पूजा, वृक्ष पूजा, पशु पूजा भी करते थे।

पाषाण पूजा-

पर्वतों की चोटियों के पत्थरों में दैवी शक्तियों का वास होता है ऐसा ईजियन समाज में विश्वास था| अतः पत्थरों को विभिन्न आकार दिये जाते थे और फिर उनकी पूजा की जाती थी। जैसे पत्थर के स्थंभ, पत्थर के परशु (बाद में घातु के परशु बनने लगे)| परशु को देवलोक से फेंका हुआ वज्र समझा जाता था।

शस्त्र पूजा-

ढाल को दैवी प्रतीक मानकर उसकी पूजा की जाती थी। ढाल अत्यंत पवित्र वस्तु मानी जाती थी। पूजा गृहों, मुद्रिकाओं आदि पर ढाल के चित्र मिले हैं। अवशेषों में लैटिन के अंक आठ जैसे मूठ धर ढालों की प्रतिकृतियॉ पायी गयी हैं।

पशु पूजा-

पशु पूजा का विशेष महत्व था। पशुओं के साथ पक्षी भी पूज्य माने जाते थे। कपोतों को बड़ा आदर प्राप्त था। इसका मूल टोटमवाद में ही ढूंढा जा सकता है।

वृक्ष पूजा-

प्रकृति की विभिन्न शक्तियों की उपासना की जाती थी। प्राकृतिक शक्तियों का प्रतीक वृक्षों को समझा जाता था और उनकी पूजा की जाती थी। वृक्ष पूजा से संबंधित अनेक चित्र मिले हैं| एक चित्र में सृष्टि देवी एक वृक्ष के नीचे चित्रित की गयी है।

मातृ देवी

मातृ देवी की उपासना का विशेष महत्व था| यह देवी समस्त ब्रह्माण्ड की स्वामिनी, पृथ्वी, स्वर्ग, पाताल की सम्राज्ञी तथा समस्त जीवित वस्तुओं की जननी समझी जाती थी। उसकी बांहों तथा कमर में सर्प लिपटे होने की कल्पना की गयी थी। सर्प को माता का प्रतीक समझा जाता था। हाथों में सर्प पकड़ी हुई नारी मूर्तियॉ मिली हैं। वे सर्प देवी या सर्प मंदिर

के पुजारिनों की होनी चाहिए। माता के भिन्न-भिन्न रूपों में अनेक चित्र मिलते है। ईजियन समाज में देवी-देवताओं का मानवी करण हो चुका था। यही कारण है कि मातृ देवी का स्वरूप स्त्री जैसा ही है। पूजा की आकृतियों पर स्त्रियों की आकृतियां प्रायः मिलती हैं। इससे स्पष्ट है कि स्त्री देवताओं की पूजा की जाती थी। माता को जगत्पालक होने के साथ-साथ जगत की संहारक भी समझा जाता था। ईजियन लोगों ने विश्व मां को दुर्गा माता की तरह चित्रित किया है। भित्ती चित्रों में मां को निम्न रूपों में चितेरा गया है।

1) एक हाथ में परशु, दूसरे में धनुष्य बाण लिए हुए सिंहासन पर विराजमान।

2) परशु और धनुष्य बाण के साथ-साथ मां के साथ सिंह भी है।

मातृ देवी के साथ ही वहॉ एक और देवता की पूजा होती थी। इस देवता को कभी माता के पीछे जाता हुआ तो कभी सिंहों से खेलता हुआ चित्रित किया गया है। कुछ विद्वानों का मत है कि आरम्भ में इस देवता को माता का पुत्र माना जाता था। लेकिन कालान्तर में उसे माता के प्रेमी के रूप में चित्रित किया जाने लगा। वह अमर था। यूनानी उसे 'वेल्केनोस' और 'क्रीट का जियस' नाम से पुकारते थे। इस देवता का प्रतीक वृषभ था। वैसे दोहरा परशु भी माता और इस देवता दोनों का प्रतीक था ही। क्रिटवासियों का विश्वास था कि जिस स्थान पर यह चिन्ह बना दिया जाता है उस स्थान की रक्षा स्वयं देवता करते हैं। इस देवता को भी संसार का पालक तथा संहार कर्ता दोनों माना जाता था। इस देवता की संतुष्टि के लिए अनेक प्रकार के यज्ञ किए जाते थे, जिनमें बैलों की बलि दी जाती थी।

<u>धार्मिक प्रतीक</u>-

वृषभ और दोहरे परशु के अतिरिक्त जो अन्य प्रतीक पूज्य समझे जाते थे उनमें सूर्य, चंद्र, स्वस्तिक तथा 3 की संख्या थी। स्वस्तिक का चिन्ह कई वेदियों, बर्तनों और मूर्तियों पर बना हुआ मिलता है। तीन की संख्या बहुत कल्याणकारी मानी जाती थी। उत्खनन में प्रत्येक पवित्र वस्तुएं अधिकतर तीन की संख्या में ही प्राप्त हुई है। जैसे तीन स्तंभ, तीन मूर्तियॉ, तीन वृक्ष, तीन ढालें इत्यादि। वृषभ का सिंग भी धर्म चिन्ह माना जाता था। उसे राजमहलों की छतों और वेदिकाओं पर बनाया जाता था।

<u>मंदिर</u> :-

प्रारंभिक काल में क्रिटवासियों के पूजा गृह नहीं होते थे। वे या तो गुफाओं में या फिर खुले मैदान में, वृक्षों के नीचे और पर्वतों के ऊपर देवताओं की उपासना करते थे। समय के साथ पवित्र स्थान की रक्षा के लिए उन्होंने पत्थर का घरौंदा बनाना शुरू किया। बाद में उपहार आदि रूप में प्राप्त सामग्री की रक्षा के लिए कक्ष बनाने लगे, जिन्होंने अंततः मंदिरों

का रूप ले लिया। मंदिर सामाजिक उपासना के लिए होते थे। अधिकतर इनका निर्माण पर्वतों के ऊपर या किसी अन्य ऊँचे स्थान पर होता था। व्यक्तिगत पूजा के लिए घर में स्तंभ बनाए जाते थे। मूर्तियॉ और वेदियों भी बनायी जाती थीं।

<u>उपासना विधि</u>

मंदिर प्रवेश के पूर्व उपासक अपने को जल और तेल से पवित्र करता था। तत्पश्चात् वह अर्ध्य देता था और देवी को खाद्यान्न, पेय, फल-फूल चढ़ाए जाते थे।

<u>बलि</u>

बलि की प्रथा भी प्रचलित थी। गाय, बैल, भेड़ और बकरों की बलि दी जाती थी।

क्रिट का समाज नारी प्रधान था। देवालय में अधिकतर स्त्रियॉ ही रहती थीं। इन्हें मनुष्य को देवता के समीप ले जाने वाला माध्यम समझा जाता था। पुजारियों की संख्या कम रहती थी। पुजारियों की वेशभूषा पवित्र समझी जाती थी अतः पुजारी वर्ग भी स्त्रियों की वेशभूषा धारण करता था। इतना ही क्यों? क्रिट का राजा भी धार्मिक कार्यों के अवसर पर स्त्रियों जैसी वेशभूषा धारण करता था । इसमें चर्म का बना हुआ स्कर्ट प्रमुख था।

मंदिरों में धूपबत्ती जलाने की प्रथा थी। संगीत-नृत्यों के साथ उत्सव मनाए जाते थे। जैसा कि ऊपर कहा गया है, यहॉ भव्य की जगह छोटी-छोटी मूर्तियॉ मिलती हैं ।

<u>राजा और धर्म</u>

क्रिट का राजा 'मिनोआ' (Minoan) मिस्र की फराओं की भांति पुराहित भी होता था। प्रारंभ में वह वृषभ देवता का प्रतीक था । बाद में उसे जियस देवता का पुत्र समझा जाने लगा। उसके कानून दैवी आदेश माने जाते थे।

<u>शव का संस्कार</u>

ईजियन लोगों में सामूहिक दफन की प्रथा थी। 'गोनियाँ' में कुछ मकबरे और अनेक अस्थिपंजर मिले हैं| मकबरे मधुमक्खी के छत्ते की तरह गोल होते थे। शवों के साथ हाथी दांत की सिली, पत्थर और संगमरमर के बर्तन, हथियार और मूर्तियॉ भी मिली हैं। ईजियनों की समाधियॉ छोटी होती थीं।

उनमें यह विश्वास था कि मृतक की आत्मा अपने संबंधियों तथा मित्रों के निकट पृथ्वी पर ही रहती है, अतः मृतकों को खाद्य पदार्थ, दीपक, रत्न, जेवर और शस्त्र के साथ घर के पास गाड़ा जाता था।

<u>जादू टोना</u> .

जादू टोने का यहॉ भी महत्वपूर्ण स्थान था।

प्रकरण : पांच

यूनानी सभ्यता

प्राचीन यूनान बाल्कन प्रायद्वीप के दक्षिणी भाग पर स्थित था। यहॉ वर्षा अत्यन्त कम होती थी और यहॉ की मिट्टी भी उर्वर नहीं थी। कृषि के उपयोगी मैदान केवल दक्षिण में लकोनिया और मेसेनिया, मध्य यूनान में बिओरिया और उत्तरी भाग में थेसेली में ही थे। बाल्कन प्रायद्वीप में एक भी बड़ी नदी नहीं है। इस कारण पूर्वी देशों के प्रारंभिक इतिहास में नदियों की जो भूमिका थी उसका यहॉ अभाव था। लेकिन यहां के समाज के विकास में समुद्र की भूमिका बड़ी महत्वपूर्ण है। इस कारण यूनान में समुद्र गमन और इसके आधार पर व्यापार विकसित हुए। इस प्रदेश में संगमरमर और खनिजों की विपुलता थी।1

1 (संक्षिप्त विश्व इतिहास. भाग१.पृष्ठ ५५)

ऐसा समझा जाता है कि यूनान में पहले मिस्री सभ्यता की प्रतिनिधि क्रिट सभ्यता से संबंध रखने वाली कोई भूमध्य प्रदेशीय जाति वास करती थी। हिन्दी यूरोपीय जाति के घोड़ेवालों ने वहॉ पहुंचकर उन्हें पराजित किया और दासता युग की शुरूआत हुई| यहॉ की सभ्यता के सृजन की यह शुरूआत थी।[2] इनके आदि निवास स्थान के विषय में ऐसा माना जाता है कि वे बाल्कन प्रायद्वीप के उत्तर-पश्चिम में रहते थे। वहॉ आर्य-अनार्य जाति का मिश्रण हुआ। ये चार शाखाओं में विभक्त थे।

1) एकियन 2) आयोनियन 3) आयोसियन 4) डोरियन

2(मानव समाज : राहुल सांस्कृत्यायन पृष्ठ ७९-८०)

एकियाई यूनान

17 वीं सदी ई.पू. तक पेलोपोनिसस के प्राचीन यूनानी अथवा एकियाई राज्य, आर्थिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से काफी विकसित हो चुके थे। वे पंद्रहवीं और तेरहवीं ई.पू. सदी के बीच अपने चरमोत्कर्ष पर थे। इनमें सबसे बड़े आर्गोलिस के माईसीने और तिरेन्स तथा मेसेनिया में पाइलोस नगर राज्य थे। इनके दुर्ग जैसे महलों के खंडहर आज तक मौजूद हैं। पाइलोस के उत्खनन में एक पुरातन लिपि का पता चला है। 1953 में युवा अंग्रेज विद्वान माईकेल वैंट्रिस ने इस लिपि को पढ़ने की पद्धति विकसित की। इस लिपि को 'बी लिपि' नाम दिया गया है। यहॉ दास प्रथा के अस्तित्व के संकेत मिलते हैं।* लेकिन बाद में इस सभ्यता का आयोनी और फिर डोरिक कबीलों के आक्रमणों और विजय के कारण अस्तित्व मिट गया।

(*संक्षिप्त विश्व इतिहास,भाग 1: पृष्ठ 57)

<u>यूनान का अगला इतिहास</u> :

इतिहास का अगला कालावधि बारहवीं से आठवीं शताब्दी ई.पू. तक का है। लेकिन इस कालावधि का समाज, पूर्ववर्ती एकियाई सभ्यता की तुलना में पिछड़ा हुआ था। इस काल की सभ्यता ग्राम सभ्यता थी। ई.पू. दसवीं सदी में होमर नाम का महाकवि हुआ। यूरोप का प्रथम महाकवि होने का गौरव उसे प्राप्त है। उसकी दो रचनाएं 'एलियड' और 'ओडिसी' है। इन महाकाव्यों को पाश्चात्य जगत में, साहित्य के महाशिखर माना जाता है। इनमें यूनान के वीरों की गौरव गाथाएँ हैं। इस कारण इस युग को 'वीरगाथा काल' कहा जाता है। उसे 'महाकाव्यों का युग' तथा 'होमर युग' भी नाम दिया गया है। इन काव्यों का प्रभाव यूनान की जनता पर बहुत अधिक रहा। इनमें वर्णित घटनाएं और यूनानी समाज की जीवन प्रणाली इसी विशिष्ट काल की हैं। ये दोनों हमारे रामायण-महाभारत जैसे ग्रन्थ हैं। ग्रीक संस्कृति का आरंभ होमर से ही माना जाता है।

जब प्रत्येक जन या कबीले का मुखिया या बोसिलियस हुआ करता था जो अपने कबीले का युद्ध में नेतृत्व करता था| सर्वोच्च न्यायाधीश और मुख्य पुरोहित की जिम्मेदारियां भी वहीं निभाता था। इस समाज में दासों की संख्या कम थी और अधिकांशतः उनका उपयोग घर के काम में किया जाता था।

<u>होमरकालीन धर्म</u>

होमरकालीन धर्म सादा और सरल था। उपासना के लिए अधिक समय नहीं लगता था। भोजन के समय देवता को भोजन और सुरा अर्पित की जाती थी। धार्मिक उत्सवों का बड़ा महत्व था। सार्वजनिक धार्मिक कार्यों के लिए प्रत्येक नगर में पुरोहित नियुक्त किए जाते थे। परिवार का प्रमुख अपने परिवार के लिए और राजा पूरे राज्य की ओर से यज्ञ करता था। **देवताओं की पूजा का उद्देश्य अच्छी फसल और अन्य सभी कार्यों में सफलता के लिए देवताओं को प्रसन्न करना होता था। बलि की प्रथा भी प्रचलित थी। पुण्य और पाप की कोई निश्चित धारणा नहीं थी। यूनान वासियों की भावी जीवन के बारे में भी कोई स्पष्ट धारणा नहीं थी। ऐसी मान्यता थी कि 'हेड्स' नामक स्थान में मृतात्माएँ रहती हैं। मृत्यु के बाद मनुष्य वहीं जाता है| वहॉ पूर्ण अंधकार होता है। वे पिशाच और भूतप्रेतों में भी विश्वास करते थे।**

इस युग के धर्म में नैतिकता के पुट की जगह यथार्थ वादी दृष्टि अधिक थी। लोग पाप-पुण्य आत्मा-ईश्वर, परलोक आदि बातों के विषय में अधिक चिन्तित नहीं थे।

वैसे तो यूनानी धर्म का इतिहास डेढ़ हजार साल से भी लंबा है, चौथी शताब्दी में ईसाई धर्म के विजय तक। बीसवीं शताब्दी के आरंभ में ज्ञात हुई मायसिनी सभ्यता के प्राप्त हुए लेखों में, हाल में पढ़े गए कुछ नाम आगे के क्लासिकल युग के देवताओं आर्टेमिस,

पोसिडन, हर्मीज, हेरा, जीयस, हेस्टिया आदि से समानता रखते है| ऐसा समझा जाता है कि इस संस्कृति के संवाहक 'एकियन' यूनानी थे। लेकिन फिर भी केवल इस कारण से विद्वान यह मानने को उद्यत नहीं है कि माइसिनी धर्म, यूनानी धर्म का आरंभिक चरण था।

<u>प्राकृतिक तत्वों का पूजन</u>

इस युग में प्राकृतिक तत्वों का पूजन किया जाता था।

<u>टोटमवाद के निशान</u>

जीयस संबंधी मिथकः वह पृथ्वी पर अपने को पसंद आयी स्त्री से मिलन के लिए कभी वृषभ, कभी हंस, और कभी सुनहरी बूंदों वाली वर्षा का रूप धारण कर लेता था। यह कबीले की किसी स्त्री के टोटेम से गर्भधारण करने के प्रसिद्ध आदिम विश्वास का ही रूपांतर है।

बहुत से मानवरूपी देवताओं के बिंबों में उनके किसी जीव से उत्पन्न होने की मान्यताएं हैं, जैसे अपोलों का भेड़िया से, आर्टेमिस का मादा भालू अथवा हिरण से, हार्मीज का भेड़ से, हेरा का गाय अथवा बकरी से उत्पन्न होना। मिमाडोना की चीटियों से उत्पत्ति का मिथक था| विभिन्न जीवों से संबंधित स्थानीय वर्जनाएँ भी थीं। लैकोनिया की पोसीडन झील की मछलियों को और टेगेआ के करीबी एक पर्वत पर कछुओं को मारना और खाना वर्जित था।

<u>शिकार से संबंधित पुरातन विश्वास और अनुष्ठान</u>

दूसरी सहस्राब्दि ईसा पूर्व में भी एकिया के पाट्री नामक नगर में 'आर्टेमिस लाफ्रिया' के सम्मान में प्रतिवर्ष एक पर्व मनाया जाता था। इसमें पहले दिन बारहसिंग हिरणों द्वारा खींचे जाने वाले रथ पर मुख्य पुजारिन की शोभा यात्रा निकलती थी। दूसरे दिन बड़े पैमाने पर बलियां दी जाती थीं| इसमें बारहसिंगा, सांभर, सूअर, भालू, भेड़िया आदि की बलियां होती थीं। **घरेलू पशुओं और पक्षियों को जीवित ही यज्ञकुंड में फेंक दिया जाता था।** जंगली कंदमूल भी इसके लिए उपयोग में लाए जाते थे। **इस अनुष्ठान का स्वरूप नृशंस ही था। उसे शिकारी कबीलों के बलिभोज का ही रूप मानना चाहिए।** वह प्राचीन यूनान के पारंपरिक धार्मिक कल्पनाओं से मेल नहीं खाता।

<u>प्रेतात्माओं में विश्वास</u>

प्राचीन यूनान में भी प्रकृति की बहुसंख्य छोटी-बड़ी प्रेतात्माओं में विश्वास था। जल तथा वन की देवियां थीं 'नायड' और 'ट्रायड' । पर्वतों की स्वामी प्रेतात्माएं भी थीं।

पशुपालन तथा कृषि

होमर काल में जीवन का मुख्य आधार पशुपालन था। उस समय कृषि से संबंधित देवता अधिक महत्व नहीं रखते थे। जब कृषि का अच्छा विकास हुआ तो उससे संबंधित देमितर, कोरी और डायोनिसस आदि देवताओं का महत्व भी बढ़ गया। इनका उल्लेख मायसिनी अभिलेखों में नहीं है। होमर के काव्य में भी इनका उल्लेख चलते-चलते ही है।

उर्वरता की देवी देमितर थी। उसकी पुत्री पर्सिफोनी (कोरी) यह अन्न का प्रतिरूप थी। ये शुद्ध यूनानी देवताएं हैं जिनकी पूजा का मुख्य केंद्र एल्युसिस था। एल्युसिनियन गुहयानुष्ठान प्रसिद्ध है। **कृषि की संरक्षक देवी के रूप में देमितर की पूजा फिगलिंया में भी की जाती थी।** यहॉ फल, शहद, नयी ऊन आदि के रूप में सारा समुदाय उसे चढ़ावे अर्पित करता था। ये वस्तुएं वेदी पर रखकर ऊपर से जैतून का तेल डाला जाता था। अच्छी फसल के लिए टिथोरिया के निवासियों द्वारा किए जाने वाले जादू-टोने भी दिलचस्प थे। वे थीब्ज के निकट स्थित जेंटस और एंफियन की समाधि से मिट्टी चुराकर अपने यहॉ एंटियोप की समाधि पर डालने की कोशिश करते थे। इसके पीछे ऐसा विश्वास था कि थीब्ज की जमीन की उर्वरता उनकी अपनी जमीन में आ जाएगी। मगर थीब्ज के निवासी अपनी भूमि की उर्वरता की चोरी रोकने के लिए समाधि की बड़ी सावधानी से रक्षा करते थे। सारे यूनान के लोगों द्वारा पूजे जाने वाले बहुत से देवी-देवताओं में कृषि तथा पशुपालन के संरक्षक देवताओं के लक्षण अन्त तक बने रहे।

मौसम संबंधी जादू-टोना : एक उदाहरण

यदि सूखा पड़ता था तो लाइकोसूरा (अर्काडिया) के निकट यह प्रथा प्रचलित थी कि जीयस का पुजारी बलूत की एक टहनी तोड़कर पानी में फेंकता था। विश्वास किया जाता था कि इससे पानी में भांप उठेगी जो बादल बन जाएगी और वर्षा होने लगेगी। जब तक वर्षा नहीं होती थी, जीयस की पूजा जारी रहती थी। उसके लिए बलियां भी चढ़ाई जाती थीं।

अन्य जादू और टोना-टोटका

यूनानी पुराण कथाओं में जादूगर, जादूगरनियों का जिक्र नहीं है। हां सर्सी ओर मेदेआ के बिंब संभवतः अन्य जातियों से लिए गए, ऐसा लगता है। लेकिन जादू की विधा पर एकदम अविश्वास नहीं था। जादू की विधा को पाताललोक के देवताओं से जोड़ा जाता था। 'हेकेट' नाम की एक भयानक देवी थी। यदि किसी को मारना हो तो उसके मंत्र पढ़े जाते थे।

चिकित्सा में झाड़-फूंक

विश्वास किया जाता था कि कुछ देवी-देवताओं की पूजा से रोग नष्ट हो जाते हैं। ऐसे देवी देवताओं में एक्लोपियस, उसका पुत्र मैकाओन तो थे ही । इसके अलावा अपोलो,

डायोनियस देमितर, हेराक्लिज, ऐफियारास, मक्तिदाता पान, बहुत से स्थानीय देवी-देवता, स्वास्थ्यकर जलस्रोतों की निफे, एनीग्रिड, आयोनिड आदि भी शामिल थे।

वैज्ञानिक चिकित्सा पद्धति का श्रेय तो हिप्पोक्रेटीज को जाता है।

मृत्यु और शव संस्कार

स्वयं मृत्यु तो युनानियों में विशेष भय पैदा नहीं करती थी। इसका कारण उनका युद्धों में लिप्त रहना भी हो सकता है। पर व्यापक और दृढ़ मान्यता यह थी कि यदि मृतक को ठीक से दफनाया नहीं गया तो उसकी आत्मा को मृत्युलोक में चैन नहीं मिलेगा। यह विचार उन्हें भयावह प्रतीत होता था कि उचित अत्येष्टि के अभाव में मृत शरीर यों ही पड़ा रहेगा और उसे कुत्ते नोचेंगे, खाएंगे। उदाहरण पेलोपोनेएशियन युद्ध के अन्तिम वर्षों की दुःखान्त घटनाओं के दरम्यान, एथेनी सेना नायकों को दोषी करार देकर मृत्युदंड इसलिए दिया गया था कि उन्होंने आर्गिनुसाई की लड़ाई (ई.पू. 406) में वीरगति को प्राप्त सैनिकों के शवों को उठाकर दफन नहीं किया था।

युनानियों के अनुसार आत्मा की नियति, मृतक की अंत्येष्टि समुचित ढंग से की जाने पर निर्भर होती है। इस कारण मृतक के प्रति अंतिम कर्तव्य की पूर्ति को वे अधिक महत्व देते थे।

अधिकांशतः मृतकों को भूमि में गाड़ा जाता था या फिर समाधि बनाकर उसमें दफन किया जाता था। क्रिटो-माइसिनी काल से ही यह परंपरा चली आ रही थी। बीच के थोड़े समय के लिए इसमें बदलाव आ गया था। तब **आयोनियों की देखादेखी शवों का दाह संस्कार किया जाने लगा था।** होमर के काव्यों में आयोनी प्रभाव वाला यह काल ही प्रतिबिंबित हुआ है। लेकिन नयी प्रथा जल्दी ही लुप्त हो गयी। स्वयं आयोनी भी अपने शवों को गाड़ने लगे।

मृतक पूजा

युनानियों का विश्वास था कि मृतकों को भोजन की आवश्यकता होती है। ल्यूकेनियस ने लिखा है लोग मानते हैं कि आत्माएं उनके लिए लाए गए आहार के पास आती हैं और भुने जा रहे मांस के धुंए तथा भूमि पर गिरायी गयी मदिरा का आस्वाद लेते हैं। इसलिए वे उन्हें खिलाने-पिलाने की व्यवस्था करते थे। **मृतक पूजा युनानियों के पारिवारिक और गोत्रीय विश्वासों का महत्वपूर्ण अंग थी** और जब तक पितृसत्तात्मक गोत्रीय व्यवस्था के अवशेष बने रहे तब तक यह प्रथा भी रही।

मरणोपरांत नियति-

'ओडिसी' में यह मान्यता प्रतिबिंबित हुई है कि मृतकों की आत्माएं **हेडीज के अधोलोग में आनंदहीन जीवन व्यतीत करती है**। सबकी नियति एक जैसी होती है, सुनसान और अंधकारमय लोक में विचरण करना। **लेकिन अपराध के फलस्वरूप मरणोपरांत दंड की धारणा में भी विश्वास था। जिनसे देवता नाराज हो जाते हैं उन्हें अधोलोक में सिसिफस, टेंटेलस और डेनोइडो जैसी, तरह-तरह की यंत्रणाएं भुगतनी पड़ती हैं।**

आराधना और कर्मकाण्ड

सभी जातियॉ और वर्गों के लोग किसी न किसी देवता से अपने आपको संरक्षित मानते थे। वे यह भी मानते थे कि देवताओं की आराधना की गयी हो तो देवता प्रसन्न होकर मनुष्य को सुख और शांति प्रदान करेंगे। देवताओं की पूजा सर्वत्र की जाती थी।

शुरू में कर्मकाण्डों का स्वरूप सरल था। देवताओं के भेंटें चढ़ाई जाती थीं। सामान्य तरीका यह था कि देवताओं के निमित्य भूमि पर या अग्नि में शराब छिड़कना और उन्हें अन्न, फलों, धृत आदि का भोग लगाना।

बलि

महंगा तरीका था जीवों की बलि देना। जीवों की संख्या इस पर निर्भर होती थी कि प्रसंग की महत्ता और उद्देश्य क्या है? कभी-कभी तो यह सैकड़ों में होती थी।

आलेंपियन देवताओं के लिए सामान्यतः श्वेत वर्ण के पशु बलि चढ़ाए जाते थे। अधोलोक के देवताओं के हिस्से कृष्ण वर्ण के पशु आते थे। वीरों और नायकों को चढ़ायी गयी भेटों को जलाया जाता था। अंतोक्तों को पूरा ही जला कर भूमि में गाड़ दिया जाता था। **मृतकों को चढ़ाई जाने वाली भेटों को या तो भूमि पर उड़ेल दिया जाता था या फिर जमीन में गाड़ दिया जाता था।**

लेकिन आँलिंपसवासी देवताओं को जो पशु बलि दिए जाते थे उनका मांस अनुष्ठान में भाग लेने वाले बाद में खा लेते थे।

नरबलि

नरबलि की प्रथा थी या नहीं इस पर विद्वानों में विवाद है। बहुत सारी पुराण कथाओं में ऐसे संकेत मिलते हैं कि किसी जमाने में मानव बलि का प्रचलन था। (जैसे मैकारिया, एल्सेस्टिस, आईफिगेनिया आदि की बलियां)

अन्य कर्मकांड

इनमें देव मूर्तियों को नहलाना और सजाना, उनकी शोभा यात्राएं निकालना, मंत्र पाठ तथा स्तुति गान करना, धार्मिक नृत्य करना, वेदि पर पुष्पमालाएँ चढ़ाना आदि हैं।

हर प्रदेश की अपनी कर्मकांड विधि थी। इसका कड़ाई से पालन किया जाता था।

पौरोहित्य

(1) घरेलू पूजाएं, परिवार प्रमुख सम्पन्न करते थे।

(2) नगरों और समुदायों के संरक्षक देवताओं की पूजा, राज्य के उच्चाधिकारियों की और पुराहितों की देखरेख में होती थी।

लोग धन का आदान-प्रदान, सेनाओं का संचालन आदि सब देव वन्दना के उपरांत ही करते थे। **इस प्रकार यहॉ धर्म व्यावहारिक जीवन में एकाकार हो गया था।** इसलिए युनानियों ने धार्मिक संस्था अलग से स्थापित कराने का प्रयत्न नहीं किया। न कोई धर्मग्रंथ दिया, न कोई अनिवार्य धर्म विचार। धार्मिक संस्थाओं में मंदिर और पुरोहितों का संगठन आवश्यक होता है। **इसी कारण शुरू में यहां न मंदिरों का महत्व था न पुरोहितों का।** पुराहितों को केवल धार्मिक क्रियाएं करने का अधिकार था। उनका कोई विशेष स्थान नहीं था।

स्थानीय विश्वास

यूनान के धार्मिक विश्वासों की चर्चा ऊपर की गयी है| इनके अतिरिक्त भी कुछ स्थानीय विश्वास थे।

1) प्सोफिस में एरिमेंथस नामक स्थानीय नदी की पूजा की जाती थी और उसका एक मंदिर भी था।

2) ओर्खोमेनस में कुछ शिलाओं की पूजा की जाती थी और ऐसा माना जाता था कि वे पवित्र इसलिए है कि कभी आकाश से गिरी थीं।

3) केरोनियन लोग एक भाले की पूजा करते थे जिसे वे जीयस का अस्त्र मानते थे।

4) डेल्फी में एक विशेष पवित्र प्रस्तर था। उसे नित्य धृत से नहलाया जाता था और त्यौहारों के मौकों पर नयी ऊन से ढंका जाता था।

5) ल्फिडस के नगर चौक में एक कांसे की बकरी की प्रतिमा खड़ी थी| इसकी सभी स्थानीय निवासी पूजा करते थे।

6) थेस्पी में एक साधारण अनगढ़ पत्थर को ईरोस देवता (कामदेव) का प्रतीक माना जाता था।

स्थानीय समुदायों में तराशे हुए पत्थरों की पूजा का काफी प्रचलन था।

बहुत से स्थानीय देवक अपना आदिम रूप खोए बिना आगे चलकर अखिल यूनानी देवी-देवताओं के बिंबों के अंग बन गए।

<u>कालान्तर में</u>.

कालान्तर में यूनानी लोग अंधविश्वासों, भविष्यवाणियों, शकुन-अपशकुन में अधिक विश्वास करने लगे। दैवीय शक्तियों को संतुष्ट करने के लिए दी जाने वाली बलियों में काफी वृद्धि हुई।

देवताओं को प्रसन्न करने के लिए धार्मिक उत्सव मनाए जाने लगे। इन उत्सवों में आमोद-प्रमोद, कला प्रदर्शन, नृत्य-संगीत और रास-रंग आदि को महत्व दिया जाता था।

कालान्तर में कुछ स्थानों पर मंदिरों का निर्माण भी हुआ। यहाँ भक्तजन उपहार और दान आदि से देवताओं को प्रसन्न करने का प्रयत्न करते थे और इच्छित फल की याचना करते थे।

<u>बहुदेववाद</u>

प्राचीन यूनान में अनेक देवताओं की उपासना होती थी। देवताओं का निवास ऑलिंपस पर्वत माना जाता था। यह प्राचीन यूनान का सबसे ऊँचा पर्वत था। **प्रकृति की शक्तियों को देवता का रूप माना जाता था।**

जिन देवताओं का उल्लेख मिलता है, वे इस प्रकार हैं-

<u>जीयस</u>

ऑलिंपस पर्वत पर रहनेवाले सभी देवताओं में सर्वोच्च 'जीयस' था। मिथक के अनुसार उसका जन्म क्रिट द्वीप पर हुआ। यह थैसेली का, वर्षा और उर्वरता का प्राचीन देवता था। थैसेली के खेतों को जीवन देने वाले बादल हिमाच्छादित ऑलिंपस की ओर से आते थे। अतः यहाँ के कृषकों और पशु धारकों की यह धारण बनना कोई अस्वाभाविक बात नहीं कि उनका मुख्य देवता-वर्षा तथा उर्वरता का देवता-जीयस इस भव्य पर्वत पर ही रहता है। थैसेली ही अनेक यूनानी जनजातियों की जन्मभूमि थी। वहीं से उनका सारे यूनान में फैलाव हुआ तो परिणामतः जीयस की पूजा का भी प्रसार हो गया और वह धीरे-धीरे सर्वोच्च देवता बन गया। उसे बिजली तथा तूफान का देवता भी माना जाता था।

वैसा देखा जाए तो यूनानी देवताओं की एक ज्येष्ठ पिढ़ी भी थी। इनमें विशेष स्थान क्रोनोस, रिआ तथा टाइटन का था| ऐसा कहा जाता है कि जीयस द्वारा अपने पिता क्रोनोस को सत्ता च्युत करने और टाइटनों पर विजय पाने के बाद जीयस पूजा ने क्रोनोस को पृष्ठभूमि में ढकेल दिया। उसी तरह नयी स्त्री देवताओं ने भी क्रिट की प्राचीन उर्वरता देवी रिआ को पार्श्व में ढकेल दिया।

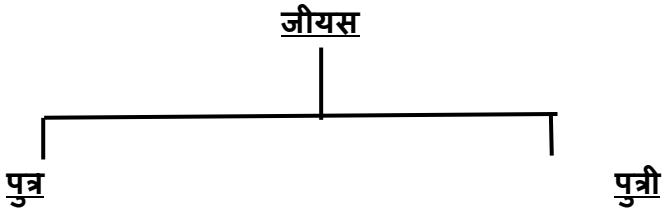

ऐरिस

युद्ध का देवता

एथेना

बुद्धि और युद्ध की देवी

हेस्टिया- यह घरेलू अग्नि या पवित्र गृहाग्नि की देवता थी।

अपोलो -प्रकाश का देवता

पोसीडोन - समुद्र का देवता

हेफोस्टस-अग्नि का देवता

हेडीज- पाताल लोक का देवता

दिमितर -कृषि की देवी थी।

युनानियों के अनुसार देवता ऑलिंपस पर्वत पर रहते हैं।

वे मानो मनुष्य के साथ सपर्क और संवाद स्थापित कर सकते हैं। श्राप-वर देते हैं, खुश होते हैं, घुस्सा करते हैं। अर्थात् यूनानियों के सभी देवी-देवताओं की प्रकृति मनुष्य समान है। केवल उनमें अलग गुण थे, तो सौंदर्य और अमरता ये दैवीय गुण। एक ढंग से यूनानी देवता और नायक अपने गुणदोषों के साथ उदात्तीकृत, आदर्शीकृत मनुष्य हैं। मनुष्य में मिलने वाली ऐसी कोई चीज नहीं है जोकि इन देवताओं में न मिलती हो। अमरता एकमात्र गुण हैं जो दोनों को अलग करता है| **यूनानी देवता मनुष्यों से श्रेष्ठ होने पर भी सर्वशक्तिमान नहीं हैं। प्राचीन यूनानी अपने देवी-देवताओं और नायकों के मूर्ति-शिल्प और चित्रकला में भी केवल मानवीय रूपों को दिखाते हैं| इसे 'मानवाकृतिवाद' कहा जाता है|**

इसका कारण यह भी हो सकता है कि यूनानियों ने जीवन को सुखी बनाने का सतत प्रयत्न किया इसलिए देवताओं को मानव रूप दिया और कला को रहस्यमय की जगह प्राकृतिक ।

होमर की रचनाओं में, हमें यह देखने को मिलता है कि देवताओं के चरित्रों में कैसे कुछ हास्यजनक पहलू थे। कुछ लोगों या जातियों से प्रत्यक्ष देवताओं की कैसी शत्रुता थी। छल से भी वे पूरी तरह मुक्त नहीं थे। **होमर ने देवताओं की कमजोरियों को भी अपने वर्णन में स्थान दिया है।** उदाहरण हेफिस्टस ने कैसे अपनी पत्नी एफ्रीडाइटि और उसके प्रेमी एरीज को रंगे हाथों पकड़ा था और उन्हें जाल में बांध दिया था ताकि सभी देवता आकर उन पर हंस सके। होमर का ढंग प्लेटो तक को इतना व्यंगात्मक लगा कि उसने अपने आदर्श राज्य में होमर पढ़ने पर प्रतिबंध लगाने तक की बात कही। उसकी दृष्टि में वह अनैतिक मनुष्य था। लगता है ई.पू. नववी-आठवीं शताब्दी में ही देवताओं और उनसे संबंधित मिथकों के प्रति आलोचनात्मक रवैया उत्पन्न हो गया था। 'यूरिपिडीज' की 'ट्रेजिडियों' जैसी अन्य कृतियों में भी देवताओं के अनाकर्षक पहलू दिखाए गए हैं| **हेरा, अपोलो, एफ्रोडायटि आदि देवी-देवता भी ईर्ष्यावश या किन्हीं अस्वस्थ कारणों के खातिर निर्दोष लोगों को मारने से हिचकिचाते नहीं।** इलियड और ओडिसी से आदिम कालीन पूजा विधि का पाशवी स्वरूप और इन विधियों के द्वारा तत्कालीन समाज को भयभीत करनेवाले सर्वंकष प्रभाव का चित्रण मिलता है। सबसे पहले पिण्डर ने साहित्य रचना द्वारा जनता का ध्यान अंधविश्वासों की ओर खींचा| यूरिपिडीज ने नाटक रचनाओं द्वारा धार्मिक कथाओं में महिमागान किए गए देवताओं के न्याय में व्याप्त अराजकता के प्रति क्षोभ व्यक्त किया।

वीर पूजा

अभिजात गोत्रों के उभरने के साथ उनके बीच जो प्रचलित हुई वह वीर पूजा थी| समाधि लेखों की भाषा पुरातन है। इस भाषा में वीर शब्द, मृतकों के लिए प्रयोग किया जाता था। अर्थात् आरंभ में वीर विभिन्न गोत्रों की संरक्षक प्रेतात्माएं थीं, या कहो आदि पुरूष थे। जब अभिजातों के पृथक गोत्र उभरे तो उनके आदिपुरूष पूजा की वस्तु बन गए। शक्तिशाली गोत्रों के वीर की आराधना का दायरा काफी विस्तृत होता गया।

सारे यूनान में सबसे अधिक प्रसिद्धी मिली है हेराक्लिज को। लेकिन उसे ऐतिहासिक व्यक्ति मानना कठिन है। लेकिन ऐसा मानने में कोई कठिनाई नहीं कि वह डोरियन जनजाति के हेराक्लिड नामक अभिजात गोत्र का पूर्वज या नामस्त्रोतीय वीर था। स्पार्टा के दोनों राजवंश इसी गोत्र से थे। ईसा पूर्व 12-11 वीं सदी में हेराक्लिडों के एक अभियान के परिणामस्वरूप डोरियनों ने पेलोपोनेसस के काफी बड़े भाग पर विजय प्राप्त कर ली। यह एक ऐतिहासिक घटना है। संभव है इसकी वजह से हेराक्लिज नाम को यूनान में व्यापक प्रसिद्धी मिली और फिर उसके पराक्रमों की तरह-तरह की कहानियॉ गढी जाने लगीं| यहॉ तक कि उसे यूनानी देव मंडल में स्थान दिया जाने लगा, सूर्य देवता कहा जाने लगा।

मनोवृत्तियों का दैवीकरण

यूनानियों ने काम, क्रोध, मद, लोभ, धृणा आदि मनोवृत्तियों को भी देवी-देवताओं के रूप में प्रतिबिंबित किया और इस प्रकार से बढ़ते जाते देवताओं के कारण मानो यूनान में देवी देवताओं की बाढ़ सी आ गयी।

यूनानियों की पुराण कथाएं

यूनानियों की पौराणिक कथाएं हिन्दुओं की पौराणिक कथाओं की तरह बड़ी सुन्दर हैं। संख्या में भी प्रचुर है। प्राचीन यूनानी धर्म को प्रायः सौंदर्य का धर्म भी कहा जाता है।

यह विचार मुख्यतः होमर के काव्यों और यूनानी मंदिरों और मूर्तियों के आधार पर बनाया गया है। आज भी पायी जाने वाली प्राचीन यूनानी मूर्तियॉ जो संगमरमर और पत्थर की बनी है तथा मंदिर या मंदिरों के अवशेष अपनी सुंदरता में अप्रतिम है। इतना निश्चित की यूनानी कलाएं वहॉ के धार्मिक विश्वासों की तुलना में काफी अधिक विकसित थी। वैसा भी यूनानी सभ्यता का विश्व की सभ्यताओं में विशेष स्थान है। यह यूरोप की सभ्यता की जननी है। संसार ने यूनानियों से बहुत कुछ सीखा है। रोम की सभ्यता तो इसकी ऋणी है ही।

टोटमी मिथक.

मिथकों में सबसे पुरातन मिथक, टोटमी मिथक हैं| मनुष्यों के जीवों, वनस्पतियों अथवा जड़ वस्तुओं में रूपांतरण की कथाएं बड़ी संख्या में हैं। स्पष्टतः उनका मूल टोटमी विश्वासों में ही खोजा जा सकता है। ऐसी बहुसंख्यक कथाएं हम तक पहँचने का माध्यम रोमन कवि ओविड की काव्यकृति ''मेटामॉर्फिसज'' है।

उदाहरण के लिए एक कथा-

टिरेन के नौका निर्माताओं को उनके क्रूर स्वभाव के कारण डायोनियस ने, दंडस्परूप डॉल्फिन बना दिया था। यहॉ डायोनियस की पूजा के विरोधियों पर उसकी विजय का धार्मिक विचार प्रतिबिंबित हुआ है।

मानवत्वारोपण.

यूनानियों के संदर्भ में जो महत्वपूर्ण विशेषता मिलती है, वह है, उन्होंने प्रदान किया हुआ मानवत्वारोपण। इसमें कृषि मूलक मिथक है, तो प्राकृतिक परिघटनाओं से संबंधित

मिथक भी। उदाहरण: अनाज की सफल बोने तथा बढ़ने की प्रक्रिया। जीयस के बिंब में मेघ प्रभंजन है तो पोसीडन के बिंब में समुद्र का मानवीकरण। पुराणकथाओं में आकाश (यूरेनस), पृथ्वी (गे), सूर्य (हेलियोंस), चंद्रमा (सेलेना) आदि की मानव रूप में कल्पना की गयी है। वैसे धर्म में उनकी कोई प्रत्यक्ष भूमिका नहीं थी। मिथकों में शक्तिशाली मानवाकार प्राणी मिलते हैं। बोरेआ, जेफिर, नोटस आदि जो वायु देवता एओलस के अधीन थे। अर्थात् ये कल्पित हवाओं का मानवीकरण ही है। प्रकृति के अंग जैसे नदियॉ, सोते, पर्वत, वृक्ष आदि को भी मनुष्य रूप में कल्पित किया गया। **अर्थात् धार्मिक जीवन में प्रकृति के अंगों के मिथकीय साकारीकरण को अधिक महत्व दिया गया था।**

<u>विश्वोत्पत्ति विषयक मिथक .</u>

यूनानी मिथकों में उपरोक्त विषय खास महत्व नहीं रखता। हेसियड के काव्य में एक मिथक मिलता है। लेकिन उसमें भी दैवी सर्जना का कोई संकेत नहीं मिलता। उसका स्वरूप उद्विकासमूलक ही है।

आद्यगर्त से पृथ्वी (गे), अंधकार (एरेबस), रात्री और फिर प्रकाश, वायुमंडल, दिन, आकाश, समुद्र तथा अन्य प्राकृतिक शक्तियों की उत्पत्ति हुई। आकाश (यूरेनस) और पृथ्वी से देवताओं की जेष्ठ पीढी (क्रोनोस तथा टाइटन) का जन्म हुआ और फिर उनसे जीयस तथा दूसरे ऑलिंपियन देवता उत्पन्न हुए। **यानि देवताओं की उत्पत्ति का मूल प्रकृति में ही बताया गया है|**

<u>मानवोत्पत्ती.</u>

इस बारे में भी यहॉ लगभग मौन है। एक मिथक के अनुसार मनुष्य की रचना टाइटन प्रोमेथियस ने की थी।

सामान्यतः यूनानी पुराणकथाओं में देवता न तो विश्व के निर्माता है न मनुष्य के ।

<u>सांस्कृतिक नायक</u> .

मात्र यूनानी पुराणकथाओं में सांस्कृतिक नायकों के महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। इनमें देवता भी थे और टाइटन जैसे अर्धदेवता भी।

देवी एथिना:यह जैतून के उत्पादन तथा स्त्रियों के हस्तशिल्प को जन्म देने वाली थी।

देमितर :अनाज की फसलों की प्रवर्तक|

डायोनिसस- अंगूर की खेती तथा शराब उत्पादन का प्रवर्तक|

हर्मीज - नाप तथा तौलों, अंकों और लिपि का आविष्कारक|

अपोलो - काव्य, संगीत तथा कलाओं का प्रवर्तक|

अर्ध देवता

अर्काडिया का पैलेसगस तथा उसका पुत्र लाइकेओने|

एल्यूसिस का टिप्टोलेमसः काश्तकारी सिखाने वाला|

अथेन्स का एरिक्टोनियस :- रथदौड़ तथा धुड़दौड़ का जनक ।

<u>टाइटन प्रोमेथियस</u> :- इसने लोगों के लिए स्वर्ग से अग्नि लायी। मानवजाति के हितों की चिंता करने के कारण उससे जीयस नाराज हो गया। उसने उसे हजार वर्षों तक मरते रहने का भयंकर दंड दिया। उसे (काकेशिया में) एक चट्टान से बांध दिया गया। हर रोज जीयस का उकाब आकर उसका जिगर नोंच कर खा जाता। रात में वह फिर बढ़ जाता। बहुत वर्ष बाद हेराक्लिज ने उसे इस दंड से छुटकारा दिलाया।

यहॉ कैसी विचित्र स्थिति है। मनुष्य जिनकी पूजा करने निकला है वे देवता हैं और मनुष्य जाति की भलाई के लिए जिसने अपार कष्ट सहे हैं वह प्रोमेथियस सांस्कृतिक नायक है| और उसे दंड मिला है देवताओं की ओर से| वह भी मनुष्य जाति का भला चाहने के लिए। मनुष्य जाति की भलाई के लिए वह देवताओं से भी टक्कर लेता है। यहॉ लोगों का उदात्त रक्षक और निर्मम तथा ईर्ष्यालू व्यक्तित्व आमने-सामने हैं| लेकिन कौन क्या है? यह मिथक अपनी सर्वांगता की दृष्टि से धार्मिक नहीं तो घोर धर्म विरोधी है| **और अपनी ही बनायी हुई कहानियों में आगे जब मनुष्य विरोधाभास पाता है और उसका स्पष्टीकरण देना उसके लिए असंभव हो जाता है तो कह डालता है देवताओं की लीलाएं क्षुद्र मनुष्य की समज से परे की बात है।**

<u>अर्धमिथकीय - अर्ध ऐतिहासिक व्यक्ति</u>

इनकी स्थानीय तौर पर पूजा की जाती थी। उस समय की सामाजिक, राजनीतिक व्यवस्था और उसमें होने वाले या आवश्यक समझे जाने वाले बदलावों का श्रेय जिस व्यक्ति को जाता था, उसे अर्ध दैवी व्यक्तियों का दर्जा देने में अभिजातीय व्यवस्था के हित संबंधों का ही पोषण होता था। क्योंकि उससे विद्यमान व्यवस्था को धर्मसम्मति प्राप्त हो जाती थी। इनमें :-

थीब्ज नगर का संस्थापक कैडमस|

अथेन्स नगर राज्य का संस्थापक थेसियस|

स्पार्टा का प्रसिद्ध विधि निर्माता लाइकर्गस|

इसी वर्ग में कुछ महान कवि, कलाकार और आविष्कारक भी रखे गए थे जैसे -

कुशल शिल्पी तथा आविष्कारक - डेडालस

गायक - ऑर्फियस

चित्रकार - पिम्मैलियन

जैसा कि अन्यत्र उल्लेख किया गया है, ये वंशों के आदिपुरूष अथवा धार्मिक समुदायों के संस्थापक थे (जैसे आर्फिक समुदाय) और नामस्त्रोत भी थे। यहॉ अपने व्यवसाय को महिमामंडित करने और उसे अपने समुदाय या वंश तक सीमित रखने की प्रवृत्ति भी व्यक्त होती है अर्थात् कोई अलौकिक बात नहीं तो शुद्ध सांसारिक स्वार्थ उसके पीछे है। कुछ आख्यानों का आधार ऐतिहासिक घटनाएं भी हो सकती हैं।

कुछ मिथक अन्य जातियों या देशों से लिये गये हैं | जैसे–प्रलय विषयक मिथक जो मूलतः बाबिलोनी था| पानी के मामले में गरीब यूनान में ऐसा मिथक पैदा ही नहीं हो सकता था|

यूनान का क्लासिकल युग

यूनान के इतिहास में आठवीं सदी ई.पू. से अगला काल महत्वपूर्ण आर्थिक-सामाजिक प्रगति का समय है। इस काल में बड़ी बड़ी खोजें हुईं। लोहे का उपयोग व्यापक पैमाने पर किया जाने लगा। झलाई सर्वप्रथम किओस द्वीप पर और ढलाई समोस द्वीप पर विकसित हुई। कई नए व्यवसाय विकसित हुए। यूनानियों के फिनिशियाइयों के साथ विशेष व्यापारिक संबंध बने। उनकी कई धार्मिक प्रथाएं और कालान्तर में लिपि भी यूनानियों ने अपनायी। यूनानियों की पुरानी लिपि डोरिकों के आक्रमाण के बाद विस्मृत हो गयी थी। यूनान के **इतिहास में 800 ई.पू. से लेकर 469 ई.पू. तक का युग विशेष महत्व का है। इसी युग में यूनान के नागरी राज्यों का बहुत अधिक विकास हुआ।** इसके लिए भौगोलिक कारण भी थे। दूसरी बात, यूनानी समाज का जनतांत्रिक प्रणाली की ओर झुकाव था। अतः उन्हें अपने लिए अधिक उपयोगी प्रतीत हुए नगर राज्य| बड़े-बड़े नगरों का निर्माण हुआ। जैसे मध्य यूनान में अथेन्स, लकोनिया में स्पार्ता आदि। इन नगरों का विशेष महत्व था। यूनानियों को हेलेन लोग भी कहा जाता था।

स्पार्टा

यह दक्षिण यूनान में प्रधान नगर था। जनतांत्रिक युग में स्पार्टा एक ऐसा अपवाद था जहां सैनिकवादी व्यवस्था को अपनाया गया था। इसका मुख्य कारण यह माना जाता है कि यहां के निवासी डोरियन जाति के थे। जो यूनान में बाहर से आए थे। आबादी आम तौर पर तीन समूहों में विभाजित थी- (संक्षिप्त विश्व इतिहास-1.पृष्ठ ६१.६२)

1.सबसे अधिक अधिकार स्पार्टियों को थे। वे डोरिक विजेताओं के वंशज थे। वे अपने समाज को 'समानों का समाज कहलाते थे। आबादी का लगभग 10 प्रतिशत स्पार्ता नगर में था। वे सारे जमीन के स्वामी थे और उन्हें राजनीतिक और नागरिक अधिकार थे।

2.पेरिओइसी - ये विजित या आप्रावासी लोगों के वंशज थे। स्पार्ता के आसपास रहने वाले थे। उन्हें व्यक्तिगत स्वतंत्रता थी लेकिन राजनीतिक अधिकार न थे। अधिकतर पेरिओइसी कारीगर थे।

3.सबसे बड़ा समूह 'हिलोत' या भूदासों का था। ये दास बनाए गए, एकियाइयों के वंशज थे। वे कृषिकर्मी थे और जमींदारों को लगान देते थे। उन्हें कोई अधिकार न थे और छोटी-छोटी बातों पर भी उनकी हत्या की जाती थी।

स्पार्टा में नागरिकों को स्वस्थ, अनुशासित और सैनिक दृष्टि से योग्य बनाने के लिए वहां के संविधान में ही कुछ बातों का अंतर्भाव किया गया था। जैसे कमजोर नवजात शिशु के वध का अधिकार उसके पिता को था। तंदुरुस्त शिशु को भी तीन दिन तक पहाड़ों की खोह या जंगल में छोड़ दिया जाता था। वह अगर बच जाता तो उसे मॉ को सौंप दिया जाता। स्वस्थ बच्चे के लिए कोई भी पुरूष परस्त्री से या स्त्री परपुरूष से संपर्क स्थापित कर सकती थी।

<u>एथेन्स</u>

प्राचीन काल में एथेन्स, यूनान का सबसे प्रमूख नगर था। यहां की आबादी यूनानियों की आयोनियन शाखा की थी। अथेन्स समाज के वर्ग इस प्रकार थे -

1.यूपेत्रीद वर्ग- राजनीतिक व नागरिक विशेषाधिकार प्राप्त अभिजातों का वर्ग था। अथेन्स का गणतन्त्र अभिजातीय था।

2.अधिकांश आबादी देमोस या जनसाधारण के नाम से जानी जाती थी। इन्हें नागरिक अधिकार तो प्राप्त थे लेकिन राजनीतिक अधिकार नहीं। इनमें सभी श्रेणी के किसान, कारीगर, जहाजी, व्यापारी और कई पेशेवर आते थे। इसका कुछ हिस्सा भौतिक दृष्टि से खुशहाल भी था। कृषक वर्ग सामन्तों द्वारा पीड़ित था।

3.मेतिकों का हिस्सा - ये यहां बसने वाले अन्य देशीय थे। इन्हें नागरिक और राजनीतिक अधिकार न थे।

4.दास वर्ग - इनकी अवस्था जानवरों से भी खराब थी।

प्राचीन काल में यूनान कभी भी एक केंद्रीकृत राज्य नहीं था। बल्कि नगर राज्यों से ही मिलकर बना रहा। ये राज्य एक-दूसरे से अलग ही नहीं थे, बल्कि एक दूसरे से लड़ते भी रहते थे। फिर भी इन नगर राज्यों को आपस में बांधने वाली कई कड़ियॉ थीं। इनकी भाषा, संस्कृति और धार्मिक कल्पनाओं में काफी समानता थीं।

सर्प जैसे पैरों वाला, सेक्रोस का मिथक हैं| इसे अथेन्स का संस्थापक माना जाता था।

युद्ध

पारस के साथ-

पारस के साथ यूनानियों के सतत युद्ध होते रहे। अपनी देश के रक्षा के लिए यूनानियों ने अपने जान की बाजी लगा दी और परिणाम यह हुआ कि एक छोटी सी जाति ने महाशक्तिशाली और अजय समझे जाने वाले पारसिक साम्राज्य पर विजय प्राप्त की। यह विजय विस्मयजनक तो थी ही। ई.पू. 490 में यूनानी और पारसिकों के बीच एक बड़ा और निर्णायक युद्ध, मैराथॉन नगर के निकट हुआ। इसमें पारसिक सेना की करारी हार हुई। इस खुशखबरी को लेकर एक हरकारा अथेन्स के लिए रवाना हुआ। बिना रूके वह भागता चला। उसका दम उखड़ने लगा, लेकिन वह उस चौक तक पहुंच ही गया जहां सारी जनता (बच्चे, बूढ़े, स्त्रियां) युद्ध के परिणाम की बेसब्री से प्रतीक्षा कर रहे थे। अपनी सारी बची-खुची शक्ति को संचित करके वह चिल्लाया विजय और वहीं ढेर हो गया। आज भी ऑलिपिक खेलों में दौड़ी जाने वाली मॅरॉथॉन दौड इसी घटना की यादगार में होती है और वह लगभग उतनी ही लम्बी होती है जितना अथेन्स और मॅरॉथॉन में अन्तर है। यह विजय यूनान के लिए महत्वपूर्ण थी। लेकिन इसके परिणामस्वरूप अथैन्स ने यूनानी राज्यों में प्रमुखता प्राप्त कर ली। **क्योंकि संघर्ष के अंतिम वर्षों में निर्णायक युद्ध समुद्र पर ही लड़े गए और सबसे बड़े नौसैनिक बेड़े वाला राज्य अथेन्स ही था। अथेन्स की नौसैनिक शक्ति ही यूनान की नौसैनिक शक्ति बन गयी। अन्य राज्य उसके अधीन होते चले गये। अथैन्स की शक्ति में असीमित वृद्धि हुई।**

लेकिन इसकी यूनानी नगर राज्यों के एक अन्य संघ के साथ प्रतिद्वंदिता चलती रही। वह संघ था, पेलोपोनिशियाई संघ। अथेन्स द्वारा संघ के कुछ नगरों पर अपने प्रभाव को फैलाए जाने के प्रयासों का स्पार्टा ने जमकर विरोध किया। पेलोपेनिशियाई युद्ध, क्लासिकी यूनान के इतिहास का सबसे बड़ा युद्ध है। छोटे-छोटे अंतरालों के साथ यह युद्ध 27 सालों तक चला। इसका परिणाम यह हुआ कि यूनानी समाज में गंभीर संकट उत्पन्न हो गया।

<u>पेरीक्लिज(ई.पू. 461 से 429 ई.पू. तक)</u>

इस काल का सबसे प्रमुख राजनीतिक व्यक्ति पेरीक्लिज था। वह कुशल राजनीतिज्ञ और वक्ता था। उसे लोग 'ओलेंपियाई' कहते थे। उसके कर्तव्य ने उसे ऑलिंपसवासी देवाधिराज जीयस के बराबर का दर्जा दिला दिया। ई.पू. पांचवी और चौथी सदी में और **विशेषकर पेराक्लिज के समय अथेन्स ही यूनान के राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन का मुख्य केंद्र था। उस समय की दृष्टि से 2 लाख आबादी वाला यह शहर एक विराट नगर ही था।**

पेरिक्लिज ने अनेक लोकतांत्रिक सुधारों का सूत्रपात किया। उसके नेतृत्व ने अथेन्स को अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंचा दिया। अथेनी लोकतंत्र भी अपने चरम पर पहुंचा जिसने आगे की दुनियां के लिए आदर्श का काम दिया। वहॉ कई लोकतांत्रिक संस्थाएं थीं। जनसभा की प्रभावी भूमिका थी। सार्विक मताधिकार था। छांटे हुए उम्मीदवारों में से पर्ची डालकर चुनाव होते थे। राजनीतिक पद के लिए वेतन दिया जाता था। पेरीक्लिज को उदारवादी, कलाप्रेमी, जनतंत्रवादी लेकिन विस्तारवादी माना जाता है।

लेकिन इतना होने पर भी इस तंत्र में दास, स्त्रियॉ और अन्य देशी (मेतिक) इनके लिए स्थान नहीं था। दासों की संख्या पारसिक युद्ध के पहले की तुलना में काफी बढ़ गयी थी। इस तरह यह लोकतंत्र एक विशेषाधिकार भोगी अल्पसंख्यकों का संकीर्ण और सीमित लोकतंत्र ही था। यह दास-स्वामी गणराज्यों का ही युग था।

फिर भी राजनीतिक चेतना का सर्वप्रथम प्रसूतिगृह यूनान को ही कहा गया है। प्रतिनिधि सभाएं, निर्वाचन मताधिकार, न्याय की शाखाएं आदि जनतंत्र के विधि उपकरणों का भारी विकास यहां हुआ।

<u>क्लासिकल युग का धर्म</u>

इस युग के धर्म का प्रचलित रूप था, नगरों या नगर राज्यों के संरक्षक देवी-देवताओं की पूजा। यह राज्य स्तर पर ही की जाती थी और उसमें भाग लेना सभी नागरिकों के लिए अनिवार्य था। नगर के संरक्षक देवता के प्रति अनादर व्यक्त नहीं किया जा सकता था। उल्लंघन के लिए कठोर दंड की व्यवस्था थी। (उदाहरण ई.पू.399 में सुकरात को मिला मृत्युदंड। उस पर आरोप था कि सारा नगर जिन देवताओं की पूजा करता है, वह उन्हें नहीं पूजता बल्कि नए देवताओं को प्रस्तुत करता है।) अथेन्स में इच्छानुसार देवताओं की पूजा करने की स्वतंत्रता बहुत कम थी। राज्य सत्ता को मान्य देवताओं की ही पूजा की जाती थी। परंपराओं और प्रथाओं की आलोचना, अपराध समझा जाता था।

<u>नगर राज्यों के संरक्षक देवता-</u>

<u>1) सारे यूनान में पूजे जानेवाले -</u>

कुछ स्थानीय देवताओं को ऐतिहासिक कारणों से आगे राष्ट्रीय दर्जा मिल गया।
उदाहरण-

I) **<u>एस्केलेपियस</u>** : **यह आरंभ में एपिडारोस का स्थानीय देवता था लेकिन आगे वह चिकित्सा का और यूनान का एक महत्वपूर्ण देवता बन गया। दूसरी शताब्दी में यूनान में उसके कम से कम अड़तीस मंदिर थे।**

II) **आर्टेमिस** : यह अर्काडिया की संरक्षिका और प्राचीन स्थानीय देवता थी। उसे भालू के शिकार की संरक्षिका माना जाता था। आगे वह यूनानियों की सर्वाधिक पूजित देवी हो गयी। सारे यूनान में उसके कोई 80 मंदिर थे। यूनानी पुराणकथाओं में आर्टेमिस को एक कुंआरी आखेटिका के रूप में चित्रित किया गया है। उसके साथ उसका हिरन भी होता है लेकिन उसका हिरन के साथ संबंध किसी विश्वास या अनुष्ठान में प्रतिबिंबित नहीं हुआ।

III) **एथिना** : इसका सर्वाधिक प्रसिद्ध पूजाकेंद्र एथेंस था| इसके नाम से उसे एथिना कहा जाने लगा। यह नाम ही सर्वाधिक प्रचलित हो गया। वास्तविक एथिना, नगरों और किलेबंदियों की संरक्षिका और एक प्राचीन देवी थी। उसका दूसरा नाम 'पल्लास' अथवा 'पल्लास एथिना' था। इसका अर्थ है भाला फेंकनेवाली। एक अन्य नाम था पोलिआडा (नगर की रक्षिका) । पासेनियस के काल में वह यूनान की सर्वाधिक पूजित देवताओं में एक थी। पासेनियस ने एथिना के कोई पचास विभिन्न नामों का उल्लेख किया है। अनुमान है कि वह एक नगर की संरक्षिका थी ओर उसे किसी सामान्य नाम से (जैसे स्वामिनी आदि) पुकारा जाता था| पासेनियस ने ही यूनान के विभिन्न भागों में स्थित, एथिना के कम से कम 73 मंदिरों तथा पूजास्थलों का उल्लेख किया है। क्लासिकल पुराणकथाओं के अनुसार एथिना योद्धा थी। इसलिए उसे शस्त्रों के साथ चित्रित किया जाता था। लेकिन आगे विभिन्न टोटमी चिन्ह उसके साथ एकाकार हो गए। जैसे उल्लू, ढाल के नीचे सर्प, बकरी की खाल, जैतून का पेड़ आदि ।

<u>पोसीडन-</u>

यह पेलोपोनेसस का प्राचीन समुद्री देवता था। मछुआरे उसकी पूजा करते थे। माइसिनी अभिलेखों में उसका अनेक बार उल्लेख हुआ है| आयोनियों और डारियनों ने उसकी पूजा को अपना लिया और तेनारस अंतरिप पर उसका मंदिर बनाया। यही से लैकोनियाई नौसैनिक संघ का संचालन होता था। पोसीडन, सागर का ही देवता नहीं था, वह घोड़ों का संरक्षक भी था। आगे उसीकी पूजा का काफी विस्तार हुआ और उसमें अनेक स्थानीय देवताओं की पूजा

भी अंतर्भूत हो गई। **स्थानीय देवताओं के बिंब उसके बिंब में मिला दिए गए।** उदाहरण : ओनहेस्टस (बोएशिया) में पूज्य स्थानीय वीर ओनहेस्टस को पोसीडन का पुत्र बना दिया गया। कभी-कभी उसे स्वयं पोसीडन ही समझ लिया जाता था। ओनेहस्टस में पोसीडन-ओनहेस्टस का मंदिर था, जिसमें उसकी प्रतिमा स्थापित की गयी थी।

<u>अपोलो</u>

ऐसा माना जाता है कि थीब्ज के करीब बहने वाली नदी का प्राचीन देवता इस्मेनियस अपोलो में परिवर्तित हो गया। तो बिओशियाई समुदाय का संरक्षक और पर्वतों का देवता प्टोअस, प्टोअन-अपोलो बन गया। अपोलो (फीबस अपोलो अथवा फीबस) महत्वपूर्ण बन गया। इसका बिंब जटिल है। यूनानी पुराणकथाओं में अपोलो और आर्टेमिस को भाई-बहन और लेतो (लेतोना) तथा जीयस की संतान कहा गया है। कुछ लोग आर्टेमिस की तरह अपोलो को भी प्राचीन अर्कोडियावासियों का देवता मानते हैं। यह गड़रियों का संरक्षक था तो कुछ अन्यों के अनुसार वह लघु एशियाई देवता है।

होमर के काल में आर्टेमिस जैसा, अपोलो को भी एकियनों का विरोधी और ट्रायवासियों का समर्थक देवता माना जाता था और माइसिनी अभिलेखों में तो उसका कहीं उल्लेख ही नहीं मिलता। लेकिन क्लासिकल युग में अपोलो देश का सबसे लोकप्रिय देवता बन गया। उसे गैरयूनानी मूल को भुला दिया गया। सारे यूनान में उनके 50 से अधिक मंदिर थे। उसकी पूजा के बड़े केंद्र 'डेलोस द्वीप' तथा 'डेल्फी' थे। यूनान में उसकी पूजा का प्रचलन संभवतः आयोनियों के आगमन के साथ ही शुरू हुआ था। डेलोस द्वीप पर मंदिर उन्हींने बनवाया था। डेल्फी भविष्यकर्ताओं के लिए प्रसिद्ध था।

अपोलो के विविध कार्य बताए जाते थे। जिनमें मुख्य थेः-

1) भविष्यकथन

2) ज्ञान -विज्ञान और कलाओं का संरक्षण।

इसीलिए उसे अपोलो-म्युजीगेटीज यानि मूजो-ज्ञान, कला की अधिष्ठात्री देवियों का प्रमुख कहा जाता था। उसे अपोलो सिथेरोडस अर्थात् सिथेरोवादक भी कहा जाता था। और प्रायः उसके चित्रण में उसके साथ में सिथेरो वाद्ययंत्र दिखाया जाता था।

3) चिकित्सा: इसी कारण उसे अपोलो पिओन भी कहा जाता था।

4) प्रकाश

5) सब प्रकार के प्रदूषण से शुद्धि।

6) संतुलित विश्व व्यवस्था की स्थापना।

जहॉ तक अपोलों के सूर्य के साथ संबंधों का सवाल है, प्राचीन यूनानी स्रोत ग्रंथों में इसका उल्लेख नहीं है।

एशियन सागर के 'राडस' नामक द्वीप में, सूर्य देवता के रूप में अपोलो की 105 फीट ऊँची कांस्य प्रतिमा थी, ऐसा कहा जाता है| इस मूर्ति में एक मशाल थी जो बंदरगाह पर आने-जानेवाले जहाजों का मार्गदर्शन करती थी। ऐसा कहा जाता है कि इसे बनानेवाले मूर्तिकार का नाम चार्ल्स था। उसने इसे ई.पू. २८० में बारा वर्ष की मेहनत के बाद बनाया था। बाद में एक भूकंप के कारण यह प्रतिमा गिर गयी। सैंकड़ों वर्षों तक वैसी ही पड़ी रही। कहा जाता है कि एक यहूदी व्यापारी उसे उठाकर ले गया। इसे संसार के सात महान आश्चर्यों में एक माना जाता था।

अपोलो के सम्मान में मंदिर बनाए जाते थे। इसके सामने के मैदान में सामाजिक उत्सव मनाये जाते थे। बलि आदि भी दी जाती थी।

<u>एफ्रोडाइटि</u>

प्रसिद्ध यूनानी देवी एफ्रोडाइटि शुद्ध पूर्वी मूल की थी। माइसिनी युग में इस देवी की पूजा के कोई संकेत नहीं मिलते। उसका नाम एक विशेषण है जो उसके सागर के फेन से प्रकट होने के मिथक से जुड़ा है। उसका दूसरा नाम साइप्रिस है जिससे स्पष्ट होता है कि उसकी पूजा का प्राचीन केंद्र साइप्रस टापू था। एफ्रोडाइटि का मिथकीय संबंध, देवता एडोनिस से बताया गया है| एडोनिस शुद्ध एशियाई सेमेटिक देवता है। इससे भी बात साफ हो जाती है कि यह देवी लघु एशिया से संबंधित देवी थी। उसका संबंध उर्वरता से था।

पुराणकथाओं में उसे काम भावना के युवा देवता ईरोस की माता बताया गया है।

हेरा

यूनानी देवियों में प्रमुख और जीयस की पत्नी हेरा, माइसिनों की संरक्षिका थी। इसे गाय के रूप में चित्रित किया जाता था। क्रीट की खुदाइयों में गौ पूजा के अनेक प्रमाण मिले हैं। यूनानी महाकाव्यों में हेरा को अर्गोलिया की इष्टदेवी बताया गया है और बाद के युग में भी वहॉ उसे **<u>विशेष सम्मान प्रदान किया जाता था।</u>**

<u>एरीज</u>

थ्रेशियनों से लिया गया यह देवता, यूनानियों के यहां युद्ध का देवता बन गया।

<u>हेफीस्टस</u>

शुरू में लाइकेयस या लेम्नोस द्वीप पर स्थानीय देवता था, जो बाद में अग्नि और लोहशिल्प का देवता बन गया।

<u>हर्मीज</u>

यूनान में मार्गचिन्हों का काम करने वाले पत्थर के ढेरों और स्तंभों का देवता। अर्थात् मार्गों और यात्रियों का संरक्षक| लेकिन जैसे आजकल किसी मंत्री को दूसरा अतिरिक्त विभाग भी सौंप दिया जाता है वैसे ही यह जल्दी ही व्यापार का देवता भी बन गया। पुराणकथाओं में उसे देवताओं का दूत तथा आत्माओं का मार्गदर्शक बताया जाने लगा।

<u>प्लूटस</u>

कुछ देवता अमूर्त धारणाओं के प्रतिरूप थे। इस कारण उनके बिंब भी कुछ अस्पष्ट थे। उदाहरण के तौर पर प्लूटस। उसके नाम का अर्थ धन और समृद्धि है। उसे धन और समृद्धि का साकार रूप माना जाता था। लेकिन किसान का मुख्य धन अनाज आम तौर पर जमीन के नीचे बने भंडारों, तहखानों में रखा जाता था। तो प्लूटस भूमिगत विश्व का देवता बन गया और शीघ्र ही वह पाताललोक के देवता हेडीज के साथ एकाकार हो गया।

<u>हेडीज और हेकेट</u>

ये अधोलोक के देवता थे। वे सार्वजनिक पूजा के पात्र तो नहीं थे लेकिन मत्र-तंत्र में उन्हें महत्वपूर्ण स्थान था। हेडीज की पूजा शुरू में स्थानीय देवता के रूप में एलीस में शुरू हुई थी। हेकेट की पूजा की शुरूआत का स्थान ईजाइना द्वीप था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बड़े देवताओं की उत्पत्ति लम्बे विकास क्रम से गुजरने के बाद हुई है।

<u>स्थानीय पूजे जाने वाले देवता</u>-

राष्ट्रीय देवताओं के सिवाय स्थानीय रूप से पूजे जाने वाले देवता भी थे। राष्ट्रीय देवता बाह्य शत्रुओं से संघर्ष में सभी यूनानियों की रक्षा करते थे तो स्थानीय देवता और वीर यूनानियों के परस्पर युद्धों में केवल अपने समुदायों की रक्षा करते थे। वैसे देखा जाए तो स्थानीय देवताओं में विश्वास के साथ-साथ एक अखिल यूनानी देवमंडल में विश्वास काफी पहले शायद माइसिनी राज्य युग में उत्पन्न हो गया था लेकिन राजनीतिक कारणों से उसे गति क्लासिकल युग में मिली।

वीर पूजा-

हर नगर के अपने संरक्षक वीर होते थे। ये प्रायः उनके नामस्त्रोत भी होते थे। कोरिंथ के नागरिक अपने नामस्त्रोत वीर कोरिंथ की पूजा करते थे। उसे जीयस का पुत्र मानते थे। टिरींस का संरक्षक वीर टिरींस था। जिसे जीयस का पौत्र माना जाता था। हर्मियोन का संरक्षक उसका नाम स्त्रोत हर्मियोन था। अन्य भी उदाहरण हैं जैसे ओलिंपिया में स्थानीय संरक्षक 'पेलोप्स', प्लोटई में ऐसोपस की पुत्री प्लाटेआ थी।

उत्सव

सार्वजनिक अनुष्ठानों को राजकीय महत्व प्राप्त था। आगे सर्वाधिक महत्वपूर्ण पूजाएं राष्ट्रीय उत्सव का रूप ले लेती थीं। जैसे एथेंन्स का पैनएथीनियन उत्सव, फेनियस (बोएशिया) में हर्मीज के सम्मान में आयोजित क्रिडाएं।

शरीर को स्वस्थ और सुन्दर बनाए रखने में इनकी बहुत रूचि थी और इसके लिए ये लोग खेदकूद और दंगलों का आयोजन करते थे। यूनान के ऑलिंपस पहाड़ पर समय-समय पर इस तरह के खेल बड़े पैमाने पर होते थे। यूनान भर के लोग वहां जमा होते थे। ऑलंपिक खेलों का नाम इसी से लिया हुआ है।

पुरूषों के गुप्त संध भी थे। जिसके एक दूसरे में भाग लेने में मनाही थी। यूनानियों के प्रसिद्ध जातीय खेलों आलिंपियन, नलेमियन, इस्थमियन और पायथियन खेलों की उत्पत्ति इन प्राचीन पुरूष संघों की गतिविधियों से ही हुई थी। इसके स्पष्ट उल्लेख मिलते हैं कि एक जमाने में स्त्रियॉ इन खेलों को देख भी नहीं सकती थीं।

पुरोहित

मंदिरों में देव पूजा से संबंधित काम करने वाले को पुरोहित माना जाता था। इस काल में पुरोहित का पद कभी-कभी आजीवन तथा वंशागत होता था और कुछ एक कुलीन परिवारों तक ही सीमित रहता था। तो अन्य जगह पुरोहितों का निर्वाचन अल्प अवधि के लिए किया जाता था लेकिन कुलीन परिवारों से ही। पुरोहित शारीरिक दोषों से रहित होना आवश्यक शर्त थी। कभी-कभी उससे ब्रह्मचर्यपालन की अपेक्षा की जाती थी। शायद इसी कारण कुछ मंदिरों में केवल बच्चों को ही पुरोहित बनाया जाता था और वयस्क होते ही उन्हें हटा दिया जाता था।

कहीं-कहीं स्त्री पुरोहित भी होती थीं जैसे 1) एथेन्स में पेंड्रोसस के मंदिर में। वे या तो बालिकाएं या नवयुवतियॉ होती थीं। (2) हर्मियोन में देमितर के मंदिर में वृद्धाएं होती थीं। स्त्री पुरोहितों से ब्रह्मचर्य के पालन की और भी कड़ाई से मांग की जाती थी।

कुछ मामलों में पुरोहित भविष्यवक्ता और चिकित्सक का काम भी करता था।

<u>मंदिर-</u>

इस काल के प्रसिद्ध मंदिर थेः-

1) ओलिंपिया का जीयस मंदिर|

यहां चार साल में एक बार खेल प्रतियोगिताएं आयोजित की जाती थीं।

यूनान के ऑलिम्पस पर्वत पर विशाल मंदिर था, जियस देवता (या कहो रोमन ज्यूपीटर) का। ऐसा कहा जाता है कि फेडियास नामक कलाकार ने ईसा से 500 वर्ष पहले यहॉ एक विशाल मूर्ति बनायी। यह मूर्ति हांथीदांत और सोने से बनाई गयी थी। मूर्ति का शरीर हांथीदांत का था और सोने के तारों से बने वस्त्र उसे पहनाए गए थे| लेकिन आज इस अनूठी अप्रतिम सुंदर कृति का कहीं नामोनिशान नहीं है। इसे भी प्राचीन संसार के सात महान आश्चर्यों में से एक माना जाता था।

(संसार के सात महान आश्चर्य:नवभारत, नागपुर: २०.11.१९९४)

2) डेल्फी का अपोलो मंदिर

इसे भविष्यवक्ताओं का पीठ माना जाता था।

3) एपीडारस का एस्कुलेपियस मंदिर

यह चमत्कारी औषधों के लिए प्रसिद्ध था।

4) एल्यूसिस का देमितर मंदिर

यह मंदिर ग्युहयानुष्ठानों के लिए प्रसिद्ध था। हम एत्युसिनीयन रहस्यानुष्ठानों में, यूनानी धर्म की दृष्टि से असामान्य विचार पाते हैं। आम तौर पर यूनानी धर्म इहलोकान्मुख धर्म था। परलोक के विषय में इतना कहता था कि मृत्यु के बाद हेडीज के अधंकारमय लोक में व्यर्थ दिन गुजारने हैं। किसी उज्ज्वल भविष्य की आशा वहां नहीं थी। **समाज में वर्गीय विरोध बढ़ते हैं तो दरिद्र लोगों में प्रतिरोध की भावना उभरना शुरू हो जाती है।। उधर संपत्तिवानों की सत्ता इस असंतोष को शांत करने का कोई मार्ग ढूंढ निकालने की आवश्यकाता अनुभव करने लगती है, और इतिहास इसका साक्षी है कि यह उपाय काफी कारगर साबित हुआ हैं, जिसमें लोगों का ध्यान इस जीवन से भावी जीवन की ओर मोड़ा जाता है| वहॉ प्रतिफल का वायदा किया जाता है।**

एल्यूसिनियन अनुष्ठान एक ढंग से ईसाइयत जैसे मोक्षवादी धर्मों के पूर्वगामी मुक्ति धर्म का आरंभिक या अविकसित रूप था। वैसे इन गुहयानुष्ठानों का आधार प्राचीन कृषि संबंधी अनुष्ठान ही थे| इसमें मरणोत्तर आत्माओं की नियति विषयक शिक्षाएं और रहस्यानुष्ठान है और मरणोपरांत आनंदमय जीवन में विश्वास है।

इन अनुष्ठानों द्वारा आदमी, परलोक में सुखी जीवन सुनिश्चित कर सकता है, ये विश्वास और अनुष्ठान, पर्सिलोनी का हेडीज द्वारा अपहरण करके अपने लोक में ले जाने, देमितर द्वारा उसकी खोज करने और वापस भूलोक पर ले आने के मिथक से जुडे थे।

<u>मंदिरों की संपत्ति</u>-

सर्वाधिक प्रतिष्ठित मंदिरों ने विशाल संपति जमा कर ली थी। प्रायः नागरिक तथा राज्य भी अपनी संपति सुरक्षित रखने के लिए उनके पास जमा कर देते थे क्योंकि उन्हें सर्वाधिक सुरक्षित स्थल समझा जाता था। उदाहरण- अथेनी नौसैनिक संघ, अपना कोश पहले डेलोस के अपोलो मंदिर में और बाद में एथेन्स के पार्थेनन में रखता था। मंदिर अपने कोश ब्याज पर देते थे। एक ढंग से मंदिर आज के बँक का काम करते थे।

<u>ऑर्फियसवाद</u>

लगभग छठीं सदी ईसा पूर्व से यूनान में कुछ धार्मिक प्रवृत्तियॉ उत्पन्न होने लगीं। इनका स्वरूप अर्द्धसांप्रदायिक था। उनमें सबसे अधिक प्रभाव 'ऑर्फियसवाद' ने जमाया। इसके समर्थक अपने विश्वासों का आधार मिथकीय कवि ऑर्फियस की शिक्षा को बताते थे। ऐसा कहा जाता है कि यह होमर से भी पहले हुआ था। लेकिन ऐतिहासिक दृष्टि से यह आंदोलन ई.पू. छठीं सदी से पुराना नहीं है। इस वाद के ग्रंथों के बहुत ही कम अंश आज उपलब्ध हैं। लेकिन पूर्वी धार्मिक विचारों का प्रभाव इस वाद पर देखा जाता सकता है।। इस वाद का मुख्य प्रसार केंद्र सिसिली तथा इटली के यूनानी उपनिवेश थे। इसके विषय में महत्वपूर्ण भूमिका अथेन्स के ओनोमाक्राइटस की है। इसकी महत्वपूर्ण धारणाएं इस प्रकार हैंः-

1) विश्वोत्पत्ति विषयक

सृष्टि के आरंभ में काल स्थिर था।

एक अन्य विश्वास के अनुसार -

शुरू में केवल कैओस (आदिगर्त), ईथर (वायु) अथवा ईरोस (काम) थे।

2) मानवोत्पत्ति

मनुष्यों की उत्पत्ति जीयस द्वारा टाइटनों को जलाने के बाद बची राख से हुई थी। जीयस ने टाइटनों को ष्डायोनिसस जाग्रियसष् की हत्या करने के कारण जलाया था। इस वाद ने डायोनियस की पूजा को अपनाया। उसे अपना मुक्तिदाता कहा। उसे जाग्रियस के मिथक से जोड़ा जिसे टाइटनों ने यंत्रणाएं देकर मारा था। लेकिन वाद में उसे जीयस ने अपने बेटे युवा डायोनियस के रूप में पुनरूज्जीवित कर दिया। मिस्र के ओसिरिस और बाबीलोन के तम्मुज जैसे मरकर पुनः जीवित हो उठने वाला यह देवता ही लोगों का मुक्तिदाता बना।

<u>सिकंदर और हेलेनेस्टिक सभ्यता</u>

ई.पू. चतुर्थ शताब्दी में यूनान के राजनीतिक इतिहास में बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ। इस युग में स्पार्टा और अथेन्स की शक्ति का ह्रास होता गया और मेसिडोनिया का उदय हुआ। ई.पू. 336 में सिकंदर यहॉ की गद्दी पर बैठा। सिकंदर का विश्व विजयी अभियान, इतिहास का प्रसिद्ध अध्याय है। उसने एशिया मायनर (टर्की का एशियन हिस्सा) सीरिया, गाजा, मिस्र, असीरिया, बेबीलोनिया, फारस आदि पर विजय प्राप्त की। लेकिन भारत विजय का उसका स्वप्न पूरा नहीं हो सका। इसके लिए महत्वपूर्ण कारण था, उसकी सेना की थकावट और परिणामतः सेना का असहयोग। ई.पू. 325 में सिकंदर बियास नदी तक आकर लौट गया| ई.पूर्व ३२२ में वह जब बगदाद के निकट पहुंचा तो ज्वर से पीड़ित होकर इस दुनिया से ही चल बसा। उस समय उसकी आयु केवल 33 वर्ष थी।

इसके आक्रमणों के फलस्वरूप ही संसार में एक नई प्रकार की सभ्यता का उदय हुआ, जिसे हम 'हेलेनिस्टिक सभ्यता' के नाम से पुकारते हैं। हेलेनिस्टिक सभ्यता का अध्ययन यूनान की सभ्यता के अन्तर्गत किया जाता है।

इन आक्रमणों के कारण ही कई स्थल एवं जलमार्ग प्रकाश में आए। **यूनान का संपर्क संसार के विभिन्न देशों से हुआ। यूनानी सभ्यता का सम्मिश्रण संसार की विभिन्न सभ्यताओं के साथ हुआ और इस नयी सभ्यता का उदय** हुआ। हेलेनिस्टिक सभ्यता का स्परूप एक व्यापार प्रधान सभ्यता का था। नवीन व्यापारिक केंद्रों की स्थापना हुई| उद्योग-धन्धों का विकास हुआ और एक व्यावसायिक क्रांति ने जन्म लिया। इसलिए ऐसा कहा जाता है कि सिकंदर महान विश्व का सबसे महान विजेता और सभ्यता का प्रसारक था। हेलेनिस्टिक सभ्यता के रूप में विश्व को उसकी महान देन है। यदि सिकंदर का सैनिक अभियान न होता तो इतनी उच्च कोटि की सभ्यता न पनपती।

जहां तक भारत का संबंध है, यदि सिकंदर का आक्रमण न होता तो चंद्रगुप्त मौर्य और अशोक, विशाल मौर्य साम्राज्य की स्थापना न कर पाते। यानि भारत की एकता की स्थापना में भी सिकंदर का योगदान है।

इस उथल-पुथल का कई क्षेत्रों में प्रभाव पड़ा। जिसमें विज्ञान, कला, साहित्य, धर्म आदि हैं।

विज्ञान

वैज्ञानिक प्रगति के कारण यह काल बहुत प्रसिद्ध हुआ। वैज्ञानिक प्रगति के कारणों में कुछ थे-

1) हेलेनिस्टिक युग का समाज भौतिकवादी समाज था। अतएव संसार की सभी उपयोगी वस्तुओं का उपयोग वह करना चाहता था।

2) व्यापारिक उन्नति के लिए व्यापारियों द्वारा वैज्ञानिकों को आर्थिक सहायता प्रदान की गयी।

3) इसके लिए राजाश्रय भी मिला।

4) विभिन्न देशों के बुद्धिजीवियों में विचारों और ज्ञान का आदान-प्रदान भी हुआ।

राज्य की ओर से अनेक पुस्तकालयों की स्थापना की गयी।

<u>गणित</u>

इस युग के प्रसिद्ध गणितज्ञ युक्लिड और पायथागोरस, इरेटोस्थेनीज, एपोलोनियस (हाइपरबोला और पॅराबोला नामक शब्दों का प्रचलन इसी ने किया।)

हिपार्कस (ट्रिग्नॉमेट्री का प्रचलन कर्ता)

<u>भौतिक विज्ञान</u>

आर्किमिडीज, टेसीवियस, हैरो, एरिस्टार्क, हैरॉन (सूर्यघड़ी का निर्माता)

<u>चिकित्साशास्त्र और शरीर विज्ञान-</u>

हेराफिलस : धमनियों के ऊपर अनुसंधान कर्ता|

इरेसिस्टेट्स : हृदय के ऊपर अनुसंधानकर्ता|

वनस्पतिशास्त्र : थियोक्रस्टस

ज्योतिष विज्ञान-

इस युग का सर्वप्रथम ज्योतिषी हैराविरित था। इसका सिद्धान्त यह बताता है कि पृथ्वी 24 धण्टों में अपनी धुरी पर एक चक्कर पूरा कर लेती है।

मूर्तिकला-

इस दरम्यान इस कला की उन्नति हुई। भारत की गांधार कला पर यूनानी कला की छाप स्पष्ट देखी जा सकती है। इस कला का प्रसार चीन, कोरिया, जापान और तिब्बत में भी हुआ। वहॉ की बौद्ध मूर्तियों में यूनानी कला के स्पष्ट दर्शन होते हैं।

इस युग की मूर्तिकला के तीन प्रमुख केंद्र थे-

1) रोड्स: कहा जाता है कि अकेले रोड्स में ही 100 मूर्तियॉ थीं।

2) सिकंदरिया: यहॉ की मूर्तियों में सुन्दर नक्काशी मिलती है।

3) पर्गेमम: पर्गेमम में अलौकिक मूर्तियों का निर्माण किया गया था।

इस युग की मूर्तियों में विशेष प्रसिद्ध हैः-

मेजियस की देवी की रिलीफ स्कल्पचर, एलेक्जेंडर सकेफिंगस जिसमें सिकंदर और उसके सैनिकों को दिखाया गया है। आलेख्य मूर्तियों में डेमोस्थनीज, वेटिकन की अपोलो मूर्ति, मेलोस की एकोडाइट की मूर्ति, रोड्स की सूर्यदेवता की मूर्ति आदि अपने अप्रतिम सौंदर्य के लिए विख्यात थीं।

इस कला की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमे आदर्श की अपेक्षा यथार्थ अधिक है। अतः कला में वास्तविक सौंदर्य का दर्शन होता है|

मंदिर :

धार्मिक कला के सुन्दर नमूने थे-: आलसिया का जीयस मंदिर, मिलेटेश का अपोलो मंदिर, सिकंदरिया का सपियन मंदिर।

विभिन्न देशों में अनेक देवालयों का निर्माण हुआ।

धर्मक्षेत्र-

हेलिनिस्टिक काल में यूनानी और गैर-यूनानी जातियों के सांस्कृतिक आदान-प्रदान में विज्ञान, कला, साहित्य जैसे क्षेत्र में यूनानी तत्व प्रभावशाली था। लेकिन धर्म के क्षेत्र में पूर्वी तत्वों ने यूनान को प्रभावित किया।

१) पूर्वी धर्मों के रहस्यवाद की तरफ रुझान बढ़ा|

२) **अब तक यूनान के देवता मानवीय दुर्बलताओं से युक्त थे। पूर्व में देवताओं की शक्तियों को चुनौती से परे माना गया। वे मुक्तिदायक थे। यह विचारधारा हेलेनिस्टिक युग में सभी जगह व्याप्त होती गयी।**

3) एकेश्वरवाद: इस युग में एकेश्वरवाद को बढ़ावा मिला। इससे पूर्व, यूनान में अनेक देवी देवताओं की पूजा की जाती थी।

इस युग में 'सरपिस' नाम का देवता सर्वोपरि बना। मिस्र, बेबीलोन, एशिया मायनर में उसका पूजन होने लगा।

4) शक्ति पूजा: सरपिस के साथ इसकी पत्नी आईसिस की पूजा होती थी। प्रथम शताब्दी में इसकी पूजा का प्रचलन बहुत अधिक हो गया। ऐसा विश्वास किया जाता था कि भौतिक फलों की प्राप्ति के लिए आईसिस की पूजा ही एकमात्र साधन है।

लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि बहुदेववाद पूरी तरह समाप्त हो गया।

5) मूर्तिपूजा:

इस युग में मूर्तिपूजा का भी भारी प्रचलन हुआ| हो सकता है कि यह भारतीय प्रभाव हो।

6) अवतारवाद

कुछ देशों में यह विचारधारा भी दृढ़ हुई|

7) भाग्यवाद-

यह बड़े पैमाने पर माना जाने लगा कि मनुष्य का भाग्य, ग्रहों द्वारा संचालित होता है। अतएव ग्रहों को शांत करने के लिए अनेक प्रकार की क्रियाएं की जाती थीं। लोग भाग्यवादी हो गए। वे मानने लगे कि मनुष्य स्वयं कुछ नहीं करता। वही होता है जो कुछ भाग्य में लिखा होता है।

8) राजाओं का दैवीकरण

यूनान में जनवाद और तर्कबुद्धिवादी चिंतन की धाराएं प्रबल थीं। **लेकिन पूर्वी प्रभाव हैनेलिस्टिक राजाओं के दैवीकरण के रूप में प्रकट हुआ।** राजाओं को खुले आम देवताओं के समकक्ष घोषित किया जाने लगा। अब तक राजाओं को सामान्य व्यक्ति समझा जाता था। सम्राट में देवत्व की कल्पना करना हेलेनिस्टिक संसार के लिए बिल्कुल एक नयी खोज **थी।**

सिकंदर के पश्चात् सेल्यूकस ने तो अपने को पूर्ण रूप से दैवी शासक माना था। इसी भावना से प्रेरित होकर विशाल रोम साम्राज्य में सम्राटों के पूजन का विधान किया गया। एक विद्वान के अनुसार :-

" Thus the practice of having divine rulers, came from the near East, brought to the West by Alexender the great and his successors "

पूर्व में लोग सम्राट में देवता की कल्पना करते थे। भारत में सम्राट को ईश्वर का प्रतिरूप माना जाता था। फलस्वरूप हेलेनिस्टिक संसार में भी राजा की पूजा होने लगी। हेलेनिस्टिक सम्राटों को एपिपेनींज जैसी उपाधियॉ दी गई थीं जो देवत्व की परिचायक थीं।

<u>दर्शन-</u>

यूनान के धार्मिक विचारों की चर्चा तब तक अधूरी ही रहेगी, जब तक यूनानी दर्शन से अल्प परिमाण में क्यों न हो, परिचय नहीं करा लेते। क्योंकि ऐसा माना जाता है कि यूनान के विश्व दृष्टिकोण ने अपनी सर्वाधिक सशक्त अभिव्यक्ति दर्शन के क्षेत्र में ही पायी। यहां एक और बात भी ध्यान में ली जा सकती है कि उत्तरवर्ती दार्शनिक प्रणालियों के बीज यूनान के दर्शन में विद्यमान हैं। यूनान में दार्शनिक मतों की पुष्टि के लिए विज्ञान की उन्नति हुई।

यूनानी दर्शन का प्रारंभ ई.पू. 600 के दरम्यान माना जा सकता है। **आरंभिक दार्शनिक पद्धतियॉ सारतः धर्म का निषेध ही करती है।** उदाहरण आयोनी दार्शनिक, तर्कबुद्धमूलक एलियाटिक सम्प्रदाय आदि।

ई.पू. छठी शताब्दी में हुए थेल्स के अनुसार सृष्टि की उत्पत्ति जल से हुई है। इस सिद्धान्त में तर्कसंगति की कमी होने के बावजूद उसने इतना कार्य को निश्चित किया कि उस सोच को प्रेरणा दी जिसके अनुसार पदार्थों की सृष्टि का आधार धार्मिक नहीं है। उधर एम्पेडोक्लिज ने पृथ्वी, वायु, अग्नि, जल को सृष्टि के मूलतत्व माना।

<u>अणुवाद</u>

ई.पू. पांचवी सदी में अणुवादियों के अनुसार विश्व का निर्माण करने वाले तत्व अनश्वर और असंख्य हैं| विश्व विषयक अणुवादी सिद्धान्त का प्रणेता अनेक्सोगोरस के अनुसार भौतिक तत्वों के संघटन और विघटन से ही चेतन और अचेतन वस्तुओं का निर्माण होता है। उसने यह भी कहा कि सूर्य देवता नहीं बल्कि एक दहकता विशाल पिंड है। अपने वास्तविक विचारों के कारण अनेक्सोगोरस को अथेन्स से निकाल दिया गया। उसकी रचनाएं जला दी गयीं।

अन्य भौतिकवादी दार्शनिक हुए हैं-

1) अनाक्सिमेनीज

2) अनाक्सिमिंदर (ई.पू. 7 वीं और ६वीं शताब्दी)

3) हिराक्लिटस : ई.पू. 540-480 प्रथम द्वंद्ववादी दार्शनिक|

4) दिमोक्रिटस : थेल्सवासी, पांचवी-चौथी सदी ई.पू.परमाणुवादी।

<u>सोफिस्ट</u>

सर्वप्रथम सोफिस्ट गोरास था| उसके अनुसार मनुष्य ही सब वस्तुओं का मापदण्ड है। अर्थात् सत्य, सौंदर्य, सदाचार, न्याय मनुष्य की आवश्यकताओं पर निर्भर होते हैं। परिस्थितियों के अनुसार आवश्यकता बदलती है और परिणामतः आदर्श बदल जाते हैं। **इस सिद्धान्त को 'शंकावाद' भी कहा जाता है।**

सोफिस्टों ने सामान्य जनों के अधिकारों का समर्थन और दासप्रथा तथा युद्धों का विरोध किया।

<u>सुकरात</u>-

सुकरात सोफिस्टों के सिद्धान्तों का विरोधी था। अथेन्स में जन्मे इस विचारक ने सत्य को स्थायित्व प्रदान किया। उसके लिए उसने आदर्शों की दृढ़ता का सहारा लिया। उसने स्वयं कुछ नहीं लिखा, लेकिन उसके शिष्यों के लेखों से उसकी भावनाएं आज की दुनिया तक पहुंची हैं। उसका मुख्य विषय आचारशास्त्र था। मनुष्य सच्चाई के साथ अपना कार्य करें तो वह स्थायी सत्य के दर्शन कर सकता है। असली ज्ञान वह है जो मनुष्य में सद्गुणों की वृद्धि करें। ईश्वर यानि सत्य और वह भी प्रमाण द्वारा सिद्ध होने वाला। उसे इंद्रियों के लिए गम्य होना चाहिए। **इस तरह यह अलौकिकता की दहशत से मानव की मानसिक मुक्तता का प्रयत्न था।** उसका मत था कि अथैन्स की देवभक्ति, सदाचार, जनतंत्रवाद में विश्वास सब केवल ढोंग है। इसके दंडस्वरूप उसे विष प्राशन कर, देहत्याग करने के लिए बाध्य किया गया।

<u>प्लेटो (427 - 347 ई.पू.)</u>

पेरिक्लिज युग के बाद सुकरात के अनुयायी प्लेटो का नाम आता है। उसने तर्क पर जोर दिया। लेकिन उसके प्रत्ययवाद में भौतिकतत्व के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण सन्निहित था। उसकी शिक्षा सभी उत्तरवर्ती प्रत्ययवादी पद्धतियों और सिद्धान्तों की आधारशिला मानी जा सकती है।

<u>ॲरिस्टॉयल (3८4-322 ई.पू.</u>)

इसे यूनानी दर्शन का शिखर बिंदु माना जाता है| उसने डेमोक्रिटस के भौतिकवाद का, प्लेटो के प्रत्ययवाद के साथ संयोग करने का प्रयत्न किया। वह प्लेटो का शिष्य था ही। सिकंदर का गुरू भी था। दार्शनिक ही नहीं, उच्च कोटि का वैज्ञानिक भी था। विविध विषयों पर उसने कई पुस्तकें लिखीं। उसने ज्ञात ज्ञानक्षेत्रों को एकसूत्रता में पिरोने का मनुष्य जाति की दृष्टि से महत्वांकांक्षी और महत्वपूर्ण प्रयत्न किया। इस महान चिंतक ने अपनी काफी हद तक भौतिकवादी मगर अंतर्विरोधपूर्ण विचारधारा से धर्म पर प्रबल चोट ही की।

<u>हेलिनिस्टिक युग</u>

इस काल के दर्शन का प्रेरणास्रोत सुकरात और प्लेटो के विचार ही हैं| इस युग के दर्शन को तीन रूपों में देखा जा सकता है

A) **एपिक्यूरियन दर्शन**

इसका श्रेय एपिक्यूरस नामक व्यक्ति को है। इसका समय ई.पू. 341 माना जाता है इस दर्शन की महत्वपूर्ण बातें हैंः-

1) अणु प्रभाव के संयोग से समस्त संसार का सृजन हुआ है। मस्तिष्क और आत्मा भी उच्चतम अणुओं का सहयोग ही है, जो मृत्यु के साथ नष्ट होता है। द

2) **आत्मा-भूत-प्रेतों का विरोध ।**

3) देवताओं **के अस्तित्व में अविश्वास ।**

उसके अनुसार देवता मनुष्य की न सहायता कर सकते हैं न उसे कष्ट दे सकते हैं।

एपिक्यूरस ने अपने समय के सभी धर्मों और अंधविश्वासों को त्याज्य घोषित किया क्योंकि यह मानवता को डराते-घमकाते थे।

4) **वह सुखवाद का विश्वासी था। उसके अनुसार मानव जीवन का उद्देश्य सुख प्राप्त करना है। इस सुखप्राप्ति में वह सदाचार का भी ध्यान रखता है।**

B) **स्टोईक दर्शन**

इसका प्रवर्तक सायप्रस में जन्मा 'जेनो' नामक विद्वान था। इसकी मुख्य बातें थीं, सहिष्णुता और विश्वबंधुत्व, बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय दृष्टिकोण, मानवनिर्मित भेदों के प्रति अमान्यता। विभिन्न दर्शनों में अंतर्भूत नैतिक व दार्शनिक विचारों का समन्वय ही

स्टोईक दर्शन कहा जा सकता है। **इस दर्शन में सदाचारिता का विशेष महत्व है| इसको सादगी पसंत है, लेकिन सन्यास में विश्वास नहीं है।**

स्ट्रोइक विचारधारा ईश्वर में, आत्मा की अमरता में विश्वास करती हैं लेकिन वह भाग्यवादी है। साथ-साथ उसका देवालयों के निर्माण और मूर्तिपूजा को विरोध है।

कालान्तर में इस दर्शन के रूप में परिवर्तन हुआ और इस दर्शन ने धर्म का रूप ले लिया। स्टोईक धर्म में देवपूजा को स्थान दिया गया और कर्मकाण्डों की प्रधानता हो गई। ईसाई धर्म पर इसकी छाप है।

3) संशयवाद:

अंतिम ज्ञान को प्राप्त करना मनुष्य के लिए दुष्कर है। इस संबंध में इसके प्रवर्तक पिरोह' ने शंका व्यक्त की है| इसी कारण इसका नाम 'संशयवाद' हुआ। यह सन्यास को विशेष महत्व देता था।

प्रकरण-छह

रोमन सभ्यता

रोम का इतिहास-

रोमन राज्य का विकास स्थल भूमध्य सागर के मध्य में स्थित एपिनी (एपेनाइन) प्रायद्वीप था। यह एक तरह से नजदीकी सिसिली टापू के साथ मिलकर यूरोप और अफ्रीका के बीच प्राकृतिक पुल का निर्माण करता है। प्राचीन काल में यह प्रायद्वीप अलग-अलग जाति के लोगों का निवास स्थान था। उत्तर में प्रमुख रूप से विभिन्न केल्ट या गाल जनों के कबायली समूह रहते थे। दक्षिण की ओर एत्रस्कन या एत्रुरियाई जन रहते थे। मध्य भाग में अनेक इतालीय जन रहते थे। इनमें लैटिन या लातिनी भी थे। इन्हींके प्रदेश में रोम स्थित है। दक्षिण में यूनानी तत्वों का प्राधान्य था और अनेक समृद्ध शहर थे। इतिहास में जो रोमन समुदाय बने, वे इन्हीं लैटिन, सैंबाइन, एट्रस्कन आदि जनजाति तथा गोत्र समुदायों से बने थे। इनसे छोटे नागरी समुदाय बनने लगे थे।

रोम की स्थापना-

(संक्षिप्त विश्व इतिहास १: पृष्ठ ९७)

रोम को प्राचीन काल में सनातन नगर कहा जाता था। इस नगर की स्थापना से संबंधित एक दंतकथा है। इसके अनुसार अल्बा लोगों के एक राजा को, उसके भाई ने गद्दी से उतार दिया। उसकी बेटी रेआ सिल्विआ को वेस्ता की पुजारिणी नियुक्त किया। वेस्ता की पुजारिणी होने से, रेआ को ब्रह्मचर्य का व्रत लेना पड़ा। लेकिन कुछ ही समय बाद उसने दो जुड़वा बेटों को जन्म दिया। इससे क्रुद्ध होकर राजा ने आदेश दिया कि जुड़वाओं को नदी में डुबो दिया जाय। एक गुलाम ने उन्हें टोकरी में रखकर टाइबर नदी के प्रवाह में बहा दिया। बच्चे डूबे नहीं, किनारे एक पेड़ के नीचे आ लगे। यहॉ से एक मादा भेड़िया उनको उठाकर ले गयी और उन्हें अपना दूध पिलाया। बाद में फोरच्युलस नामक गड़रिए की स्त्री ने उनकी परवरिश की। बड़े होकर ये युद्धप्रिय गडरियों के एक गिरोह के सरदार बने। उनका नाम रखा गया था प्रोमूलस और रिमस। उन्होंने बाद में गद्दी छिननेवाले राजा एम्यूलियस का तख्ता पलट दिया और दोबारा अपने नाना को गद्दी पर बिठाया। जहॉ पर उनकी परवरिश हुई थी उस जमीन पर उन्होंने एक शहर बसाने की बात सोची। नगर की नींव डालते समय, दो भाइयों में झगड़ा हो गया। जिसमें रिमस मारा गया। रोम्यूलस ने रोम आबाद किया। नगर का नाम उसी के नाम पर है। वही उसका पहला राजा था। ऐसा भी कहा जाता है कि एकाएक एक तूफान में वह गायब हो गया और बाद में एक देवता की तरह पूजा जाने लगा। प्राचीन इतिहासकारों के अनुसार रोम की बुनियाद 21 एप्रील 753 ई.पू. को डाली गयी थी।@

लेकिन इसकी प्रमाणिकता सिद्ध नहीं हो सकी। यह केवल अंदाजा ही है| रोम में शुरू में राजतंत्र था। सातवीं शताब्दी ई.पू. में रोम में एट्रस्कन जाति ने प्रवेश किया। तबसे लेकर 509 ई.पू. तक वहॉ इस जाति का राजतंत्रात्मक शासन रहा। एट्रस्कन शासन में ही रोम एक बड़ा शहर बन गया और मध्य इटली उसके नियंत्रण में आ गया था। इन लोगों का मूल, आज भी एक अनसुलझी पहेली बनी हुई है। विशाल एट्रस्कन या एकरियाई नगरों, दुर्गों, प्राचिरों, मकानों और सम्पन्न समाधियों के खंडहर आज भी देखे जा सकते हैं। ये लोग मुख्यतः कृषिजीवी थे। उनका व्यापार भी था। एत्रुरियाई जलदस्युओं की सारे भूमध्यसागर प्रदेश में दहशत भी थी। पुरातात्विक उत्खननों के फलस्वरूप कलाकृतियों के अलावा बड़ी संख्या में एत्रृरियाई लेख (कुल मिलाकर लगभग नौ हजार) भी प्रकाश में आए हैं। लेकिन उन्हें पढ़ने में अभी सीमित सफलता ही मिली है। 500 ई.पू. के लगभग राज्यतंत्र का पतन हुआ। एट्रस्कन जाति के विरोध में इटली के कबीलों ने सफल विद्रोह किया| एट्रस्कन जाति के हाथ से रोम सदैव के लिए निकल गया और तत्पश्चात् रोम से विदेशी शासन समाप्त हो गया। राज्यतंत्र के स्थान पर गणतंत्र की वहॉ स्थापना हुई।

(@संक्षिप्त विश्व इतिहास भाग 1: पृष्ठ 97)

एट्रस्कन काल के राजा-

राजा को बहुत अधिकार प्राप्त थे। वह नगर राज्य का प्रघान पुरोहित भी होता था।

<u>समाज का वर्गीकरण-</u>

इस काल में समाज दो वर्गों में विभाजित था।

1) पेट्रीशियन: यह उच्च वर्ग था।

2) प्लेबियन: यह निम्न वर्ग था। इन्हें कम अधिकार प्राप्त थे।

दोनों वर्ग का एक दूसरे में संक्रमण संभव नहीं था। यह निम्न वर्ग आम तौर पर कंगाल ही था।

<u>गणतंत्रीय शासन व्यवस्था-</u>

509 ई.पू. से लेकर 31 ई.पू. तक यह व्यवस्था चली। इस काल में अर्थाजन का मुख्य व्यवसाय कृषि ही था। गणतन्त्रात्मक काल में रोम में व्यापारिक उन्नति अधिक नहीं हुई। उल्टा इस दरम्यान व्यापार को तुच्छ समझा जाता था। उद्योग घंधे भी अधिक मात्रा में नहीं थे। बाहर से लूट का माल इतना अधिक आ गया था कि इससे जीवन की दैनिक आवश्यकताएं पूरी हो जाती थीं। गणतंत्र काल में प्लेबियन वर्ग की दशा में सुधार किया

गया। वर्ग व्यवस्था को दूर करने का प्रयत्न हुआ। फिर भी समाज में तीन वर्ग स्पष्ट रूप से अस्तित्वमान थे।

उच्च वर्ग : पुरोहित तथा अन्य अभिजात वर्ग ।

मध्यम वर्ग : कृषक, शिल्पी, श्रमजीवी।

दास वर्ग : इनके जीवन का कोई मूल्य नहीं था। कभी-कभी नागरिकों के मनोरंजन के लिए निहत्थे दासों को हिंसक पशुओं से लड़वाया जाता था।

गणतंत्र काल में रोम में कला की भी उन्नति नहीं हुई| कला पर यूनानी कला की छाप स्पष्ट दिखायी देती है। चिंतन के क्षेत्र में ऐसा कहा जाता है-

साहित्य, धर्म, दर्शन और कला के क्षेत्र को देखते हुए तो यही कहना उचित प्रतीत होता है कि वास्तविक रोम ने यूनान को नहीं जीता बल्कि यूनान ने रोम को जीत लिया। राजनीतिक क्षेत्र में रोम की यूनान पर विजय हुई परन्तु सांस्कृतिक क्षेत्र में यूनान ने रोम को जीत लिया।

<u>गणराज्य का राजकीय ढांचा-</u>

उच्चतम पद कौंसुल का था जिसकी संख्या दो थी। ये प्रति वर्ष चुने जाते थे। सेना पर उन्हीं का नियंत्रण होता था। वे ही सीनेट तथा जनता की सभा का संचालन करते थे। सीनेट में 300 सदस्य होते थे। सीनेट ही रोमन गणराज्य की मुख्य राजकीय नियंत्रक संस्था थी। अर्थात् कुलीन ही इसके सदस्य होते थे। जनता की सभाएं थीं।

1) सेंतुरिओ की जनसभा (कुलीन लोगों से) राजकीय अधिकारियों की होती थी।

2) सामान्य जनता की कबायली जनसभा, विधायी कार्यों के लिए थी। लेकिन शुरू में राजनीतिक शक्ति धनवान नागरिकों (पेट्रिशियनों) के हाथों में ही थी।

पांचवी से तीसरी सदी ई.पू. तक का रोम का इतिहास कुलीनों और सामान्य जनों के संघर्षों से परिपूर्ण है। लगातार आंतरिक कलह चलते रहे। पांचवीं, चौथीं और तीसरी शताब्दी ई.पूर्व दरम्यान रोमनों के निरन्तर युद्धों के कारण, सारा इटली उनके वश में आ गया। आगे के इतिहास में रोमनों द्वारा भूमध्यसागरीय क्षेत्र में सौ सालों से भी अधिक समय तक किए गए लूटमार युद्ध ही युद्ध हैं। लेकिन इन युद्धों ने एक छोटे से नगण्य राज्य को एक विश्व शक्ति में बदल दिया। कार्थेज, स्पेन, मकदूनिया के साथ युद्ध हुए। इन युद्धों में रोम को लाखों गुलाम भी मिले। गुलामों का उपयोग खेती में काम करने के लिए किया जाता था। इटली कृषि प्रधान देश बना रहा। कृषि का मूलाधार गुलामों का श्रम ही था। रोम समाज में दो विरोधी वर्ग थे। दासस्वामियों का वर्ग और दासों का वर्ग। दासों के विद्रोह बार-बार होते

रहे। स्पार्टाकस के नेतृत्व में 74 ई.पू. से शुरू हुआ और लगभग 3 सालों तक चला दासों का विद्रोह, प्राचीन विश्व के इतिहास का संभवतः सबसे बड़ा दास विप्लव था।

<u>साम्राज्य काल (ई.पू. 31 से 474 ई. तक)</u>

ई.पू. 31 में आक्टोवियन ने रोम की सत्ता अपने हाथ में ली। उसने ऑगस्टस की उपाधि धारण की। गणतंत्र की रक्षा के नाम पर धीरे-धीरे सारी शक्तियॉ उसने अपने हाथ में ले लीं। 13 जनवरी 27 ई.पू. को मानों एक ढंग से रोमन गणतंत्र का अंत हो गयां| और प्रथम रोमन सम्राट आगस्तस ने शुरू किए रोमन साम्राज्य का युग शुरू हो गया। इस दिन आक्टेवियन की निरंकुश सत्ता को मानो गणराज्य के सीनेटरों ने मान लिया। यही युग चलता रहा।

दूसरी शताब्दी को रोमन साम्राज्य का स्वर्णयुग माना जाता है। इस समय साम्राज्य अधिकतम विस्तारित हुआ। उसकी सीमाएं उत्तर में, स्कॉटलैंड से दक्षिण में नील के प्रपातों तक, पश्चिम में अटलांटिक से लेकर पूर्व में फारस की खाड़ी तक थी।

दासस्वामित्व पर आधारित यह समाज इस समय तक अपने विकास के उच्चतम शिखर तक पहुंच चुका था। दास स्वामी, अपने गुलामों से अधिकतम लाभ पाने की कोशिश में अधिकतर शोषण के पाशवी रूपों को उपयोग में लाते थे। दासों की स्थिति अत्यंत दारूण तो थी ही। एक उदाहरण के अनुसार किसी अभिजात रोमन को उसके दास ने मार डाला। फलस्वरूप आगस्तस के शासनकाल में जारी किए गए कानून के अनुसार उसके सभी 400 घरेलू दासों को मृत्युदंड दिया गया। दासप्रथा में शारीरिक श्रम मुख्य रूप से दासों के हिस्से में आया। वास्तविक भौतिक जीवन की उन्नति के लिए शारीरिक श्रम ही सबसे बड़ी आवश्यकता थी। लेकिन दास अपने काम से नफरत करता था। सिर्फ कोड़े के बल पर ही उसे काम के लिए मजबूर किया जाता था। रोमन साम्राज्य के संकट के समय दासस्वामी, गुलामों की अपने कामों में रूचि पैदा करने की आवश्यकता को समझ गए। जमीन के छोटे-छोटे टुकड़े रखने, उन पर खेती करने और अपने परिवार बनाने की छूट उन्हें दे दी गयी। इस तरह भावी सामन्ती समाज की नींव पड़ी, जो जमीन को लगान पर लिया करते थे लेकिन स्वतंत्र होते थे, गुलाम नहीं| उन लोगों को कोलोनस कहा जाता था। कोलोनस को अब अपने मालिक को अपनी फसल का एक हिस्सा (आम तौर पर एक तिहाई) देना पड़ता था और साल में छः से बारह दिन मालिक की जमीन पर काम करना पड़ता था| कोलोनस का काम एक ढंग से दासों के काम के स्वरूप में सुधार था। दास-स्वामी अर्थव्यवस्था और दास प्रथा कालातीत हो चुकी थी। उसकी जगह एक नयी अर्थव्यवस्था तथा श्रम के एक नए और फलोत्पादक रूप ने लेना अनिवार्य था। कोलोनस अपने श्रम के उपकरण का स्वामी होता था तथा उसके श्रम से उत्पादित उपज के एक हिस्से पर क्यों न हो उसका अपना अधिकार होता था। अतः श्रमोत्पादन में उसकी रूचि थी।

(संक्षिप्त विश्व इतिहास १: पृष्ठ १३२.१३३)

ई. 284 में डियोक्लिसियन नामक व्यक्ति, रोम के शासन पर आरूढ हुआ। सैनिक श्रेणी से वह सम्राट पद तक पहुंचा था। लेकिन बना वह एक निरंकुश शासक। दरबार में उसके सामने आने पर व्यक्तियों को फर्श पर झुक कर सलाम करना पड़ता था। कहा जाता है कि उसके कार्यकाल में सैनिकों की संख्या पचास लाख तक पहुॅच गयी थी। उसकी दृष्टि से राज्य के हित के सामने व्यक्ति का हित तुच्छ था। लेकिन इस काल में अनेक सुधार किए गए। वस्तु के मुल्य नियत करना तथा श्रमिकों का वेतन निश्चित करना, जैसे काम भी हुए।

डिओक्लिशियन के बाद उत्तराधिकार की लड़ाई में सत्ता, कान्स्टेन्टाइन के हाथ आयी। उसने भी निरंकुश नीति जारी रखी। लेकिन फिर भी इसकी गणना विश्व के युगांतकारी महापुरूषों में की जाती है| क्योंकि इससे एक नए युग का सूत्रपात हुआ। सम्राट प्रायः उन सभी व्यक्तियों को मरवा डालता था जो उसके या उसकी सन्तान के, सम्राट बनने के रास्ते में रोड़ा बन सकते थे। कान्स्टेन्टाइन ने अपने ससूर मेवसमियन को आत्महत्या करने के लिए विवश किया। पत्नी और पुत्र को मृत्युदंड की सजा दी। लेकिन उसने कुलीन व्यक्तियों द्वारा सामान्य जन के शोषण के समाप्त करने की भी कोशिश की। अपने नाम से रोम साम्राज्य को एक नयी सुदृढ़ राजधानी दी। लेकिन सेना और निजी खर्च बढ़ जाने के कारण उसे कई नए कर लगाने पड़े। कुलीनों की तुलना में गरीबों को अधिक कर देना पड़ता था। राजा का महल अत्यंत आकर्षक था, जो लगभग 150 एकड़ में फैला था।

ऑगस्टस के बाद प्रायः सभी सम्राट प्रजा को पीड़ा पहुंचाने वाले हुए। दासों की संख्या में बेतहाशा वृद्धि हुई। उनके अमानुष पीडन ने चित्कार दिए। रोम के बड़े-बड़े भूस्वामियों ने, साधारण कृषकों के हिस्से भी भयानक गरीबी ही डाली। गरीब, धनिक वर्ग की रंगरेलियां देखते थे। बड़े जमींदारों ने सम्राट की सहमति पाकर छोटे किसानों की उपजाऊ भूमि को छिन लिया था। छोटे किसान भूमि के अभाव से दुःखी थे, तो जमीन के मालिक अपनी जमीन का प्रबंध नहीं कर पा रहे थे। इसलिए उपज की कमी थी। विदेशों से अन्न का आयात होता था। प्रभावशाली वर्ग व्यापार को हीन दृष्टि से देखता था। रोम साम्राज्य सैनिक शक्ति से खड़ा हुआ था लेकिन बाद में सैनिकों को रोम से कोई लगाव नहीं रहा। उनकी रूचि केवल लूटपाट में रह गयी। साम्राज्य के विस्तार के दौरान रोम लूट की सम्पत्ति से भर गया। इस कारण विलासिता में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। रोमवासियों ने सैनिक विजयों की ओर ही ध्यान दिया। एक बात और, अन्त में रोम का साम्राज्य इतना विस्तृत हो गया कि उनका लम्बे समय तक एक सूत्र में बंधे रहना संभव नहीं था। पूर्वी रोम साम्राज्य की भाषा यूनानी थी और पश्चिमी साम्राज्य की लैटिन। अन्त में बर्बर जनों-जर्मन, स्लाव आदि के रोमन साम्राज्य और उसके प्रदेशों पर हमलों के परिणामस्वरूप इस साम्राज्य का पतन हो गया।

(बर्बर शब्द यूनानी भाषा के बरबारस शब्द से बना है जिसका प्रयोग यूनानी उन सभी लोगों के लिए करते थे जिनकी भाषाएं उन्हें ऊटपटांग, अबोधगम्य लगती थीं।)@

(@संक्षिप्त विश्व इतिहास.१:पृष्ठ १४५)

जैसा कि समझा जाता है कि रोमनों ने यूनानियों की भांति, दर्शन, साहित्य, कला में विशेष प्रगति नहीं की। उस पर यूनान का प्रभाव था ही। लेकिन फिर भी संसार में रोम की सभ्यता का पाश्चात्य जगत पर जितना प्रभाव दिखाई देता है, उतना किसी और सभ्यता का नहीं।

<u>रोमन सभ्यता--</u>

<u>आराध्य</u>

गोत्र संघों के सम्मिलन से रोमन समुदाय का जन्म हुआ था। रोमनों में अग्निपूजा अत्यंत पुरातन थी। अग्नि की स्त्री रूप में की गयी कल्पना को मातृसत्तात्मक व्यवस्था का अवशेष माना जा सकता है। इन लोगों के विषय में जानकारी उपलब्ध होने के मुख्य स्रोत मंदिर, बलिस्थान, देवमूर्तियॉं, शिलालेख जैसे पुरातात्विक स्मारक और रोमन साहित्य है।

<u>प्रेतात्मा पूजा</u>

रोमन धार्मिक विश्वासों में सबसे प्राचीन काल से लेकर तो रोमन राज्य के अंत तक जिस विश्वास ने अपना अस्तित्व बनाए रखा वह गोत्रों और जनजातियों की प्रेतात्माओं की पूजा से संबंधित है। रोमन लोग मानते थे कि आत्माएं या मृतकों की छायाएं-मानीज-परिवारों और गोत्रों की संरक्षक होती है। सारे रोमन धर्म का मूल इस पूजा में देखने का सिद्धान्त भी रखा गया था और उस आधार पर इसके लिए कभी-कभी 'मानीवाद' शब्द उपयोग में लाया जाता है। वह इस मानीज से ही निकला है। डीई मानीज यानी 'मानीज देवता' शब्दों का प्रयोग किया जाता था। कब्रों के पत्थरों पर प्रायः 'डी.एम.' शब्द खुदे हुए मिलते हैं। वे 'डीस मानीबुस' अर्थात् मानीज देवताओं के लिए थे। एक अन्य कल्पना थी 'पेनातों'। दोनों को मिलती-जुलती कल्पनाएं या कभी-कभी एक ही चीज माना जाता था। पेनात वास्तव में शुरू में घर के अन्न अथवा खाद्य भंडार के प्रतिरूप थे। लेकिन आगे वे घर की संरक्षक प्रेतात्माएं बन गयीं। एक और संकल्पना थी ''लार'' । लेकिन इसकी व्याप्ति कुछ अधिक थी। लार सभी तरह की संरक्षक प्रेतात्माओं को कहा जाता था। **परिवार के संरक्षक प्रेतात्माओं के अतिरिक्त मार्गों की संरक्षक प्रेतात्माएं, चौराहों की संरक्षक प्रेतात्माएं, सागर यात्रा की संरक्षक प्रेतात्माएं, सेना की संरक्षक प्रेतात्माएं होती थीं।**

पारिवारिक और गोत्रीय संरक्षकों की पूजा एक निजी पारिवारिक या गोत्रीय कार्य था। परिवार के प्रमुख के निर्देशन में गृह-अग्नि के पास यह पूजा संपन्न की जाती थी। गोत्र का नामस्रोत या तो आदिपूर्वज या अनुश्रुति से लिया हुआ मिथकीय होता था। उदाहरण क्लाडिया

लोग अपने गोत्रप्रवर्तक ''क्लाडस'', सेसीलिया लोग सेकुलस और ज्युलियस लोग 'ज्युलियस' के नाम से पूजा करते थे|

ज्यों-ज्यों प्राचीन गोत्र संगठन का राज्य संगठन में विलय होता गया त्यों-त्यों धर्म संकल्पनाओं के गोत्रीय रूपों का अधिक व्यापक रूपों में रूपांतरण होने की प्रक्रिया बढती गयी। बहुत से गोत्रीय देवता सारे राज्य स्तर पर पूजे जाने वाले देवता बन गए। इनमें कुछ देवताओं की पूजा का चलन रोम में बाहर से आया था क्योंकि वे मूलतः जिन गोत्रों के देवता थे, वे स्वयं बाहर से आए हुए थे।

हर रोमन पुरूष की अपनी संरक्षक प्रेतात्मा होती थी। इसे 'जीनियस' कहते थे। स्त्रियों की संरक्षक 'जूनो' थी। यह दाम्पत्य जीवन और शिशु जन्म में मदद करती थी। वास्तव में आरंभ में जीनियस गोत्रीय संरक्षक देवताओं को कहा जाता था| यह संयोग नहीं है कि जीनियस शब्द की उत्पत्ति जेनेर (जनना) क्रिया से हुई है। व्यक्तिगत जीनियसों के अलावा स्थानों के भी बहुत सारे संरक्षक जीनियस थे जिनका प्रतीक सामान्यतः सर्प को माना जाता था।

इस तरह हम देखते हैं कि प्रारंभ में रोमनों का धर्म देवताओं की अपेक्षा आत्मा पूजक था। और आत्माओं ने मानो शरीर धारण किया था। ये सभी शक्तियॉ उनके दैनिक जीवन में सहायता करती थीं। ज्यो-ज्यों रोम का विस्तार होता गया, इनका कार्य भी महत्वपूर्ण होता गया, जैसे किसी अधिकारी का होता है।

मानव कार्यकलापों से संबंधित देवता-

बड़ी संख्या में छोटे-मोटे देवता थे जो मानवी कार्यकलापों के मानो मूर्तरूप थे। वे इन कार्यकलापों के संरक्षक माने जाते थे। जन्म के क्षण से ही समझो मनुष्य हर समय किसी न किसी देवता के संरक्षण में रहता था। अर्थात् इन देवताओं का क्षेत्र काफी सीमित होता था। कई बार तो उनका अपना कोई नाम भी नहीं होता था| जो कार्य वे सम्पन्न करते थे, उसी से उन्हें संबोधित किया जाता था।

नवजात शिशु की पहली रूलाई का देवता था 'वैटिकेनुस'| नवजात शिशु के स्पष्ट उच्चारण में सहायक देवता थे 'फैबूलिनस'| नवजात शिशु को खाना सिखाने वाली देवी थी 'एदूका'| नवजात शिशु को पीना सिखाने वाली देवी थी 'पोतीना'| जब बच्चा चलना शुरू करता था तो उसे घर से बाहर निकालती थी देवी 'एबीओना' और उसे घर लाती थी 'एडिओना'।बच्चे के शारीरिक विकास में हड्डियों का देवता था 'ओस्सिपेगो'| बच्चे को सीना तानकर खड़ा होना सिखाता था 'स्टैटनस'| बच्चे की मांस पेशियों की देवता 'कार्नो' थी|

बालक के विद्यारंभ करने पर विद्यालय ले जाने वाली देवी-आइतरदुका

वापस घर लाने वाली - दोमीदुका

गृह में किवाड़ों का रक्षक देवता-फेर्कुलस

दहलीज का रक्षक देवता लीमेंटिनस

सांकल आदि का देवता -कोर्डेआ।

<u>प्रकृति की शक्तियों के पूजक-</u> .

प्राचीन रोम निवासी प्रकृति की शक्तियों के ही पूजक थे। प्राकृतिक शक्तियॉ ही दैवीय शक्तियों के रूप में मान्यता प्राप्त करने लगी थीं।

<u>कृषि से संबंधित देवता-</u>

इटली की जमीन कृषि के लिए काफी अनुकूल है| अर्थात् प्राचीन काल में उसे एक लाक्षणिक अर्थ में कृषि प्रधान देश ही माना जाता था।

रोमन देव मंडल के बहुत से सदस्य आरंभ में कृषि और पशुपालन से संबंधित थे। उदाहरण के तौर पर, आगे चलकर युद्ध का देवता माना जाने वाला मार्स, मूल रूप से कृषि और पशुपालन का संरक्षक और बसंत तथा उर्वरता का देवता था। 'फाउनस' मवेशियों और चरवाहों का संरक्षक देवता था। चखाहें उसके सम्मान में शीत ऋतु के अन्त में, 17 फरवरी को लूरकेलिया का हर्षोल्लास के साथ त्यौहार मनाते थे। देवी विनस, जिसे बाद में यूनान की 'एफोडाइटि' से जोड़कर प्रेम तथा सौदंर्य की देवी के रूप में प्रतिष्ठा मिली, शुरू में बागवानी और अंगूर की खेती की संरक्षिका थी। अंगूर और लाइबर का देवता 'लाइबर' भी था। यह एक शुद्ध प्लेबियन देवता था। 'सैटर्न' बोआई का देवता था जिसके सम्मान में दिसम्बर में अर्थात् वहां की बोआई से ठीक पहले सटर्नेलिया नाम के अनुष्ठान संपन्न किए जाते थे। कृषि से ही जुड़ी हुई और एक देवी थी सेरीज अथवा 'सेरेरिस'। यह अनाज फसलों की संरक्षिका थी। अनाज फसलों की सीमाओं का देवता था टर्मिनस। आरंभ में यह खेतों की मेडों और सीमाओं का रखवाला था। किसान उसके सम्मान में 23 फरवरी को त्योहार मनाते थे। अन्य कई देवी-देवता भी कृषि के विभिन्न कार्यों या फिर उनसे संबद्ध प्राकृतिक परिघटनाओं के दैवीकृत रूप **थे। यह भी देखने में आता है कि कृषि तथा पशुपालन संबंधित विश्वासों का नाता, नगरों के स्थान पर गांवों तथा प्लेबियनों से था। प्राचीन रोमन उत्सवों में अधिकतर उत्सवों का उद्भव कृषि तथा पशुपालन से संबंधित अनुष्ठानों से हुआ था।**

<u>अग्नि पूजा-</u>

रोमनों के पारिवारिक तथा गोत्रीय विश्वास, अग्नि पूजा से भी संबंध रखते थे। अग्निपूजा पुरातन काल से चली आ रही थी। जब गोत्रों के सम्मिलित होने से रोमन समुदाय

का आविर्भाव हुआ तो अग्नि की पूजा ने भी राजकीय रूप ले लिया। समुदाय के पवित्र स्थल में सदा प्रज्वलित अग्नि की, देवी 'वेस्ता' के रूप में कल्पना की गयी थी। यह यूनान के हेस्टिया के साथ समानता रखती थी। वेस्ता की मूर्ति नहीं बनाई जाती थी। पूजा स्थल में जलती हुई अग्निज्वाला ही उसका प्रतीक थी।

<u>टोटमवाद के चिन्ह-</u>

रोमन धर्म में टोटमवाद के चिन्ह अन्य अधिकतर जातियों की तुलना में काफी कम है। लेकिन उसका एकदम अभाव नहीं है| कॅपीटोलाइन पहाड़ी पर मादा भेड़ियॉ की पूजा और मादा भेड़िया द्वारा रोमुलस तथा रिमस नाम के जुड़वा बच्चें को, जिन्होंने बड़े होकर रोम की स्थापना की, अपना दूध पिलाने की कहानी का मूल भी, कई विद्वान टोटमी विश्वासों में मानते हैं। वैसे आम तौर पर यह माना जाता है कि रोमनों ने यह कहानी एट्रूस्कनों से ली थी। एक अन्य उदाहरण में पिसेंत जनजाति की पूर्वज जनजाति का मार्गदर्शन मैगमाई चिड़िया (पिसा) कर रही थी। एक अन्य जनजाति थी हिर्पिनेर। यह जिस समूह से निकली थी उनका मार्गदर्शन भेड़िए (हिर्पेस) ने किया था।

<u>पूजा का स्वरूप</u>

रोम के लोग आरंभ में मूर्तिपूजक नहीं थे। अपने देवताओं की मूर्तियॉ नहीं बनाते थे। केवल कुछ देवताओं के भौतिक प्रतीक उपयोग में लाए जाते थे। लेकिन ये प्रतीक पूजा की वस्तु नहीं थे। मार्स का प्रतीक भाला था और ज्यूपिटर का प्रतीक पत्थर। वेस्ता का प्रतीक कभी न बुझने वाली अग्नि। रोमनों ने देवताओं की मूर्ति बनाने की प्रेरणा यूनानियों से ली। लेकिन बाद में भी अधिकतर किसान पुराने ठूठों, बड़े पत्थरों आदि में देवताओं के प्रतीक के रूप में श्रद्धा रखना जारी रखे हुए थे। रोमनों में बहुत प्राचीन काल से मृतकों की मूर्तियॉ बनाने की प्रथा चली आ रही थी। ये मूर्तियॉ मुखौटों की शक्ल में बनायी जाती थीं। उन्हें घर में सुरक्षित रखा जाता था। ऐसा समझा जाता है कि यह प्रथा भी रोमनों ने एट्रस्कनों से सीखी थी।

<u>पूजा स्थल</u>

आरंभ में इस समुदाय में मंदिर नहीं बनवाए जाते थे। पहले शुभ जगह खुली होती थी जिसके चारों ओर बाड़ लगा दी जाती थी। **मंदिर बनवाने की शुरूआत भी यूनानियों के अनुकरण की ओर संकेत करती थी।** रोम का सबसे पुराना और सबसे मुख्य मंदिर ज्यूपिटर का 'टेंप्लम केपिटोलिनम' था। मात्र रोमन और यूनानी वास्तुओं में एक अंतर था। रोमन मंदिरों का सामने का हिस्सा एक चौड़े, खुले पोर्टिको जैसा होता था। वहॉ से आकाश को देखा जा सकता था।

<u>एट्रस्कनों के देवता : राजतंत्र काल</u>

एस्ट्रस्कन लोग बहुदेववादी थे। उनके प्रमुख देवता थे ज्यूपिटर, जूनो तथा मिनर्वा। एस्ट्रस्कनों के रोम पर शासन के दौरान इन्हीं देवताओं की वहां पूजा की जाती थी। मुख्य देवता ज्यूपिटर था। जूनों उसकी पत्नी थी। मिनर्व्हा कारीगरों के देवता थे। मार्स की भी पूजा की जाती थी जिसे लोग युद्ध का देवता कहते थे।

इस काल के निवासियों का धर्म लौकिक था, उसमें नैतिकता जैसे किसी चीज का अंतर्भाव नहीं था।

<u>मूर्तिपूजा-</u>

एस्ट्रस्कन लोग मूर्तिपूजा करते थे।

<u>परलोक</u>-

परलोक में उनका विश्वास था।

<u>शव संस्कार-</u>

मुर्दों की कब्रें बनायी जाती थीं और दीवार पर उनके धार्मिक जीवन से संबंधित दृष्य बनाए जाते थे। मुर्दे को संदूक में रखकर गाड़ा जाता था। इनकी कला पर यूनानी प्रभाव था। केवल इतना ही ज्ञात है कि ये लोग किसी विशेष लिपि का प्रयोग करते थे।

<u>गणतंत्र काल</u>

इस युग में देवालय बनने लगे। मंदिरों में स्थापित की जाने वाली मूर्तियॉ रोम में नहीं बनती थी। बल्कि अधिकतर यूनान से ही लायी जाती थीं।

रोम पर यूनानी धर्म का प्रभाव तीसरी शताब्दी ई.पू. में हुए टैरेंटिआम के युद्ध से ही और खासकर दक्षिणी इटली पर रोम के आधिपत्य के बाद पड़ना शुरू हुआ था। दूसरी शताब्दी ई.पू. के मध्य में रोम ने स्वयं यूनान पर कब्जा कर लिया तो यह प्रभाव बेहद बढ़ गया| राजकीय विजय के बावजूद यूनानियों के समृद्ध और विविध पुराणकथाओं को रोमनों ने ग्रहण किया। उनको अपने नीरस और निर्जीव देवताओं पर लागू करने के लिए रोमनों ने अपने देवताओं को यूनानी देवी देवताओं से एकरूप सिद्ध किया। इस तरह ज्यूपिटर की जीयस से, जूनो की हेरा से, मिनर्व्हा की एथिना से एकरूपता स्थापित करने का प्रयत्न किया गया| एक ढंग से रोमनों ने यूनानियों की सांस्कृतिक श्रेष्ठता स्वीकार कर ली।

ज्यों-ज्यों रोमन राज्य का विस्तार होता गया त्यों-त्यों रोमन देवमंडल में नये-नये देवताओं की भर्ती होती रही।

यूनानी प्रभाव के कारण ही यहॉ निवासियों की अपने परंपरागत एवं प्राचीन देवताओं के प्रति श्रद्धा कम होती गयी। लोग मानने लगे कि उनके प्राचीन देवताओं ने उन्हें छोड़ दिया है। इसी कारण उन्होंने यूनानी देवताओं की पूजा शुरू की। लोगों ने देवताओं को छोडा या देवताओं ने लोगों को? यहाँ वस्तुस्थिति और धारणाओं को गड्मगड् होते देखने को मिलता है।

<u>देवताओं के वर्ग-</u>

दास, विदेशी मूल के थे| अतः उन्हें अधिकतर रोमन धार्मिक अनुष्ठानों से दूर रखा जाता था। रोम के दासों, दासता से मुक्त हुए लोगों और स्वतंत्र गरीब व्यक्तियों के धार्मिक विश्वास, संभ्रान्त वर्गों के विश्वासी रोम के अधिकृत धर्म से मेल नहीं खाते थे। प्राचीन पेट्रिशियन त्रिदेव थे ज्यूपिटर, मार्स और क्वीरिनस। तो प्लेबियनों के अपने त्रिदेव थे-सेरीज, लाइबर और लाइबेरा, जिनका संबंध मुख्य रूप से कृषि से था। अधिकारों के मामले में प्लेबियनों के पेट्रिशियनों के बराबर हो जाने पर इन प्लेबियनों के देवताओं को भी राजकीय देव मंडल में स्थान दिया गया।

<u>पूजा-</u>

ये लोग देवताओं की पूजा इसलिए करते थे कि देवता प्रसन्न होकर उनकी उन्नति में सहायता करेंगे।

<u>आत्मा-</u>

इस दरम्यान भी आत्माओं की पूजा का महत्व बना रहा।

<u>मृतक संस्कार</u>-

मृत व्यक्तियों को ये लोग बड़ी सावधानी से दफनाते थे। इनका विश्वास था कि यदि वे ऐसा नहीं करेंगे तो मृतात्मा को कष्ट होगा।

<u>स्त्रियों की देवता</u>-

इस दरम्यान स्त्रियों के मध्य, मिस्र की आइसिस;मातृदेवी की पूजा बहुत लोकप्रिय होती जा रही थी। रोम की मुद्राओं पर भी देवी की आकृति मिलती है। इस देवी का आशीर्वाद सुख देने वाला और श्राप दुःख का कारण माना जाता था।

<u>सर्पिस</u>

प्रथम शताब्दी ई.पू. में ही रोम में 'सर्पिस' की पूजा होने लगी थी। कहा जाता है कि जब क्लिओपाट्रा रोम पहुंची तब ज्यूलियस सीझर ने सर्पिस की आराधना की थी।

<u>साम्राज्य काल-</u>

<u>विशेष-</u>

<u>सम्राटों में देवत्वारोपण-</u>

सम्राटों में देवत्वारोपण (शुरू में मरणोपरांत और बाद में जीवन काल में ही) ज्यूलियस सीझर के साथ ही शुरू हुआ। सर्वप्रथम उसका देवकरण किया गया। उसकी मृत्यु के बाद उसे सरकारी तौर पर देवताओं जैसा सम्मान दिया गया। आक्टेवियन या आगस्टस (पावन) को मृत्यु के बाद देवताओं की श्रेणी में शामिल किया गया। इतना ही नहीं उसकी पूजा के लिए मंदिर भी बनवाया गया। सम्राट कैनिगुला ने अपने जीवन काल में ही अपने को देवता घोषित किया और आदेश दिया कि यूनानी देवताओं की मूर्तियों पर खुद उसके सिर की प्रतिकृतियॉ लगायीं जाएं।

यह प्रचार किया गया कि गणतंत्र का पतन देवताओं के शाप के कारण हुआ और आगस्टस ने साम्राज्य की स्थापना देवताओं के वरदान से की थी। डियोक्लिसिन ने भी स्वेच्छाचारी शासन को मजबूत बनाने के लिए सम्राट की पूजा की भावना का खूब प्रचार किया। उसने ज्यूपिटर कैपिटोलिनस को राजधर्म का केंद्रबिंदु बनाते हुए प्रचार किया कि राजा सर्वशक्तिमान है और अन्य देवता उसके अधीन होते हैं| उसका विश्वास था कि साम्राज्य का स्थायित्व ईश्वर की इच्छा पर निर्भर है और पुराने देवताओं के कोप से ही राज्य का पतन हो सकता है। इसलिए वह प्राचीन देवताओं को प्रसन्न रखना अत्यंत आवश्यक समझता था। धीर-धीरे रोम के सम्राट को अपोलो का अवतार समझा जाने लगा।

<u>देवालयों का पुनरूद्धारक और निर्माता आगस्टस-</u>

इस युग के मंदिरों में कादकार्ड, सैटर्न, कैस्टर, ज्यूलियस, जेनस, ज्यूपिटर, कैपिटोलिनस आदि के मंदिर प्रसिद्ध हैं। आगस्टस ने अपोलो का एक संगमरमर का मंदिर भी बनवाया था। मार्स का मंदिर भी अपने सौंदर्य के कारण बहुत अधिक प्रसिद्ध है।

<u>मूर्तियॉ</u>

आगस्टस काल में दो प्रकार की मूतियों का निर्माण हुआ। पोट्रेचर श्रेणी में मूर्ति, आकृति का प्रतिनिधित्व करती थी। दूसरी मान्यूमेण्टल रिलीफ श्रेणी की मूर्तियॉ किसी घटना के स्मारक के रूप में बनायी जाती थीं|

रोमन गणतंत्र के अन्तिम काल में रोम के वासी धर्म की ज्यादा चिंता नहीं करते थे। सम्राट आगस्टस ने कई कानूनों द्वारा मंदिर बनवाकर तथा पुरोहितों को नियुक्त कर फिर घार्मिक भावना को जागृत करने का प्रयत्न किया।

संक्षेप में

रोमन देवताओं का वर्गीकरण

रोमन राज्य के प्राचीनतम देवता तीन थे।

1) ज्यूपिटर (जोविस)

2) मार्स

3) क्विरिनस

वास्तव में ये उन तीन जनजातियों का प्रतिनिधित्व करते थे जिनसे इस राज्य का निर्माण हुआ था।

बाद में इस त्रिमूर्ति की जगह एक अन्य त्रिमूर्ति ने ले ली।

<u>ज्यूपिटर, जूनो, मिनर्वा</u>

ई.पू. दूसरी सदी में रोमन कवि, एन्नियस ने रोम के बारा मुख्य देवताओं का उल्लेख किया है-

ज्यूनो, वेस्ता, मिनर्वा, सेरेरा, डियाना, वीनस, मार्स, मर्करी, ज्यूपिटर, नेपच्यून, वेल्किनस और अपोलो।

ईसा की पहली सदी में वैरो ने इस सूची में और आठ देवताओं का अन्तर्भाव किया।

जेनर्स, सैटर्न, जीनियस, सूर्य, ओर्कस , लाइबेर, पेटर, पृथ्वी और चंद्रमा।

प्राचीन रोमन धर्म के एक प्रमुख अध्येता थे गेओर्ग विस्सोवा। उन्होंने रोमन देवताओं का काल और उत्पत्ति स्थान के अनुसार वर्गीकरण किया है ।

1) आरंभिक रोमन देवता

2) इतालवी मूल के देवता

3) यूनानी मूल के देवता

4) नवकल्पित देवता जो अमूर्त संकल्पनाओं के मानवीकरण थे, जैसे आशा, निष्ठा आदि।

<u>नवकल्पित देवता-</u>

रोमन शांति, आशा, पराक्रम, न्याय, सौभाग्य आदि को भी देवी-देवताओं की श्रेणी में रखते थे। वास्तव में ये पूर्णतः अमूर्त संज्ञाएं हैं और उनमें सजीव व्यक्तिमूलक बिंबों के लक्षण नहीं पाए जा सकते। फिर भी उनके सम्मान में रोम में मंदिर बनवाए जाते थे। उन्हें बलियॉ दी जाती थीं।

वैसे देवताओं को एकदम मानवाकार कम ही दिया जाता था| इसी कारण बहुत से देवताओं का या तो कोई निश्चित लिंग नहीं है या फिर उन्हें उभयलिंगी माना जाता था। इसी से एक ही नाम के देवता और देवी युगल के बिंब बन गए। उदाहरण-

लाइनेर.लाइबेरा,

फाउनस-फाइना

पेमोनस-पोमोना

डियान-डियाना आदि।

नए पेशे से संबंधित-

बहुत सारे देवता कृषि आदि आर्थिक गतिविधियों से संबंधित थीं। लेकिन समय के साथ जब नए पेशे उत्पन्न हुए तो नए देवता भी अस्तित्व में आए| उदाहरण के तौर पर, तांबे के सिक्कों का संरक्षक देवता था एस्कोलेनस (शाब्दिक अर्थ-ताम्रकार) लेकिन जब 269 ई. में रोमनों ने चांदी के सिक्के ढालने शुरू किये तो एक नया देवता भी पैदा हो गया- अजेन्टिनस (रजतशिल्पी)। इसे एस्कोलेनस का पुत्र माना जाने लगा।

क्लासिकल युग में रोमन लोग स्वयं अपने देवताओं को दो वर्गों में बॉटते थे।

1) पुराने, स्थानीय या स्वदेशी देवता

2) विदेशी देवता

महत्वपूर्ण देवता-

<u>ज्यूपिटर</u>

अभी तक यह अस्पष्ट ही है कि क्वासिकल युग के रोमनों के मुख्य देवता ज्यूपिटर का मूल क्या था। जोविस - पेटर- ज्यूपिटर (आकाश पिता) संस्कृत के द्यौ-पितर और यूनानी जीयस-पेटर से साम्य रखता है। यानि मूल रूप में वह प्रकाशवान आकाश का साकार रूप था। उसका नाम जातिवाचक नाम के तौर पर मात्र आकाश के अर्थ में भी प्रयोग किया जाता था।

इसके साथ ही ज्यूपिटर, मेघगर्जन तथा तडित का देवता था। यह शायद एट्रस्कन देवता टिनिया का प्रभाव था। दूसरी ओर ज्यूपिटर रोमनों के लिए अंगूरलताओं का देवता था। इस दृष्टि से वह और लाइबेर एक ही देवता होने चाहिए| आगे यूनानी देवता जीयस के जैसा इसे भी आतिथ्य, नैतिकता और पारिवारिक जीवन का संरक्षक देवता माना जाता था। यह भी संभव माना जाता है कि रोम के लोग आरंभ में किसी अमूर्त शक्ति की अभिव्यक्तियों के तौर पर कई सारे ज्यूपिटरों का अस्तित्व मान्य करते हों। इस तरह इस बिंब का स्वरूप जटिल है।

विजयी सेनापति हमेशा ज्यूपिटर की उपासना करके विजयोत्सव मनाते थे।

मार्स-

मार्स का बिंब भी जटिल है। शुरू में वह एक जनजातीय, सेबाइनों की मार्स शाखा का देवता और कृषि का संरक्षक था। बाद में उसे युद्ध का देवता माना जाने लगा और यही भूमिका प्रमुख बन गयी। विद्वानों के विचार है कि ऐसा इसलिए हुआ कि रोमन किसानों ने भूमि, युद्धों के मार्ग से प्राप्त की थी। मार्स बाद में यूनानी देव एरीज का समकक्ष हो गया।

जूनो-

इसका संबंध एट्रस्कन यूनी गोत्र से समझा जाता है। शुरू में यह प्रजनन की देवी थी। आगे चलकर यूनानियों के प्रभाव से वह ज्यूपिटर की पत्नी बन गयी।

मर्करी-

इसका संबंध एट्रस्कन गोत्र मेर्क' के नाम से है|

मिनर्व्हा

इसका संबंध एट्रस्कन मिनर्व्हा से है|

नूमेन-

रोमन धर्म में देवताओं और अन्य अलौकिक वस्तुओं से संबंधित मान्यताओं के सिवाय 'नूमेन' नाम के एक अमूर्त अलौकिक शक्ति की एक अत्यंत पुरातन संकल्पना भी पायी जाती है। यह एक रहस्यमय प्रबल शक्ति थी। ये देवताओं और कुछेक मनुष्यों में ही होती थी। लेकिन आगे चलकर नूमेन इंपेरातोरम अर्थात् सम्राट के देवत्व और उसकी दैवी शक्ति को बताने, इस बिंब का उपयोग किया जाने लगा।

तिसरी-चौथी शताब्दी में मिथ्र, आइसिस, अत्तीस और ईसा की पूजा का सारे रोमन साम्राज्य में बड़े पैमान पर प्रसार हुआ।

<u>राज्य और धर्म-</u>

रोमनों ने यूनानियों की तरह राज्य और धर्म को एक दूसरे से अलग नहीं किया । राज्य के हर कार्य में धार्मिक विचारों का प्रभाव था। धार्मिक अवसरों पर कोई सरकारी कार्य नहीं होता था। रोम के पुरोहित राज्य के अधिकारी होते थे। शुरू में ये सीधे-सीधे नियुक्त किए जाते थे। लेकिन बाद में उन्हें निर्वाचित किया जाने लगा। पुजारियों को राज्य की ओर से विशेष सुविधाएं प्रदान की जाती थीं।

<u>पुरोहित</u>

उपरोक्त अधिकारी पुरोहितों के सिवाय, पुरोहितों की मंडलियां मौजूद थीं। धार्मिक कार्यों का भार पुरोहितों के एक संघ पर था। पुरोहित रोम के दूत के तौर पर भी तथा अन्य काम भी करते थे। पंचांग बनाते थे, उत्सवों की तिथियॉ निर्धारित करते थे, मुहूर्त निकालते थे। देवता को भेंट और बलि चढ़ाने के कार्य का संचालन एक विशेष पुरोहित करता था। उसे 'रेक्स सेक्रोरम' कहा जाता था। इसका अर्थ होता है अनुष्ठानों का अधिष्ठाता।

पुरोहित मंडलियों में एक वेस्तालियों की मंडली थी। इसमें छः पुजारिनें होती थीं। उन्हें बड़ा सम्मान दिया जाता था। आम तौर पर वे कुलीन घरानों से ही होती थीं| आयु के तीस साल तक इस पद पर वे रहती थीं। लेकिन उन्हें विवाह न करने ओर ब्रहमचारिणी रहने के कठिन व्रत का पालन करना पड्ता था। व्रत का उल्लंघन करनेवाली को जीवित ही भूमि में गाड़ दिया जाता था। वेस्तालियों का प्रमुख कार्य होता, वेस्ता के मंदिर में पवित्र अग्नि को हमेशा प्रज्जवलित रखना। मंडली की प्रमुख को विर्गो वेस्तालिस मैक्झिमा कहा जाता था। इसे इतनी सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त थी कि यदि वधस्थल पर ले जाते हुए अपराधी रास्ते में उसे मिल जाते, तो वह उन्हें दंडमुक्ति भी देने की अधिकारिणी होती थी।

मवेशियों के देवता फाउनस के पुजारियों का वर्ग 'लूपरकस' कहलाता था। लूपरकेलिया के उत्सव पर वे कमर पर चमडे का पट्टा बांधे, भेडियों की नकल करते हुए दौड़ते थे और चाबुक से बांझ स्त्रियों को पीटते थे ताकि उनके बांझपन को भगाया जा सके।

<u>शकुन विचार और भविष्य कथन-</u>

रोमन धर्म में ही नहीं तो रोमन सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन में शकुन विचारों तथा भविष्य कथन इन बातों का बड़ा महत्व था। युद्ध अभियान हो या शांति वार्ता, वास्तु निर्माण हो या कोई अन्य महत्वपूर्ण सार्वजनिक कार्य, उन्हें शुरू करने से पहले रोमन लोग

हमेशा देवताओं से निर्देश मांगते थे। उनकी अपनी देवताओं में गहरी आस्था थी| **उन्हें विश्वास था कि आवश्यक घड़ी आते ही देवता अवश्य उनकी मदद करेंगे । इसलिए जादू-तंत्र-मंत्र को वे अधिक महत्व नहीं देते थे। प्रकृति की असाधारण घटनाओं को आम तौर पर अपशकुन माना जाता था।**

शकुन विचार जानने के अधिक प्रचलित तरीकों में थे, आकाश में बिजली का चमकना, पवित्र मुर्गियों का दाना चुगने का ढंग, पक्षियों की उड़ान आदि। रोमनों ने एट्रूस्कनों से, बलि पशु की अंतडियों से, शुभाशुभ का पूर्व ज्ञान प्राप्त करना सीखा| कुछ विद्वानों का अनुमान है कि एट्रूस्कन यह विधि अपनी मूलभूमि लघु एशिया से लाए थे और वहॉ वह पहुंची मेसोपोटामिया से। इस तथाकथित विद्या का विशेषज्ञ, गणतंत्र काल के अंत तक, एस्ट्रस्कनों को ही माना जाता था।

वे ज्योतिष्य में भी विश्वास करते थे। टॉलेमी तक ने मनुष्य के जीवन पर नक्षत्रों के असर को स्वीकार किया है। उसके अनुसार ज्यूपिटर का प्रभाव फेफड़े और पुरूषेंद्रिय पर होता है। चंद्रमा का प्रभाव उदर, जिह्वा और स्त्रियों की जननेद्रियों पर होता है। मार्स का प्रभाव कान, गुर्दे और शिराओं पर होता है। सूर्य का हृदय, नेत्र और मस्तिष्क पर।

<u>अंधविश्वास-</u>

लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि यह प्राचीन रोमन सभ्यता अंधविश्वासों आदि से पूर्णतः मुक्त थी। अन्धविश्वास थे। जादू-टोने का भी अस्तित्व था। मणियों के प्रभाव पर भी विश्वास था। जब कोई सांप मनुष्य को काट लेता तो उसके उपचार के लिए अनुष्ठान किए जाते थे। पुजारी झांड़-फूंक करते थे। इतिहास से पता चलता है कि ज्यूलियस सीझर भी प्रस्थान कराने से पहले किसी विशेष मंत्र का तीन बार उच्चारण करता था।

दूसरी शताब्दी में तो अंधविश्वासों और स्वप्न, अपशकुन, पशुबलि इत्यादि बातों में काफी वृद्धि हुई। वैसे तो कहा जाता है रोमन धर्म में भावुकता और काव्यात्मकता की तुलना में तर्कमूलात्मक तत्व अधिक है। लेकिन इस दरम्यान ही ज्ञानवाद की दो धाराएं तक चल निकलीं।

1) केवल विशेष ज्ञान द्वारा, मुक्ति प्राप्त हो सकती है| यह ज्ञान जादू तथा धार्मिक क्रियाओं द्वारा प्राप्त हो सकता था| इस प्रकार तर्कप्रधानता का ह्रास होता गया।

2) **आत्मा के प्रतिकूल होने के कारण पदार्थ असत्य है।**

कर्मकाण्ड-

रोमन समाज में कर्मकाण्ड की स्थापित विधि का किसी भी तरह से विचलन नहीं होने दिया जाता था। संदेह की गुंजाइश न रहे इसलिए शब्दों के साथ, हाथ आदि से संकेत भी बना दिए गए थे। जैसे पृथ्वी का उल्लेख होने पर हाथ से उसे छुना होता था। ज्यूपिटर का नाम लेते हुए हाथ ऊपर आकाश की ओर उठाने पड़ते थे। लेकिन अनुष्ठानों का यह कड़ाई से पालन, समय के साथ औपचारिक पहलू बन गया। बलियों, भेंटों आदि पर दिखावा अधिक से अधिक किया जाने लगा| उदाहरण: यदि पशु अथवा नरमुंडों की निश्चित संख्या देवताओं को बलि के तौर पर चढ़ानी होती तो रोमन लोग लहसून की उतनी ही गांठें चढ़ा देते थे।

मरणोपरांत आत्मा की नियति-

इस विषय में रोमन लोगों की धारणाएं काफी अस्पष्ट थी| प्राचीन मान्यता तो यह थी कि मृतक की छाया या आत्मा शरीर से पूर्ववत संबंध बनाए रखती है। यह विश्वास आगे भी समाज से लुप्त नहीं हुआ। रोमवासियों की समाधियों पर शिलालेख मिले हैं। उनसे पता चलता है कि रोमनों को मृतकों के जीवितों से संबंध बनाए रखने में भारी विश्वास था। बहुत से शिलालेखों में मृतकों की ओर से जीवितों से किया गया अनुरोध पढ़ने को मिलता है कि उन्हें भूले नहीं और खाद्य तथा अन्य वस्तुएं चढ़ाते रहें। लावारिस मृतकों की आत्माओं को लार्वा और लेमूर कहा जाता था। उन्हें दुष्ट आत्माएं समझा जाता था। क्योंकि उन्हें भोजन कराने वाला कोई नहीं था। उन्हें शान्त करने अथवा भगाने के लिए मई माह में विशेष अनुष्ठान किए जाते थे। इन अनुष्ठानों को 'लेमूरिया' कहते थे।

आगे, यूनानियों का हेडिज के लोग' जैसे एक अधोलोक में विश्वास मिलता है| **इस लोक में भयानक 'ओर्कस' राज्य करता है। मृत्यु के बाद सभी आत्माएं यहॉ पहुंचती हैं। एक आनन्दलोक 'एलिजियम' की कल्पना भी मिलती है। यहॉ सदाचारी लोगों की आत्माएं रहती हैं।**

लेकिन साम्राज्यकाल में लोगों का आत्मा की अमरता और पुनर्जन्म में विश्वास दृढ हो गया।

उत्सव और धर्म-

ऐसा कहा जाता है कि यूरोप की धार्मिक परम्परा के विकास में रोमनों का काफी योगदान है। पर्व और उत्सव रोमन धर्म की ही देन है।

रोम के दर्शन

दर्शन और अलौकिक तत्वों का विवेचन .

1) नव पाइथागोरियन मत के विश्वास: आत्मा, परमात्मा स्थायी तत्व हैं।

आत्मा में दो प्रकार की योनियॉ होती हैं।

1) देवयोनी

2) पिशाचयोनि

देवयोनी व्यक्ति को ज्ञानबुद्धि देती हे।

पिशाच योनियॉ मनुष्य को पीड़ा पहुंचाती हैं।

जीवन मरण का चक्र अवश्यंभावी है।

इस दर्शन के पुरस्कर्ता साधु चमत्कारों, शकुनों-अपशकुनों में विश्वास करते थे।

यहॉ आदिम कल्पनाओं का परिष्कृतीकरण देखने को मिलता है।

2) **स्टोइक मत**

रोम निवासी इसे दार्शनिक मत ही नहीं तो धर्म मानते थे। साम्राज्य युग में इसे राज्य का संरक्षण मिला| इस दर्शन के सिद्धान्त प्रकृति पर आधारित थे। वे प्रकृति के अधिक से अधिक सान्निध्य की वकालत करते थे। उनके अनुसार प्रकृति के अनुकूल स्थितियॉ ही सर्वोत्तम हैं, क्योंकि संसार प्राकृतिक नियमों से ही चलता है।

मनुष्य के कर्तव्य और कानूनों का स्रोत भी प्रकृति ही होना चाहिए। नागरिकों को सादा जीवन और अच्छे गुण ग्रहण करने चाहिए। इस दर्शन के कारण ही रोम के समाज में तर्क को प्रधानता मिलने लगी।

ईश्वर समस्त संसार का पालक और नियंत्रक है।

3) **नव प्लेटोनिक मत**

इस मत का जन्मदाता 'ऐमानियस सैकास' सिकंदरिया में जहाज का कर्मचारी था और इसका प्रमुख उन्नायक 'प्लोटिनस' था जो मिस्र में निवास करता था लेकिन आगे चलकर रोम में रहने लगा। इस दर्शन में प्लेटो और अरस्तू की विचारधाराओं पर पूर्वी विचारों की छाप है।

ईश्वर की सत्ता केवल अनुभूतियों द्वारा ही जानी जा सकती है।

4) **एपीक्यूरियन मत**

इसका रोम में सर्वप्रथम प्रचारक 'ल्यूक्रिटस' था। इस मत के अनुसार ऐसा काम नहीं करना चाहिए जिससे दूसरे की मनःशान्ति भंग हो।

अन्य मत

1) **ग्नास्टिक धर्म**

इस धर्म का आरंभ ईसा से पूर्व दूसरी शताब्दी में ही हुआ था। परन्तु चार सौ वर्षों में यह धर्म पूर्वी भूमध्य सागर के क्षेत्र में बड़े पैमाने पर फैल गया। इस धर्म के प्रवर्तकों का भी कहना था कि यह धर्म उन्हें देवताओं की प्रेरणा से प्राप्त हुआ है। लेकिन यह प्रेरणा भी इस मत को तीस शाखाओं में बंटने से नहीं रोक सकी। 30 शाखाओं के नाम इतिहासकारों को ज्ञात हुए हैं। इस घर्म का सबसे बड़ा आचार्य 'क्लेंटिटिय' माना जाता है।

इस मत के अनुसार - आत्मा तो अजर, अमर है, लेकिन जीवन तत्वहीन विषयों की आसक्ति और दुःखदायी है।

मिथ्र धर्म

पश्चिम एशिया में जब रोम के सेनानी पहुंचे तो इस धर्म से प्रभावित हुए। इस धर्म का विशिष्ट केंद्र एशिया मायनर था। वहॉ से बहुत से दास पकड़कर रोम लाए गए। उन्होंने रोम में अपने मालिकों के घर में इसे पहुंचाया। धीरे-धीरे मध्य यूरोप और तटवर्ती उत्तर अफ्रीका के देशों में यह फैल गया। यहॉ तक कि मानो ईसाई धर्म का प्रतिद्वंद्वी बन गया।

यह जरथुस्ट्र धर्म की एक महत्वपूर्ण शाखा थी। इस धर्म का प्रतीक, पके हुए गेहूॅ की बाली, सूर्य और बैल माने जाते थे। अवेस्ता के अनुसार अहूरमज्दा ने बैल को बनाया और जब बैल मरा तब पशुओं और वनस्पतियों का जन्म हुआ। पुरातत्व खोजों में इस धर्म से संबंधित कई लेख और मूर्तियॉ प्राप्त हुई हैं।

मिथ्र देवता : रक्षा और प्रकाश देने वाला है।

आत्मा की अमरता में उनका विश्वास था।

मनुष्य को अपने अगले जन्म में पिछले भले बुरे कर्मों का फल मिलता है।

आचरण की पवित्रता, मन-वचन की शुद्धता, भक्ति, सच्चाई और सच्चरित्रता महत्वपूर्ण है।

इस धर्म को मानने वाले भी सूर्य की ओर मुंह करके मंत्रपाठ करते थे और अग्नि की पूजा करते थे।

आज भी रोम की परम्पराओं पर इस धर्म का प्रभाव है। जैसे नक्षत्रों के नाम पर दिनों के नाम और पचीस दिसम्बर को सुरक्षा देवता की तिथि मानना। रोम में एकेश्वरवाद का प्रचार भी इसी घर्म के कारण हुआ।

ईसाई धर्म

अनेक देवी-देवताओं, कर्मकाण्डों वाला रोमन लोगों का प्राचीन धर्म समय के साथ समाज की बौद्धिक, आध्यात्मिक आवश्यकताओं की तुष्टि करने में सक्षम नहीं रहा। पीछे हमने देखा कि किस तरह नास्तिक विचारों का भी उदय होने लगा था। **फिलीस्तीन में पैदा हुआ ईसाई धर्म आबादी के निर्धनतर स्तरों, जैसे गरीब किसान, आजाद किए गए दास आदि में लोकप्रिय होने लगा। इसका कारण था प्रारंभिक ईसाई समुदायों का सादा जीवन, समानता, मरणोपरांत जीवन में विश्वास इत्यादि। लेकिन इस लोकप्रियता ने सरकारी अधिकारियों को चौंका दिया और ईसाइयों का दमन शुरू हुआ। फिर भी उसका फैलाव तेजी से बढ़ता ही गया।**

धीरे-धीरे रोमन सम्राटों के ध्यान में यह बात आने लगी कि यह नया धर्म और उसके सिद्धान्त जैसे उसका लोगों को विनयशील होने का उपदेश, इस दुनियॉ की असार वस्तुओं की ओर ध्यान न देने की बात, उनके सारे कष्टों के लिए स्वर्ग में आनंद का प्रलोभन, उनके अपने हितों के लिए औजार का काम दे सकते हैं। अंततः सम्राट कॉस्टेंटाइन के काल में ई. 313 में, ईसाई धर्म रोम साम्राज्य का राष्ट्र धर्म बन गया। प्राचीन देवताओं की प्रतिमाएं स्थापित करने पर, उनकी पूजा करने आदि पर प्रतिबंध लगा दिया गया। पूर्वी चर्च के लोग कौन्स्टेटाइन की गिनती देवदूतों में करते थे। चर्च और राज्य की अपनी-अपनी मर्यादाएं निर्धारित की गयीं। **ईसा को स्वर्ग का सम्राट माना गया तो रोमन सम्राट को इहलौकिक साम्राज्य का शासक।** ईसाई धर्म के विजय के साथ प्राचीन रोमन धर्म लुप्त हो गया।

नास्तिक विचार-

इतने सारे धार्मिक प्रवास के बाद भी रोम में न देवताओं के विचारों को नकारने वाले विचारों की कमी थी, न रोमन सभ्यता का क्षरण उससे रुक सका।

1) ल्यूक्रेटियस(99-55 ई.पू.) यह एक स्वतंत्र चिंतक, प्रतिभाशाली कवि और भौतिकवादी दार्शनिक था। उसने अपनी प्रसिद्ध कृति "वस्तुओं की प्रकृति" में देवताओं की कल्पना को त्याज्य ठहराया।

2) प्लिनी (23-७९ ई.) इसने भी पारंपरिक देवताओं के अस्तित्व से इन्कार किया। सूर्य को सारे ब्रह्माण्ड का केंद्र और देवता कहा।

3) क्विंटस एन्नियस (240-169 ई.पू.) भी देवताओं में विश्वास नहीं करता था।

4) टाइटस प्लाटस (250-184 ई.पू.) धर्म का उपहास करता था।

प्रकरण-सात

प्राचीन इंग्लैण्ड का धर्म

आज से लगभग 2500 वर्ष पहले, पूर्व दिशा से आकर, केल्ट जाति के लोग इंग्लैंड में बसे।

इस जाति के पुरोहितों और धर्माचार्यों को 'ड्रूइड' कहा जाता था। वे खगोल, चिकित्सा आदि के ज्ञाता होते थे। इनका एक विशेष सम्प्रदाय माना जाता था। इनकी भारतीय ब्राह्मणों से अत्यधिक समानता थी। जैसे-

1) समाज के आचार-विचार, रीति-रिवाज का मार्गदर्शन और निरीक्षण करना।

2) आयु के उत्तरार्ध में नगर से दूर जंगलों में जाकर गुफाओं और कुटियों में जीवन बिताना। इनके आचरण की पवित्रता के कारण वे अत्यधिक आदर के पात्र होते थे। उनके बिना किसी भी धार्मिक अनुष्ठान को पूर्ण नहीं समझा जाता था।

3) ड्रूइर्ड भी भारतीयों की भांति आत्मा को अमर मानते थे।

4) ड्रूईड बालकों को 20 वर्ष आयु होने तक ब्रह्मश्चर्य का पालन करना पड़ता था। इस आयु तक वे तपपूर्वक विद्या का ग्रहण करते थे।

ड्रूइड लोगों की सभाएं ही लोगों के पारस्परिक विवादों को सुलझाती थीं| मानों वे एक तरह से उस समय के न्यायालय थे। उनकी आज्ञा को मानकर लोग द्वेष, शत्रुता को त्याग देते थे। ड्रूइड समाज में शान्ति और व्यवस्था बनाएं रखने का प्रयास करते थे।

प्रत्येक कार्य में नक्षत्रों की स्थिति का ध्यान रखा जाता था| उनका विश्वास था कि आत्मा अपने कर्मों के प्रभाव से विभिन्न योनियों में जन्म लेती है। रोमन लोगों का कथन है कि ड्रूईड लोग आत्मा की अमरता के सिद्धान्त के कारण ही मृत्यु से नहीं डरते थे। उनका विश्वास था कि धर्म का उद्देश्य व्यक्तिगत आचार-विचार में सुधार, शान्ति प्रचार तथा अच्छे कार्यों के लिए उत्साहित करना है। मनुष्य निम्नलिखित साधनों से अपने उद्देश्यों को पूरा कर सकता है।

1)ईश्वर पर विश्वास

2) सत्य आचरण

3) धैर्य

स्टोनहेंज-

दक्षिणी इंग्लैंड में सेलिसबरी के मैदानी इलाकों में खड़े एक स्मारक का नाम 'स्टोनहेंज' है। यह बलुआ पत्थरों, जो 13 फीट ऊँचे हैं, का बना हुआ है। पत्थरों के इस स्मारक की विशेषता यह है कि यह प्रागैतिहासिक काल का एकमात्र स्मारक है जो कृत्रिम रूप से तथा एक निश्चित स्थापत्य के रूप में बनाया गया था, ऐसा दिखायी देता है। इन पत्थरों के शीर्षों को आपस में जोड़ने वाले लिन्टेल्स पत्थर सावधानी से वक्राकार बनाई गई आकृतियॉ हैं। वे मिल कर एक वृत्त जैसी आकृति प्रस्तुत करते हैं। पहले ऐसी कल्पना की गई थी कि इसे ड्रूइड पुजारियों ने बनवाया होगा। लेकिन आधुनिक पुरातत्व विज्ञान के विकास के साथ यह सिद्ध हो गया कि ड्रुइड पुजारियों के काल से ये पत्थर एक हजार साल पुरातन है। फिर इसके बनवाने वालों के विषय में कई संभावनाएं व्यक्त की गयीं। कभी उसका संबंध फीनीशियनों से तो कभी मिस्त्रियों से तो कभी यूनान की धरती से आये लोगों से जोड़ा गया।

जाने-माने अंग्रेज विद्वान 'सर रिचर्ड कोल्ट होरे' ने स्मारक के समीप खुदाई करके एक लम्बे-तगड़े व्यक्ति का अस्थि-पंजर प्राप्त किया। इसी के साथ कब्र से एक कुल्हाड़ी, छुरियॉ, एक गदा तथा सोने व हड्डियों की बनी सामग्री भी हाथ लगी। ये कीमती वस्तुएं मिस्र की तरफ इशारा करती हैं। सर रिचर्ड ने निष्कर्ष निकाला कि प्राचीन ब्रिटेनवासियों ने यह कौशल बाहर से सीखा होगा।

पुरातत्व विज्ञान के अनुसार स्टोनहेंज का काल ईसा से 2750 पूर्व ऑका गया है। इसका निर्माण तीन चरणों में होने के संकेत मिलते हैं। प्रथम चरण की शुरूआत 2750 वर्ष ईसा पूर्व होनी चाहिए। तब स्टोनहेंज में बने हुए 56 छिद्र बनाए गए। इनके बीच समान अंतर है और इनसे बाहरी परिधि बनी है। दरवाजे के बाहर स्थित हील स्टोन भी इसी समय का है। दूसरे चरण की शुरूआत 2000 साल ईसा पूर्व हुई। 4-4 टनों के भारी पत्थरों से भीतरी 83 नीलें पत्थरों के दोहरे वृत्त बने हैं। अस्थि-पंजर के साथ मिली कुल्हाड़ी भी इन्हीं पत्थरों की है। इसके 100 साल बाद के तीसरे-चरण में, पत्थरों को काट-छांट कर खड़ा करके उनके ऊपर लेन्टल्स रखने का नाजुक काम किया गया। यह हर पत्थर के अपने संतुलन पर निर्भर था। क्योंकि, स्टोनहेंज का मैदान उत्तर-दक्षिण की ओर 18 इंच की ढलान लिए हुए हैं। ये 75 विशाल पत्थर कम से कम 20 मील दूरी से लाये गए होंगे। इसके निर्माताओं की उच्चकोटि की वास्तुकला के बारे में संदेह नहीं, लेकिन यह बनाने का उद्देश्य अभी भी रहस्यमय बना हुआ है।

स्टोनहेंज के पास प्राचीन युग के और कोई अवशेष नहीं मिले, जिससे उसके उद्देश्य के बारे में पता चल सके। किसी ढंग का प्राचीन कचरा भी नहीं मिला। इसका अर्थ किया जा सकता है कि वह नियमित रोजमर्रा के उपयोग की जगह भी नहीं थी। स्टोनहेंज के आसपास

कुछ कब्रें खोजी गयी हैं। इस आधार पर यह अनुमान लगा जा सकता है कि वह किसी तरह का पवित्र स्थल रहा होगा| वह या तो सार्वजनिक बैठकों के लिए उपयोग में लाया जाता होगा या फिर मंदिर जैसा पूजा स्थल होगा| लेकिन इसे जटिल खगोल वेधशाला सिद्ध करने की भी कई कोशिशें की गयी हैं।

बोस्टन विश्वविद्यालय, अमेरिका के एक खगोलज्ञ जेरॉल्ड हॉकिंस तथा सर नॉर्मन लाकयर के अनुसार इसकी स्थिति ग्रीष्मकालीन सक्रांति(Mid Summer Solistic) का प्रतीक है, जब सूर्य दक्षिण की यात्रा शुरू करने के पहले सर्वाधिक उत्तरी मुख प्रतीत होता है। यदि इसी को उल्टा कर दिया जाए तो शरदकालीन संक्रांति का अध्ययन किया जा सकता है। अन्य कल्पनाएं भी की गयी हैं।

प्रकरण.आठ

क्रूर सीथियन्स (Scythians)

आज से ढाई हजार वर्ष पहले, मध्य रूस के मैदानों में सीथियन धुड़सवारों का प्रभुत्व था। वे बर्बर और रक्तपिपासु थे। ईसा से पॉच शताब्दी पूर्व के यूनानी इतिहासकार हेरोडोटस की पुस्तक 'पर्शियन वॉर्स' से इनके विषय में जानकारी मिलती है। वे शत्रुओं के सिर काटकर उनकी खाल उतार लिया करते थे और इससे कोट, टोपियां आदि बनाते थे। खोपड़ियों को साफ करके प्याले का आकार देकर उसमें शराब और रक्त का मिश्रण पिया करते थे। सीथियन, युद्ध में अपने पहले शत्रु को मारकर उसका रक्त पीते थे। **वे सभी युद्धबंदियों को नहीं मारते थे। कुछको अपने देवताओं के समक्ष बलि देने के लिए रखते थे| बलि देने का तरीका बड़ा भयानक था। सबसे पहले बंदी के दाये हाथ और भुजा को काटकर उछाल दिया जाता था।**

लेकिन यह अभी तक ज्ञात नहीं हो सका कि उनके पूर्वज निश्चित कौन थे। सीथियनों की कब्रों की खुदाई में सोने की बनी हुई मूर्तियॉ तथा शिल्प हैं। यहॉ भयानक बर्बरता के साथ, सोने पर की गई नाजुक नक्काशी और शिल्पकारी इनका परस्पर विरोधी अजीब मेल मिलता है।

वैसे सोना उनके जीवन में पवित्र भूमिका अदा करता था। इसलिए उनके कबीले में स्वर्णकार को देवता के समान सम्मान प्राप्त था। वे सोने के समक्ष बलियॉ भी देते थे। वे चांदी तथा तांबे का उपयोग नहीं करते थे।

वे शामन(Shaman) नामक देवता को मानते थे। उसे औषधि, जादू, पशु का स्वामी तथा भविष्यवक्ता माना जाता था।

सीथियनों में किसी राजा की मृत्यु होने पर उसका शरीर चीर कर अन्दर से साफ कर के उसे सुगंधित पदार्थों से भर दिया जाता था। शव पर मोम की परत चढ़ाई जाती थी। उसे प्रत्येक कबीले में घुमाया जाता था। अन्त में उसे एक चौकोर गढ्डे में चटाई पर रखा जाता था। लकड़ी के तख्तों से बनाई गयी छत भालों के आधार पर गढ्ढे के ऊपर बिछाते थे। राजा की एक रखैल, उसका रसोइयॉ और अन्य सेवक, इन्हें गला दबा कर मार दिया जाता था ओर राजा के शव के साथ दफनाया जाता था। सोने के प्याले, राजा के घोड़े भी मकबरे में गाड़ दिए जाते थे। इसके बाद कबीले वाले उत्साह से मकबरे को टीले का रूप देते थे। उसे ऊँचे से ऊँचा बनाने का प्रयत्न किया जाता था । रूसी पुरातत्व शास्त्रियों ने, हेरोडोटस ने किए हुए वर्णन की पुष्टि की है। काले सागर के उत्तर पूर्व में 'क्रासनोडोर' में 49 फीट ऊंची एक कब्र की खुदाई की गयी, जिसके पास दफन किए गए 360 घोड़े मिले। राजा की मृत्यु

की प्रथम वर्षगांठ पर उसकी सुरक्षा प्रित्यर्थ किया जाने वाला कर्मकांड भी भयंकर होता था। पूर्व राजा के पचास सेवक गला दबाकर और पचास ही घोड़े मार डाले जाते थे। सेवकों को घोड़ों पर बिठाकर मकबरे के चारों ओर वृत्त बनाकर खड़ा कर दिया जाता था। इस काम के लिए घोड़ों और सवारों के शरीरों में खूंटे ठोक दिए जाते थे।

ईसा से 350 वर्ष पूर्व सीथियनों को उनसे भी ज्यादा क्रूर सौरामाटा (Saura Matae) कबीलों द्वारा इस प्रदेश से मार भगाया गया और ईसा से 106 वर्ष पूर्व पोंटस के राजा द्वारा पूरी तरह् नष्ट कर दिया गया।

प्रकरण : नौ

अमेरिकी सभ्यताएं

उत्तरी अमेरिका में आदिवासियों का जीवन और समाज आदिकालीन अवस्था में बना रहा| लेकिन मध्य और दक्षिण अमेरिका में मेक्सिको, पेरू आदि जगह इसी दरम्यान उच्च कोटि की सभ्यता की रचना हुई थी। आज भी मध्य अमेरिका के उष्णकटिबंधीय जंगलों में मानव जीवन के लिए अनुकूल परिस्थितियॉ नहीं है| लेकिन इन्हीं जंगलों में कभी मानवों ने एक ऐसी सभ्यता की रचना की जिसे आज 'माया सभ्यता' के नाम से जाना जाता है। **मध्य अमेरिका के विशाल भूभाग, मेक्सिको, पेरू, ग्वाटेमाला आदि में फैली माया संस्कृति का उद्‌भव काल ईसा से 2500 वर्ष पूर्व का है| वेसे तो यूरोपियनों के आगमन से पहले अमेरिका में सभ्यता के चार बड़े और स्वतंत्र केंद्र थे-**

1) मेक्सिको-अजटेक सभ्यता, ओल्मेक सभ्यता

2) पेरू - इन्का सभ्यता

3) ग्वाटेमाला तथा यूकातान-माया सभ्यता

4) कोलंबिया - चिब्चा सभ्यता

माया सभ्यता-

लगभग 3400 वर्षों तक इसका विकास होता रहा। 300 ई0 से लेकर 900 ई0 तक यह सभ्यता चरमोत्कर्ष पर थी। इन लोगों को धातु और पहिए का ज्ञान नहीं था। फिर भी उन्होंने महान शहरों का निर्माण किया। गणित की पद्‌धतियॉ खोज निकालीं और कलात्मक संस्कृति का विकास किया। यह विश्वास करना कठिन था कि इन जंगलों में रहने वाले आदिवासी इंडियनों ने ही यह सब किया होगा। अतः इसका श्रेय बाहर से आए प्रवासियों को देने की कल्पनाएं सामने आयीं। **लेकिन इस बात का कहीं कोई उल्लेख नहीं पाया जाता कि सोलहवीं सदी तक अमेरिका से किसी का कोई व्यावहारिक संबध रहा हो।**

खुदाई के दौरान इस सभ्यता के मिले अवशेषों से ऐसा लगता है कि उन्हें पूर्ण पंचांग, गणित, मिस्री लेखों पर अंकित हाइरोग्लिफिक लेखन पद्‌धति और कागज का प्रयोग इन बातों का ज्ञान था।

सौर पंचांग की भांति माया सभ्यता के लोग वर्ष में 365 दिन मानते थे। साल के 18 महीने और प्रत्येक महीने में 20 दिन होते थे। शेष पांच दिन दुर्भाग्यपूर्ण काल समझा जाता था। जबकि मिस्री पंचांग में 12 महीने होते थे और प्रत्येक महीना 30 दिन का। शेष पांच

दिनों का उपयोग समारोहों के लिए होता था। माया खगोलशास्त्री 11960 दिनों की अवधि में 40 पूर्णमासियों की गणना करने में सफल हो गए थे। आज 40 पूर्णमासियों की गणना में 11959.888 दिन होते हैं। अर्थात् दोनों गणनाओं में केवल पांच मिनट का अंतर है। माया खगोलशास्त्र की गहराई का पता, खंडहर हो चुकी उनकी वेधशाला 'चिचेन-इतजा' से लगाया जा सकता है। मंदिर की ओर जाने वाली सीढ़ी का हर सोपान, सौर वर्ष के एक दिन का प्रतीक है। इनकी यह सफलता आश्चर्य में डालने वाली है।

वैसे तो शून्य का आविष्कार भारत में हुआ| लेकिन माया सभ्यता के लोगों के पास शून्य के लिए एक प्रतीक था। जब यूनानी और रोमन अंकों और संख्याओं की प्रणाली के विकास के लिए प्रयत्न कर रहे थे तब माया लोगों के पास, उन्होंने विकसित की 'डॉट', 'बार' अथवा 'डॅश' तथा गोलाकार (शून्य) की प्रणाली थी। इन तीन चिन्हों से वे किसी भी संख्या को व्यक्त करने में सफल हो चुके थे।

वे 360 दिन की अवधि को 'टून' कहते थे|

20 टून अर्थात् 67200 दिन -- 1 काटून

20 काटून --- 144000 दिन = एक बाक्टून

1 अलूटून --- 23040000000 दिन

आज इस संख्या को हम 11 से कम इकाइयों में व्यक्त नहीं कर सकते| लेकिन माया गणितज्ञ उसे 9 इकाइयों में व्यक्त कर देते थे। ऐसा कहा जाता है कि वे यूरोप से भी एक हजार वर्ष पूर्व शून्य की धारणा से परिचित थे।

(विश्व इतिहास की झलक 1 : पृष्ठ 264)

<u>धार्मिक विश्वास</u>-

ऊपर हमने माया सभ्यता की वैज्ञानिक कही जा सकने वाली उपलब्धियों को गिनाया है| अब इसके समानान्तर चलते, धार्मिक विश्वासों की ओर मुड़ेंगे।

माया संस्कृति की प्राचीन चित्रलिपि को पढ़ने का प्रयास जारी है। हालतक इसे पढ़ने में बड़ी कठिनाइयॉ थीं। उनकी बची हुई लिखित रचनाओं को ड्रेस्टन, मॉर्ड्रड और पॅरिस की संहिताओं के नामों से जाना जाता है। इसकी विषय वस्तु धार्मिक है। उनमें विभिन्न देवी-देवतओं के नामों का उल्लेख है। उनमें से बहुत से नाम अब ज्ञात हो चुके हैं।

सर्वोच्च देवता : इत्जाम्ना

यह शुरू में एक जनजातीय अथवा नगरीय देवता था। इसे इत्जामल नगर का मिथकीय संस्थापक माना जाता था| आगे वह एक सांस्कृतिक नायक बन गया। उसे लिपि और सभी ज्ञान के सृजन का श्रेय दिया जाता था। उसे आकाश देवता भी कहा जाता था।

अन्य प्रमुख देवता-

'कुकुल्कान', मायापान नगर का संरक्षक देवता था। उसे मायापान राजवंश का मिथकीय संस्थापक माना जाता था और ऐसा समझा जाता था कि कभी, सभी माया नगरों पर उसका अधिकर था। उसके बिंब में अर्धमानव और अर्धसर्प है। इसका मेक्सिकन देवता 'कैत्जालकोआत्ल' से साम्य है। यहां दोनों नामों का अर्थ पंखोंवाला साप है।

हुराकान

इसे वायु का देवता माना जाता था। ऐसा भी समझा जाता था कि इसकी विश्व निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका थी।

वैसे देवताओं में अग्नि, वर्षा और मक्का के देवताओं को भी बहुत महत्व था। अन्य फसलों के अलावा भी इन लोगों का मुख्य खाद्य मक्का था। इसलिए लोग मक्का देवता में भारी विश्वास रखते थे।

ई.800 के करीब हाईरोग्लिफिक चिन्हों में लिखी गयी कृतियों, पत्थर के फलकों, बर्तनों के टुकड़ों, लकड़ी के तख्तों तथा वनस्पति रेशों से बने कागज के दो दुर्लभ पुस्तकों में **अनेक देवताओं का उल्लेख मिलता है।**

मंदिर

मिस्रवासियों की तरह इस सभ्यता के लोगों का भी, जीवन की अमरता में विश्वास था। शायद यही कारण है कि इस सभ्यता में भी पिरामिड जैसे कई मंदिर मिलते हैं| यहां के पिरामिडों में अधिकतम ऊँचाई 230 फीट है। युकातान के नगर धार्मिक केंद्र थे। यहॉ विशाल मंदिर थे। मंदिर सीढ़ीनुमा पिरामिडों के आकार के थे। 60 डिग्री पर झुके, सैंकड़ों फीट ऊँचे पिरामिड बनाए जाते थे।

भवन निर्माण में भी उन्होंने सैंकड़ों गज लम्बे-चौड़े भवन बनाएं। कोपान नामक स्थान में बने, 12 एकड़ में फैले एक दुर्ग में 50 लाख टन भवन सामग्री लगी होने का अनुमान है। माया लोगों के भवनों पर सांप की मुखाकृति वाले देवता बने हैं। माया लोगों के मुखौटे भी इसी तरह की मुखाकृतियों से मिलते-जुलते हैं।

<u>अनुष्ठानों का महत्व-</u>

मंदिरों में पूजा होती थी। देवताओं के सामने नरबलि सहित तरह-तरह की बलियॉ दी जाती थीं, जिसका उद्देश्य देवताओं को प्रसन्न करना था। घार्मिक क्षेत्र में कर्मकांडों का महत्वपूर्ण प्रभाव था। अनेक देवताओं की पूजा की जाती थी।

पुरोहितों का समाज में उच्च स्थान था। हर शहर का एक पुजारी होता था। उस शहर के लोगों का वही नेता होता था, जो युद्ध में भी उनका नेतृत्व करता था। उसे आधा मानव और आधा देवता माना जाता था। मंदिरों के पुजारी गणित तथा खगोल विज्ञान के आधार पर समय और ऋतुओं का हिसाब करने में दक्ष होते थे।

यह बातें अधिकांशतः पुरोहितों और उच्च वर्ग से संबंधित थीं।

माया संस्कृति में आम लोगों के विश्वासः-

वे कृषि उर्वरता तथा वर्षा की प्रेतात्माओं में विश्वास करते थे। इन्हें 'चाकों' कहा जाता था।

<u>ग्वाटेमाला के इंडियनों के विश्वास</u>-

हर मनुष्य का जंगल में रहने वाले किसी जीव की शक्ल में एक रहस्यमय प्रतिरूप होता है। इसे 'नगुआल' कहते थे| धर्म के इस रूप को भी कभी-कभी 'नगुआलवाद' कहा जाता है| यदि यह जीव मरता है तो मनुष्य भी अवश्य मरेगा। वह उत्तरी अमेरिकी इंडियनों के व्यक्तिगत संरक्षक प्रेतात्माओं में विश्वास से साम्य रखता है। इसे टोटेमवाद के अवशेष से अन्य क्या कहा जा सकता है?

सृष्टि रचना विषयक कथा-

यह कथा कुछ जटिल स्वरूप की है| 'पोपोल वूह' नामक पुस्तक में यह पायी जाती है| 17 वीं सदी में इसका स्पेनी अनुवाद किया गया था।

महामाता और महापिता ने पहले पृथ्वी, फिर जीव-जंतु और बाद में मनुष्य बनाया। मनुष्य की रचना पहले मिट्टी से फिर लकड़ी से की गयी थी। मगर ये दोनों रचनाएं व्यर्थ रहीं। तब इसे मकई के दानों से बनाया गया। आरंभ में केवल चार पुरूष और चार औरतों की रचना की गयी थी। इंडियनों में चार को पवित्र संख्या माना जाता है।

'चिलम वलाम' एक अन्य पौराणिक रचना है। इसमें कल्पों ओर प्रलयों की कहानी मिलती है।

<u>सभ्यता का पतन</u>-

इस सभ्यता के पतन का संभावित कारण पड़ोसी कबीलों के आक्रमणों को बताया गया है। ये धनुष्य बाण जैसे अधिक संहारक हत्यारों से लैस थे। लेकिन कम सभ्य थे।

शहर	उध्वस्त/विनष्ट होने का अनुमानित वर्ष
पालेंक	835 ई. स. में।
टिकल	889 ई. स. में।
कोपेन	890 ई. स. में ।
उक्समाल	909 ई. स. में |

ई. 987 में टोल्टेक कबीले ने 'चिचेन इतजा' को जीत लिया लेकिन आगे माया और टोल्टेक सभ्यता का मिश्रित रूप आकार लेता रहा। यह विकास ई.स. 1224 तक चलता रहा। माया संस्कृति के अवशेष यहॉ तक ही मिलते हैं।

इस तरह माया जातियों के राज्यों का पतन स्पेनियों के पदार्पण से पहले ही शुरू हो चुका था। 16 वीं शताब्दी में जब स्पेनी युकातान शहर में पहुॅचे तो उन्हें केवल कुछ आदिवासी वहॉ मिले। स्पेनियों ने धर्मान्धता के कारण माया लोगों की अधिकांश धार्मिक कृतियॉ जला दीं। इस तरह उसपर अन्तिम आघात स्पेनी विजेताओं द्वारा ही किया गया।

<u>मेक्सिकन भूभाग सभ्यताएं</u>

ओल्मेक : तेरहवीं शताब्दी ई.पू. अर्थात् आज से 3200 वर्ष पहले मेक्सिको की खाड़ी में एक आदिकालीन सभ्यता का उद्भव हुआ। बारह सौ वर्षों तक वह फलती-फूलती रही। फिर अचानक रहस्यमय ढंग से इस ओल्मेक सभ्यता का अस्तित्व ही मिट गया। अभी तक .

लेगूना डि लॉस सिरोस ;(Laguna de los corros)

सैन लॉरेंजो;(San Larengo)

ट्रेस जापोटेस;(Tres Zopotes)

ला वेण्टा ;(La Venta)

इन चार जगहों पर इस सभ्यता के प्रमाणित चिन्ह मिले हैं| ऐसा अनुमान है कि ईसा से 800 वर्ष पूर्व से 500 सालों तक 'ला वेण्टा' ओल्मेक सभ्यता का सबसे बड़ा धार्मिक केन्द्र रहा होगा| यहां के अवशेषों में नक्काशीदार चट्टानें, अलंकृत वेदियॉ तथा बेसॉल्ट के विशालकाय चेहरे मिले हैं। इन चेहरों की आकृतियॉ कुछ अचंभे में डालने वाली हैं। मानव विज्ञानी इन चेहरों को किसी भी ज्ञात नस्ल से जोड़ने में सफल नहीं हुए हैं। ओल्मेक मूर्तियॉ आधिकांशतः 'जेगुआर' देवता की मुखाकृति से समानता रखती है। इन खंडहरों में बेसॉल्ट की एक वेदी मिली है। इसमें मुकुट पहने हुए व्यक्ति की मूर्ति बनी है। यह अपने हाथ में पकड़ी हुई रस्सी से एक कैदी की कलाई बांधे हुए है। उस व्यक्ति को संभवतः वह बलि के लिए ले जा रहा है। अर्थात् इस सभ्यता में भी नरबलि की प्रथा थी।

<u>तियुतीहुआकान</u>

1400 साल पहले मेक्सिकन भूभाग पर एक ऐसी सभ्यता विद्यमान थी जिसने 150000लोगों को व्यवस्थित रूप से बसा सकनेवाले शानदार महानगर 'तियुतीहुआकान' की स्थापना कर ली थी। पांचवीं ई. में यह नगर आठ वर्गमील में फैला था। इसे अमेरिकी विद्वान ने 'थेल्मासुलीवान' : देवताओं का शहर नाम दिया। इस शहर का 90 प्रतिशत भाग अभी भी जमीन के नीचे है। सर्वप्रथम 1880 में डियाजर चार्ने नामक फ्रांसीसी ने इस शहर का एक हिस्सा खोद निकाला । संपूर्ण नगर एक दूसरे को समकोण पर काटनेवाली दो चौड़ी सड़कों के आसपास खड़ा किया गया था। इन रास्तों को मृतकों का रास्ता' नाम दिया गया। इसका कारण यह है कि लोगों ने इन मार्गों के आसपास के पिरॅमिडों की आकृति के प्लेटफार्मों को मकबरे समझ लिया। बाद में ऐसा पता चला कि वे मंदिरों के आधार थे|

<u>शहर का स्थापत्य-</u>

<u>सूर्य का पिरामिड</u>-

यह प्रथम शताब्दी में बना होगा ऐसा अनुमान है| 50000 श्रमिक वर्ष तथा 10 लाख घन गज साजसामान के अनुमान से इसकी विशालता का अंदाजा लगाया जा सकता है।

<u>चंद्रमा का पिरामिड</u>-

यह सूर्य के पिरामिड का ही छोटा रूप था।

पंखदार सर्प देवता का मंदिर, क्वेट्जेट्कोट्ल|

सर्प देवता, सृष्टि रचना, आत्मा तथा पदार्थ का भी प्रतिनिधित्व करते हुए दिखता है। मानव मन की द्वैत प्रवृत्तियों को दिखाने की भी रचनाकारों की मंशा हो, ऐसा लगता है| वैसे

पुरे नगर के स्थापत्य में यह भावना व्यक्त होती हुई दिखती है कि स्वर्ग और पृथ्वी के बीच संपर्क सूत्र सर्प देवता है।

उन्होंने अपने शवों के साथ जो मुखौटे गाड़े थे, वे शिल्पकारिता की दृष्टि से बेजोड़ है। मिस्र जैसी विकसित सभ्यता भी इससे बेहतरीन मुखौटे बनाने में सफल नहीं हुई।

यहॉ भी मानव बलि की प्रथा थी।

इस शहर के उत्कर्ष का काल ओल्मेक सभ्यता के बाद का है। इस पर विद्वानों की सहमति है कि शहर का घ्वंस सातवीं शताब्दी में हुआ। एक शताब्दी तक हुई खोजों के बाद भी यह निश्चित नहीं हो सका कि इस शहर की स्थापना करने वाले लोग निश्चित किस सभ्यता से संबंधित थे और यह सभ्यता अचानक नष्ट क्यों हो गयी?

अझटेक सभ्यता

मेक्सिकन लोगों के समाज का आधार कृषि मूलक था। अजटेक विजेताओं ने जो सभ्यता विकसित की उसमें गोत्र समुदाय का स्वरूप वैसा ही बना रहा। अजटेकपूर्व के पुएब्लो इंण्डियनों और अन्य पड़ोसियों के विश्वास और अनुष्ठान वैसे ही बने रहे। उदाहरण-

कृषि के संरक्षक देवताओं की पूजा|

वर्षा करवाने जादुई अनुष्ठान|

मकई को देवतुल्य समझना।

लेकिन समाज में भेद काफी बढ़ गए थे। समाज कुलिनों, सैनिकों, दासों और अधीन जनजातियों में विभक्त हो चुका था।

पुरोहितों का अपना विशिष्ट तबका बन गया था| कुछ मंदिरों के अन्तर्गत पुरोहितों के निगम भी थे। उनके पास भरपूर भूसंपति थी और समाज पर उनका बड़ा प्रभाव था। वे कालगणना और चित्रलिपि के जानकार भी होते थे। वे कुलीन युवाओं, भावी पुरोहितों के विशेष विद्यालयों में पढ़ाते भी थे। वे स्वयं कठोर प्रतिबंधों में बंधे होते थे। आगे पुरोहित वर्ग क्रमशः व्यावहारिक जीवन और भौतिक उत्पादन से कटता गया और चिंतनात्मक कार्यकलाप में व्यस्त होता गया । **कम विकसित जनजातियों के विश्वासों को या धर्म के अत्यंत पुरातन रूपों को धर्म के जटिल रूपों में प्रवर्तित किया गया। चिंतन जटिल धार्मिक, पौराणिक, दार्शनिक प्रणालियों की ओर अग्रेसर हुआ।**

अर्थात् इसमें समाज के बलशाली तबकों के हितसंवर्धन का असर स्पष्ट है-

इस समाज की विशेषताएं थीं-.

1) मौलिक नगर संस्कृति

2) आरंभिक वर्ग व्यवस्था

3) आरंभिक राज्य व्यवस्था

इसमें सरदारों में देवत्वारोपण की प्रवृत्ति भी दिखायी देती है।

<u>अनुष्ठान और मंदिर</u>-

पूजाएं और अनुष्ठान मंदिरों में किए जाते थे। मंदिरों का स्वरूप सीढ़ीदार पिरामिडों जैसा था। इसके शिखर पर एक खुला चबूतरा होता था।

<u>देवमंडल</u>

बड़ा और कुछ जटिल है।

अनेक देवता प्राकृतिक शक्तियों के प्रतीक हैं| विभिन्न व्यवसायों के संरक्षक देवता भी वहॉ थे। महत्वूर्ण देवता मात्र कृषि से सबंधित थे।

वर्षा करने वाला देवता त्लालोक था।

अनाज की मुख्य फसल मकई का देवता था सिंतेओत्ल।

उर्वरता और शिशुजन्म की देवी तानान्त्सिन थी।

इसे ही आगे चलकर स्पेनी मिशनरियों ने माता मरियम से जोड़ने की कोशिश की।

लेकिन सबसे महत्वपूर्ण देवता तीन थे-

<u>केत्जालकोआत्ल (हरे पंख वाला सर्प)</u>

कुछ हद तक यह पुएब्लो और अन्य उत्तरी अमेरिकी इंडियनों की आज तक प्रचलित सर्पपूजा से संबंधित प्राचीन देवता था। या उसे टोटमी लक्षणों से युक्त सांस्कृतिक नायक कह सकते हैं| आगे चलकर इसका मानवीकरण हो गया। अब यह लम्बी दाढ़ीवाला श्वेत बुढ़ा हो गया। यह देवता अजटेकों ने अपने पूर्ववर्ती ताल्तेकों से लिया। इसका सबसे बड़ा मंदिर 'चोलूला' में था ओर वहीं इसकी पूजा का मुख्य केन्द्र था। यह मेक्सिकन संस्कृति का एक प्राचीनतम केंद्र भी था।

<u>तेज्कात्लीपोका (धूमयुक्त दर्पण)</u>

यह सूर्य के नाशक तथा दाहक रूप का प्रतिनिधित्व करने वाला देवता था। इसका प्रतीक सूर्यगोल को दर्शानेवाली दर्पणनुमा ढाल थी। इसका स्वरूप अत्यंत निर्मम तथा मनहूस है। यह बिना बलि के प्रसन्न नहीं होता था। नरबलि भी दी जाती थी। आरम्भ में यह शायद तेज्कोको लोगों का जनजातीय देवता था। यह तीन प्रमुख अजटेक जनजातियों में एक जाति थी। अजटेकों में धूमधाम से संपन्न किया जाने वाला बसंत कालीन पर्व इसी देवता के सम्मान में किया जाता था। इसमें नरबलि दी जाती थी। **बलि के लिए सबसे सुंदर और पूर्णतः शारीरिक दोषों से रहित बंदी का चयन किया जाता** था। ऐसा माना जाता था कि वह साक्षात तेज्कात्लिपोका ही है। पूरे एक वर्ष तक उसे ऐश्वर्य विलास के बीच पूर्ण सम्मान के साथ कड़े पहरे में रखा जाता था। अनुष्ठान से पूर्व 20 दिन, चार सुंदरतम युवतियों को भी देवियॉ माना जाता था और जो पत्नियों, सेविकाओं की तरह उसे भेंट की जाती थीं| पर्व के दिन पुरोहित उसे तेओकाली के शिखर पर ले जाते थे। **उसे पत्थर की बलिवेदी पर चेहरा ऊपर करके लिटा दिया जाता था। फिर सर्वोच्च पुरोहित पत्थर की चाकू से उसका वक्ष चिरकर हृद्य बाहर निकालता था तथा सूर्य देवता को अर्पित करता था।**

<u>उइजिलोपोवत्ली</u>

यह एक बहुत पुराना देवता था। इसका संबंध टोटमी मर्मर पक्षी;(Humming Bird) से जोड़ा जा सकता है। लेकिन इस एकदम गरीब पक्षी के विरोधी स्वरूप वाला ये देवता अत्यंत क्रूर, रक्तपिपासु तथा बलि चाहने वाला था। शुरू में यह तेनोच्को जनजाति का देवता था। लेकिन जब यह जनजाति अजटेक राज्य में प्रमुख बन गयी तो यह देवता सर्वोच्च और युद्ध का देवता बन गया। नरबलि के लिये या तो युद्धबंदी या फिर कुलीन परिवारों से युवक चुने जाते थे। **अजटेक सभ्यता में हर साल धर्म के नाम पर हजारों आदमी बड़े भयानक तरीके से बलिदान कर दिए जाते थे। समय.- समय पर बलि के लिए बड़े पैमाने पर कैदी उपलब्ध हो इसलिए प्रायः पड़ोसी राज्यों के साथ युद्ध शुरू करने के लिए करार किया जाता था। धार्मिक कारणों से आपस में लड़ने के लिए करार किए जाने का यह मानव जाति के इतिहास में शायद एकमात्र उदाहरण है। युद्धबंदियों को देवताओं के सामने बलि चढ़ाने की प्रथा उसका प्रमाण है कि मेक्सिको में वर्ग संबंध अभी पूरी तरह विकसित नहीं थे। अन्यथा युद्धबंदियों को मारा नहीं जाता। बल्कि जबरन उनसे काम लिया जाता।**

इस देवता और इसकी पूजा का कृषि से संबंध है। इसका वर्ष में दो बार उत्सव मनाया जाता था। उस समय शहद में गूंधे आटे से देवता की विशाल प्रतिमा बनायी जाती थी और अनुष्ठानों के बाद उसे टुकड़ों में बांट कर खा लिया जाता था। यह देवभक्षण का

सोपस्कार वास्तव में कृषि से संबंधित अनुष्ठान है जो कई प्राचीन जातियों में मिलता है। ईसाइयों का प्रभुभोज इसी का अवशेष है।

<u>विश्वोत्पत्ति विषयक मिथक</u>

ब्रह्माण्ड की रचना लोक नहुआ' नामक देवता ने की। लेकिन इस देवता का बिंब अमूर्त है। उसकी पूजा भी नहीं की जाती थी। मिथक के अनुसार अब तक चार कल्प बीत चुके हैं| प्रत्येक कल्प का अन्त महाविनाश, विश्वव्यापी अग्निकाण्ड, जलप्रलय आदि के रूप में हुआ है। आगे भी यही होगा।

<u>सभ्यता का पतन</u>

भौतिक उत्पादन के विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियों में कृत्रिम सिंचाई पर आधारित कृषि व्यवस्था, अलौह घातुओं से संबंधित व्यवसाय तथा अन्य व्यावसायिक शिल्प के उन्नति पर आधारित इस सभ्यता का 1519 ई0 में स्पेन निवासी हर्नेन कोर्टेर् ने मुठ्ठीभर सिपाहियों के मदत से नाश कर डाला। जनता के शोषण पर आधारित यह व्यवस्था अन्दर से कितनी सड़ चुकी होगी? 1500 वर्षों तक मौजूद इस पूरे हिस्से की सभ्यता यूरोप की नई जाति के संपर्क में आते ही अजटेक राज्य के पतन के साथ एकाएक भरभराकर धराशायी हो गयी। उनका सारा साहित्य नष्ट कर डाला गया। बची केवल इनी-गिनी किताबें जिन्हें आज तक पूरी तरह पढ़ा नहीं जा सका और साथ में पुरातात्विक अवशेष।

<u>सभ्यता का तीसरा केंद्र</u>

<u>कोलंबिया : चिब्जा सभ्यता</u>

कोलंबिया की राजधानी बोगोटा तथा उसके पश्चिम में मग्दालेना नदी से लगे इलाके में यह सभ्यता थी। यह चिब्जा मुइस्का| जनजातियों का इलाका था।

यहॉ के धार्मिक केंद्र तथा मंदिरों का नियंत्रण आनुवांशिक पुरोहित समुदाय के हाथों में था।

धार्मिक अनुष्ठानों का केंद्र भी बोगोटा के समीप स्थित 'ग्वाटाबिंटा' नामक पवित्र झील थी| देवतुल्य मानकर इसकी पूजा की जाती थी। सोना तथा मूल्यवान मणियॉ, चढ़ावे के रूप में झील को अर्पित की जाती थीं। मनुष्य बलि भी दी जाती थी।

चिंब्चाओं के धर्म में युद्ध के देवता की पूजा तथा इससे संबंधित अनुष्ठान महत्वपूर्ण थे। वीर और शक्तिशाली योद्धाओं को पवित्र समझा जाता था। मृत्यु के बाद उनके शवों को ममी बना दिया जाता था। युद्ध के समय इन ममियों को युद्ध स्थल पर ले जाते थे और

ऐसा माना जाता था कि वे वहॉ अपने पक्ष की ओर से लड़ना जारी रखेंगे और युद्धरत योद्धाओं को प्रोत्साहित करेंगे।

बोचिका नामक एक सांस्कृतिक नायक काफी महत्वपूर्ण था। उसकी मेक्सिको के केत्जालकोआत्ले से समानता है। इसका रूप भी लम्बी श्वेत दाढ़ीवाले बूढ़े का था। चिब्बा मिथक के अनुसार बोचिका सूर्यदेवता है और चंद्रमा उसकी पत्नी है। ऐसा समझा जाता था कि कला और शिल्प उसी ने लोगों को सिखाएं।

पेरू : इन्का सभ्यता

इन्का शासन स्थापन होने के पहले भी यहॉ एक उन्नत संस्कृति थी। मगर इन्काओं ने एक सुदृढ़ राज्य प्रणाली का निर्माण किया। इस राज्य में विभिन्न जनजातियॉ भी थीं और विकास के विभिन्न स्तरों पर स्थित लोग भी थे। इस कारण पुराने विश्वास भी थे और नए भी।

यह एक अजीब बात है कि पेरू की सभ्यताएं कम से कम अपनी उन्नत अवस्था में मेक्सिको की सभ्यता से टूटकर बिल्कुल अलग हो गयी थी। वास्तव में दोनों सभ्यताएं एक दूसरे से अधिक दूर नहीं थीं। फिर भी वे एक दूसरे के बारे में कुछ नहीं जानती थीं|@ 1532 **ई. में स्पेनी आक्रमणकारी वहॉ पहुँचे तो इन्का साम्राज्य लगभग 4000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में यानि उत्तर में आधुनिक कोलंबिया तक, दक्षिण में चिली के आधे हिस्से तक, पूर्व में बोलीविया और उत्तरी अर्जेन्टिना की सीमा तक फैला हुआ था| लेकिन अजटेक सभ्यता के पतन के बाद एक अन्य स्पेनवासी पिजारो ने केवल 170 साहसी स्पेनवासियों को साथ लेकर 1532 ई. में इन्का साम्राज्य को भी उखाड़ फेंका।**
(;विश्व इतिहास की झलक.1 पृष्ठ २६६.२६७)

कहा जाता है कि पेरू के सुनारों का काम बड़े ही उच्च दर्जे का होता था। शिल्प के कुछ चिन्ह मिले हैं। इनमें पत्थरों पर सांपों की बनावट खास तौर पर सुंदर है। कुछ मूर्तियॉ वीभत्सता प्रकट करने के लिए बनायी गयी थीं और सचमुच डरावनी हैं।

इन्का राजव्यवस्था

थी। लेकिन **यह एक लोक कल्याणकारी राज्य जैसी व्यवस्था थी, एक कुशल और अनुशासित व्यवस्था । यहॉ प्रत्येक नागरिक काम करता था तथा समाज संयोजन में अपना योगदान देता था। बदले में राज्य उसके कल्याण के लिए उत्तरदायी था। किसी भी व्यक्ति को भोजन, वस्त्र और आवास के अभाव से जूझना नहीं पड़ता था। यह बात असंभव लगती है लेकिन यही वास्तविकता है कि इन्का जाति यह सारी व्यवस्था बिना कोई सुव्यस्थित ढंग से विकसित लिपि और अंकज्ञान के कर लेती थी| लेकिन व्यक्ति की स्वतंत्रता असीमित नहीं**

थी। झूठ बोलने, व्यभिचार आदि के लिए मृत्युदंड की व्यवस्था थी। राजाज्ञा से बहुत आकर्षक और सुंदर कन्याओं को सूर्य देवता की कुंआरी दासियां बनकर विरक्त जीवन व्यतीत करना पड़ता था। ये कुऑरियॉ इन्का धार्मिक परंपराओं का प्रमुख अंग होती थीं।

<u>टोटेमवाद के अवशेष</u>-

पशु, वृक्ष, पत्थर आदि के रूप में हर इलाके का अपना देवता था। लोक विश्वासों के अनुसार जिन स्थानों पर जनजाति के पूर्वज, पृथ्वी के अन्दर से निकले थे, उन स्थानों को पवित्र समझा जाता था।

<u>प्रेतात्माओं की पूजा</u>

पूर्वजों के प्रेतात्माओं की भी पूजा होती थी।

<u>जादू-टोना</u>

यहॉ ओझा और जादू-टोना करने वाले भी होते थे।

<u>पुरोहित</u>

धर्म का नियंत्रण पुरोहितों के हाथ में था। स्त्रियॉ भी पुरोहित थीं।

<u>राजधर्म</u>

इन्का राजवंश के संस्थापक "मान्को कपाक" को अर्धदेव समझा जाता था। एक मिथक के अनुसार सूर्य का वंशज अपने तीन भाइयों और चार बहनों के साथ पृथ्वी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। राजकीय धर्म में सर्वोच्च स्थान सूर्य को था। यह इन्काओं का इष्टदेव था। राजधानी 'कुस्को' में स्थित सूर्यमंदिर, राज्य का मुख्य देवालय था। सूर्य देवता को मानव चेहरा ओर किरणों से युक्त एक विशाल स्वर्णिम वृत्त के रूप में चित्रित किया जाता था। राज्य का प्रमुख, सूर्य का पुत्र और सूर्य का सर्वोच्च पुजारी समझा जाता था। **लेकिन अंतिम इन्का शासक के विषय में कहा जाता है कि उसे सूर्य के देवत्व में विश्वास नहीं था। उसका कहना था- यदि सूर्य सर्वोच्च देवता है, तो उसे एक ही मार्ग से प्रतिदिन चलने के लिए विवश कौन कर सकता है? और अगर वह किसी नियम से बंधा है तो क्या वह भी किसी के अधीन नहीं? यानि देवपूजा के प्रति आलोचनात्मक और तर्काधिष्ठित रवैया उत्पन्न हो गया था।**

इन्काओं ने सूर्य को प्राचीन देवताओं से जोड़ने का भी प्रयत्न किया। इन्हें भिन्न-भिन्न नामों पुकारा जाता था।

विराकोचा : यह सबसे अधिक प्रचलित नाम पाया जाता है। संभवतः शुरू में यह कोई सांस्कृतिक नायक था। जनाख्यानों में वह एक प्राचीन सरदार ही है। उसे मानवाकृति के रूप में ही दिखाया जाता था। उसकी पूजा का मुख्य केंद्र 'तिआहुआनाको' (इसका उल्लेख पहले हो चुका है।) नाम का स्थान था जो 'तितिकाका' नाम की झील के पास था। यह इन्कापूर्व संस्कृति का भी एक मुख्य केंद्र था।

पचाकामांक और पचाममा :- यह पति-पत्नी युग्म के रूप में सुफला पृथ्वी के प्रतीक थे। उन्हें तड़ित, वर्षा और समुद्र के देवता के रूप में या प्राकृतिक शक्तियों, घटनाओं और वस्तुओं के प्रतीक के रूप में माना जाता था।

<u>नरबलि</u>

पेरू में देवपूजा के दौरान नरबलियॉ दी जाती थीं। अजटेकों की तुलना में इसका प्रमाण यहॉ कम था। नए राजा के राज्याभिषेक के अवसर पर या सैनिक अभियान शुरू करते समय नरबलि दी जाती थी। नरबलि के लिए या तो युद्धबंदी या फिर अन्य जनजातियों के लोगों का उपयोग किया जाता था।

<u>पेरू का एक और समाज</u>

उत्तर पेरू में विकसित एक और समाज को 'मोके' सभ्यता के तौर पर मान्यता देने की ओर विद्वानों का रूझान है। यह संस्कृति ई.पू. 100 वर्ष से ई. 700 तक विकसित होती रही, ऐसा अनुमान है । मोके लोगों ने बड़े मंदिर, महल तथा पिरॅमिड्स बनवाएं| ये उन्हांने धूप में सुखाई गई आयताकार ईटों से बनवाएं। इनमें आज ज्ञात और सबसे प्रसिद्ध पिरॅमिड है 'सूर्य का मंदिर'(Huaca del Sol) जो पांच हेक्टर में फैला है और इसमें लगभग 13 करोड़ इटें लगीं होनी चाहिए। 'पाम्पा ग्रांडे' के पास बने इस पिरामिड को बनाने में 10000 मजदूरों ने हिस्सा लिया होगा। इस सभ्यता की पुरातात्विक खोज का श्रेय वॉल्टर अल्वा को है।(Reader Digest :April 1994)

<u>नाज्का सभ्यता</u>

दक्षिणी पेरू के प्रशांत सागरीय तट से लेकर एण्डियन पर्वतमालाओं की तलहटी के बीच फैला है नाज्का क्षेत्र। ऐसा कहा जाता है कि इन मैदानों में पिछले 10000 वर्षों में एक बार भी वर्षा नहीं हुई। इस कारण यहॉ मिट्टी का क्षरण लगभग हुआ ही नहीं। लेकिन यहॉ की शुष्कता से निपटने के लिए नाज्काओं ने एक ऐसी सिंचाई व्यवस्था निर्माण की थी जिसके कारण वे वर्ष में तीन फसलें उगा लेते थे, ऐसा अनुमान है। 1939 में एक इतिहासकार ने प्राचीन सिंचाई के लिए उपयोग में लायी जाने वाली खाइयों का मानचित्र बनाते समय पहली बार एक विशाल पक्षी की आकृति खोज निकाली। **उसके बाद कई पशु**,

पक्षी, किडों की आकृतियॉ और विशाल ज्यामितीय ढांचे खोज निकाले गएं। इन्हें विश्व की अत्यधिक जटिल पुरातत्व खोजें माना जाता है। घरातल पर बनी ये आकृतियॉ इतनी बड़ी थीं कि पहचानी नहीं जाती थीं। इन आकृतियों को एक दृष्टिक्षेप में देखने के लिए कम से कम 1000 फुट ऊॅचाई तक जाना पड़ता है। इसी कारण पहले वे ज्ञात नहीं थीं। यहां के न्यूनतम मिट्टी क्षरण के कारण नाज्का लोगों द्वारा बनायी गयीं ये 1500 वर्ष पूर्व की आकृतियॉ सुरक्षित रहीं। 1941 के बाद आइलैण्ड विश्वविद्यालय के अमेरिकी प्रोफेसर डॉ पाल कोसोक ने पहली बार इन रेखाओं का अध्ययन किया। जर्मन गणितज्ञ और खगोलशास्त्री श्रीमती मारिया रीशे ने तो अपने जीवन के 30 से अधिक वर्ष इनके अध्ययन में बीता दिए। उन्होंने इन रेखाओ में सैंकड़ों तिकोने और चतुष्कोणिक आकार, सीधी रेखाओं के जाल, तारों की आकृतियॉ तथा 100 दैत्याकार पशु-पक्षियों के व वनस्पतियों के रेखाचित्र खोज निकाले हैं।

ये रेखाएं 200 वर्गमील के विशाल क्षेत्र में फैली हैं। ये सूखी नदियों से घिरे क्षेत्रों तथा विस्तृत समतल इलाके में फेली हैं । इन रेखाओं के निर्माण में सैंकड़ों टन कंकड़ों का प्रयोग हुआ होगा| शायद शुरू में छह वर्गफीट के छोटे-छोटे नमूने के चित्र बनाए गए, जो आज भी दैत्याकार चित्रों के करीब मिलते हैं। मारिया रीषे के अनुमानानुसार प्रत्येक बड़े चित्र के लिए निर्धारित क्षेत्र को कई हिस्सों में बांटा गया होगा तथा उसके बाद डोरियो की मदद से सीधी रेखाएं बनाई गई होंगीं। वे स्तंभ आज भी मिलते हैं जिनसे ये डोरियॉ बांधी गयी होंगीं। स्तंभों का समय ई. 500 आंका गया है।

पड़ोस के नेक्रोपोलिस नामक स्थान पर 400 नाज्का ममियॉ मिली हैं| ये संभवतः नाज्का शासक परिवार के सदस्यों की हैं| इन ममियों को बहुत लम्बे अच्छे किस्म के कपड़े में लपेट कर रखा गया था। इन कपड़ों पर बहुरंगी ऊन से कढ़ाई की गयी है। कढ़ाई के डिजाइनों में विचित्र मुखौटाधारी लोगों को हवा में उड़ते हुए दिखाया गया है। इनके शरीर से फीते लटक रहे हैं। क्या इन लोगों ने ऐसी पतंगों का निर्माण कर लिया था, जो मनुष्यों को अपने साथ उड़ा सकती थीं। या फिर किसी अन्य ढंग के आदिम गुब्बारे को बना लिया था। बर्तन के एक टुकड़े पर बने एक चित्र के आधार पर ज्यूलियन नॉट तथा जिम बुडमैन का दावा है कि नाज्का लोगों के पास कोई न कोई हल्का उड़न यंत्र अवश्य रहा होगा अन्यथा वे बिना ऊपर से देखे इन चित्रों को नहीं बना सकते थे।

ये रेखाएं और आकृतियॉ हमें क्या बताती हैं यह एक रहस्य ही बना हुआ है। पैरू के पुरातत्वशास्त्र के विद्वानों के अनुसार नाज्का रेखाओं का उद्देश्य खगोलीय कलैण्डर का निर्माण करना था। आज भी एण्डीज पर्वतमाला के कई किसान सितारों को देखकर वर्षा के समय का पता लगा लेते हैं। इन आकृतियों का संबंध तारामंडलों की, पशुओं के रूप में

कल्पना कर लेने से हो सकता है। कुछ भिन्न-भिन्न विद्वान इन्हें या तो खगोलीय प्रेक्षण के प्रतीक या सभा स्थल या फिर देवताओं को दी जाने वाली आहुतियों के स्थान मानते हैं।

लेकिन यह भी विचार है कि ये आकृतियॉ और कुछ नहीं वरन् प्राचीन कर्मकांड के प्रतीक हैं।

पेरू सरकार ने इन रेखाओं को देखने के लिए आने वाले पर्यटकों के पैरों और वाहनों से इन्हें बचाने के लिए कुछ प्रतिबंध लगाए हैं।

प्रकरण.दस

ईस्टर द्वीप

प्रशांत महासागर में एक द्वीप है। इसे ईस्टर द्वीप के नाम से जाना जाता है। 19 वीं शताब्दी में यूरोपियनों ने यहॉ आकर यहॉ के पिछड़े निवासियों को गुलाम बनाना और उन्हें दुनिया के अन्य हिस्सों में भेजना शुरू किया। सन् 1877 में तो यह स्थिति आ गयी कि द्वीप पर केवल 111 मूल निवासी बच गए। भयानक गरीबी में रहने वाले इन निवासियों के उद्धार के लिए चिलीवासी तथा ईसाई मिशनरी यहॉ पहुॅचे। तभी से ये द्वीप चिली के प्रभुत्व में है। सन् 1722 में ईस्टर रविवार के दिन हॉलैंडवासी अन्वेषक जैकब रॉगीवीन ने इस द्वीप पर अपने कदम रखे थे। इसी कारण इसका नामकरण ईस्टर द्वीप के तौर पर किया गया। इसका क्षेत्रफल 45 वर्गमील है।

18 वीं सदी में इस द्वीप पर पहुॅचे अन्वेषकों को वहॉ 3-4 हजार आबादी मिली। इनमें नरमांस भक्षण सामान्य बात थी।

इस द्वीप पर 12 से 15 फीट तक ऊँचे तथा 20-20 टन वजन के ज्वालामुखी पत्थरों को तराश कर बनाएं गये विशालकाय चेहरे हैं। इन चेहरों को मोआई (Moi) कहा जाता है। 1000 के ऊपर ऐसे चेहरे खोजे जा चुके हैं। वे कभी वहॉ की वेदियों पर स्थापित थे। वेदियों को वहॉ की भाषा में आहू (Ahu) कहते हैं। सबसे बड़ा चेहरा 32 फुट लम्बा और 90 टन भारी है।

इससे भी दुगुने बड़े पत्थर के अधबने अनेक चेहरे वहॉ पड़े हैं। लेकिन अठाहरवीं शताब्दी में वहॉ पहुंचे अन्वेषकों ने अनुमान लगाया कि यहॉ लगातार एक दूसरे से लड़ते रहने वाले कबीलों के लोगों ने इन्हें शायद अपनी वेदियों से नीचे गिरा दिया होगा। बाद में अन्वेषकों के प्रयत्न से फिर कुछ चेहरों को खड़ा किया जा सका। द्वीप के दक्षिणी भाग में रानो राराकू' नामक ज्वालामुखी की ढलान पर लगभग 300 ऐसी दैत्याकार मूर्तियॉ पड़ी हुई हैं। जो अधूरी कही जा सकती हैं। इन्हीं के पास औजार और इन्हें बनाने की खोदनियॉ भी मिली हैं| इससे लगता है कि इन्हें बनानेवाले शिल्पकारों को जल्दी में अपना काम छोड़कर भागना पड़ा होगा। **इनमें 100 के लगभग चेहरे पूरी तरह बने हुए हैं| केवल उनकी आंखें नहीं बन पायी हैं| इस कारण उन्हें अंधा मोआई कहा गया है।** चेहरे की ऑख तब बनायी जाती थीं जब उन्हें वेदियों पर खड़ा किया जाता था। द्वीप पर पुजारी का घर, रिहायशी गुफाएं भी मिली हैं।

अब यह मान लिया गया है कि 690 ई. में पश्चिम से समुद्री यात्रा करके आए यात्री ही इस द्वीप के पहले वासी होंगे| आधुनिक विद्वानों का निष्कर्ष यह है कि इन दैत्याकार

मूर्तियों के निर्माता पोलीनेसियन लोग थे। अब इस बात के प्रमाण मिल रहे हैं कि मुख्यतः 1110-1205 ईस्वी के बीच और अंशतः 1650 ईस्वी तक भी इन चेहरों का और वेदियों का निर्माण होता रहा है। उस समय द्वीप पर हानाऊ ईपे के नेतृत्व वाले गुट का राज्य था।

लेकिन प्रश्न यह है कि द्वीपवासियों को इतनी बडी-बड़ी और इतनी संख्या में मूर्तियों की क्या आवश्यकता थी? ये चेहरे किस चीज के प्रतीक हैं? इनको बनाने का उद्देश्य क्या था? इनकी विशालता के पीछे क्या रहस्य है? इतने बड़े-बड़े पत्थर कैसे सरकाए और खड़े किए होंगे? उसके लिए लकड़ियॉ कहॉ से आती होंगी? आजकल इस द्वीप पर वृक्षों की बहुलता नहीं है। सारे कार्य की विशालता से अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय इस द्वीप की आबादी कम से कम 20000 अवश्य रही होगी। कोई संस्कृति किसी पूर्व संस्कृति के आधार के सिवाय विकसित नहीं हो सकती| तो प्रशांत महासागर के इस एकांत द्वीप पर यह कैसे हुआ और वह संस्कृति अंततः नष्ट कैसे हुई? देखें पुरातत्ववेत्ताओं के प्रयत्नों से इन रहस्यों से परदा कब उठता है।

प्रकरण - ग्यारह

दक्षिण पूर्वी एशिया

दक्षिण पूर्वी एशिया में सुसंगठित ग्राम समुदाय ही बने रहे। वहॉ उन्नत दास-स्वामी या गुलामी पर आधारित सभ्यताएं विकसित नहीं हुई। दूसरी-तीसरी सदी ई. में भारत को सुदूर पूर्वी देशों तथा मसालों के टापुओं से जोड़ने वाले व्यापार मार्गों के सबसे महत्वपूर्ण स्थलों के आसपास दक्षिण पूर्वी एशिया के राज्य केंद्रित थे। इनमें से हर राज्य व्यापार मार्ग पर स्थित या उस भाग में बहने वाली नदी के डेल्टा में स्थित किसी बड़े नगर के चारों ओर फैला हुआ था। यहॉ कृषि काफी विकसित थी। मोनी, बर्मी, ख्मेर, विएतनामी, इंडोनेशियाई समाजों के भारत और विशेषकर दक्षिण भारत के साथ सांस्कृतिक संबंध विकसित हुए। उन्होंने यहॉ के सामाजिक संगठन के रूपों और धर्म के रूपों को अपनाया। उस समय बौद्ध धर्म काफी प्रभावशाली था और यहॉ दूसरा धर्म था हिन्दू। चीनी संस्कृति का भी प्रभाव मलेशिया तक हुआ लेकिन काफी कम अनुपात में। हिन्दुस्तानी संस्कृति मलेशिया और कम्बोडिया तक फैल गयी।

इन राज्यों में सुमात्रा का श्रीविजय साम्राज्य था (सातवीं से चौदहवीं सदी) । यह एक बौद्ध साम्राज्य था। पूर्वी जावा में एक स्वतंत्र हिन्दू राज्य था। बाद में इसने श्रीविजय साम्राज्य को जीत लिया था। मध्य विएतनाम का चंपा राज्य था (दूसरी से पंद्रहवी शताब्दी) सबसे बड़ा दक्षिण ख्मेरों का फुफान साम्राज्य था (दूसरी से छठीं सदी)| विशाल अंगकोर कंबोडिया की राजधानी थी। यह राज्य अपने वैभव और शक्ति के लिए काफी प्रसिद्ध था। समुद्री व्यापार धीरे-धीरे अरबों के प्रभुत्व में आता गया। यहॉ कृषि उन्नति करती गयी। व्यापारी साम्राज्य की शक्ति क्षीण होती गयी ओर वहॉ के समाज में जमींदारों की भूमिका महत्वपूर्ण बनती गयी। आज विद्यमान राज्यों और जातियों ने रूप लेना शुरू किया। नवीं शताब्दी में कंपूचिया, दसवीं शताब्दी में विएतनाम में, ग्यारहवीं शताब्दी में इंडोनेशिया में तथा बर्मा में और तेरहवीं सदी में स्याम में उन्नत सामन्ती राज्य स्थापित हुए। इनमें अर्थ-तंत्र, जमीन के लगान और किसानों द्वारा अनिवार्य, सामुदायिक श्रम सेवा पर आधारित था। सातवीं से बारहवीं सदी का काल सांस्कृतिक उन्नति का काल था। इसके दौरान इंडोनेशिया में बोरोबुदूर स्तूप, कंपूचिया में अंकोरवाट के मंदिरों और बर्मा में पगान के मंदिरों जैसे वास्तुकला की उत्कृष्ट इमारतों का निर्माण हुआ।

अंकोरवाट (Angkor)

सन 1860 में फ्रांसीसी प्रकृति विज्ञानी हेनरी मौहोत ने पहली बार कम्बोडिया के मध्यवर्ती मैदानों के घने जंगलों में छिपे अंगकोर सभ्यता के खंडहरों को खोज निकाला। 1866 में हिन्द चीन क्षेत्र फ्रांसीसियों के प्रभाव में (औपनिवेश दृष्टि से) जाने के बाद उन्होंने

अंकोरवाट के खंडहरों का व्यवस्थित अध्ययन शुरू किया। खंडहर 400 सालों तक जंगलों में दबे हुए थे। इनका इतिहास अब अच्छी तरह ज्ञात हो चुका है। अंकोर का निर्माण ख्मेर जाति द्वारा 500 वर्ष की अवधि में किया गया। एक दंतकथा कहती है कि देवताओं के आदेश से एक कौडिन्या नामक ब्राहमण कम्बोडिया के तट पर उतरा। उसने रानी को जादुई प्रभाव से वश में करके उससे विवाह किया। इनकी संतानें ही यहॉ के फूनान वंश की पूर्वज थी। ख्मेरों की पूर्वज भी यहीं थे। नोम(Phnom) नामक राज्य स्थापित हुआ। 500 वर्ष तक फूनानों का शासन रहा। फूनानों ने सिंचाई और यातायात के लिए नहरों का निर्माण किया। उनके प्रयासों के कारण मेकांग नदी की घाटी बहुत उपजाऊ बन गयी। ईसा के पश्चात् दक्षिण पूर्व एशिया और भारत के जो व्यापारिक और अन्य संबंध स्थापित हुए थे इस कारण हिन्दू संस्कृति का जबर्दस्त प्रभाव यहां था। 550 ई. में फूनान राजधानी को कम्बूजा लोगों ने जीता। कम्बूजा राजा भी ब्रहमा, विष्णु, महेश का पूजक था। कम्बूजा को जावावासियों ने पराजित किया। लेकिन वे लूटमार करके लौट गए। 802 ई. में पहला महान कम्बोडियाई राजा जयवर्मन द्वितीय गद्दी पर बैठा। इसके वंश का राज्य 600 वर्षों तक चला। जयवर्मन की छवि अपनी जनता के बीच शिव के अवतार के रूप में थी। जयवर्मन ने लिंगम (शिव) मंदिर बनाने की शुरूआत की थी। 12 वीं और 13 वीं शताब्दी में अंकोर की राजधानी अपने वैभव के चरम पर पहुंची। लेकिन ख्मेर समाज में दास प्रथा थी।

<u>अंकोर के मंदिर</u>

इस सारे काल में भव्य पिरामिड जैसे शिखरों वाले मंदिरों का निर्माण किया गया। ये मंदिर एक तरह से मकबरे थे। इनमें राजा तथा अन्य सामन्तों की अस्थियॉ तथा राख रखी जाती थी।

जयवर्मन सप्तम (1181 -1219) के समय बने भव्य मंदिरों में अपनी कलात्मक पराकाष्ठा के लिए विख्यात हुआ बेयन' का मंदिर ई. सं. 1226 में चीनी यात्री और वाणिज्य दूत चाऊ ता कुआन ने अपनी पुस्तक में इस मंदिर के सोने के टॉवर का वर्णन किया है। इस मंदिर के प्रत्येक स्तंभ के चारों कोनों पर जयवर्मन सप्तम का विशालकाय मुस्कराता चेहरा बना हुआ है। यह मंदिर उसने स्वयं अपने लिए बनवाया था।

सन् 1431 में सयामी आक्रमणकारियों ने अंकोर की फौजों को पराजित कर दिया। सात महीने युद्ध चला था| जब सयामी अगले वर्ष लूट पाट करने वहॉ पहुंचे तो उन्हें पूरा शहर खाली मिला। यहॉ के इतिहास की इतनी जानकारी उपलब्ध होने पर भी, एक बात रहस्य ही बनी हुई है कि इतने पुरातन शहर के लगभग 10 लाख वासी एकाएक क्यों और कहॉ चले गए? इसका कहीं उल्लेख नहीं मिलता।

<u>समाप्त</u>